

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180064

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1
R 88 P

Accession No. H 3581

Author राय, विवेकी

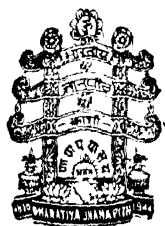
Title फिर बैठलवा डालपर १९६२

This book should be returned on or before the date
last marked below.

फिर बैतलवा डालपर



विवेकी राय



• भारतीय ज्ञानपीठ काशी •

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थाङ्क—१४८

●
ग्रन्थमाला सम्पादक-नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रकाशक
मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ काशी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी

प्रथम संस्करण १९६२
मूल्य साढ़े तीन रुपये

●

सादर
श्री ईश्वरचन्द्र सिनहाको

अपनी बात

‘फिर बैतलवा डालपर’ आपके हाथोंमें है । जो पुस्तकमें है उसपर किसी अतिरिक्त सफाईकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती । वह अपनी सफाई आप ही है । यह जरूर है कि इन रचनाओंके प्रकाशनके अवसरपर मेरे मनमें एक सन्तोषका भाव है । यही भाव पढ़नेके बाद आपके भी मनमें आ सका तो मेरी कृतार्थता होगी ।

आदरणीय भाई श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैनने इस पुस्तकके प्रकाशनमें जितनी और जैसी रुचि दिखलायी है उसके लिए शाब्दिक कृतज्ञता-ज्ञापन उपचार-मात्र होगा । मैं उनके प्रति अत्यन्त विनयावनत हूँ । प्रोफेसर भाई पाठकजीके प्रति, उनके न चाहनेपर भी, भूमिका लिखनेके लिए आभार-प्रदर्शनके इस अवसरको मैं नहीं छोड़ सकता । ‘आज’ काशीसे मुझे अपनी इस साहित्य-साधनामें भरपूर बल मिला है । इस अवसरपर उसके संचालकोंके प्रति हार्दिक आभार प्रगट करते हुए मुझे हर्ष हो रहा है ।

त्रिवेकी राय

३० अक्टूबर १९६१

खड़िया (गाज़ीपुर)

भूमिका

संस्कृतकी 'वेताल-पञ्चविंशतिका' का तान्त्रिक भिक्षु राजा विक्रमादित्यसे नित्य अपने द्वारा एक रत्नगर्भित फल दिये जानेके बदलेमें सहायताका आश्वासन पाकर राजाको एक स्मशानकी यात्रा करने तथा वहाँसे एक वृक्षसे लटकते हुए शवको ले आनेको कहता है । राजा वहाँतक पहुँचते हैं और जब शवको एक वेतालसे अधिष्ठित पाकर भी बिना लक्ष्य-च्युत हुए उसे कन्धेपर लादकर लौटते हैं तो वेताल राजाके मनोरञ्जनके लिए उनसे मौन रहनेका संकल्प करवाकर कुछ नीतिप्रधान, समस्यात्मक, स्वच्छन्द और रोमानी कथाओंको कहता है । कथाके सहज कौतुकसे आबद्ध राजा बोल पड़ते हैं और उन्हें संकल्प-च्युत पाकर शवाधिष्ठित वेताल स्मशानकी उसी डालपर वापस जाकर लटक जाता है । राजा अपनी भूल समझकर पुनः उस डाल तक जाते हैं किन्तु शवाधिष्ठित वेतालको ले आते हुए कथा-श्रवणके समय अपनी प्रतिज्ञाको पुनः भूल जाते हैं और शव यथापूर्व अपनी डालसे लटक जाता है । इस तरह हारे-थके राजा विक्रमादित्य तान्त्रिकको दिये गये वचनों और अपनी कथा-श्रवणके बीच मुखर हो जानेकी विवशताके द्वन्द्वमें कई बार स्मशानसे उस मध्य पथ तक आते और जाते रहते हैं ।

इतिहास और अनुश्रुतिकी कुहेलिकाको चीरकर यदि हम विक्रमादित्यकी उस कृतज्ञता-प्रेरित हारी-थकी मुद्रापर अंकित श्रोतृत्वके कौतुककी अद्भुत छापको देख पाते और साथ ही उस शवाधिष्ठित वेतालकी कथाके उन मोड़ोंको सुन पाते जहाँ राजा बोल पड़ते थे तो निश्चय ही हम एक बड़ी उपलब्धिसे मण्डित होते । प्रस्तुत कृति 'फिर बैतलवा डालपर' में भी लेखक उस शवाधिष्ठित वेतालकी ही तरह न राजा विक्रमादित्य सही

किसी अन्यके मौनको तोड़नेके लिए कृतसंकल्प है। आप पूछना चाहेंगे किस अन्यके मौनको ? मेरा निवेदन है कि इस प्रश्नका उत्तर पानेके पूर्व आप थोड़ी दूर तक मेरा साथ और दें ताकि हम एक-दूसरेसे एकबारगो अन्तिम रूपसे बिना किसी शिकायतके छुट्टी ले सकें।

श्री विवेकी राय पूर्वी उत्तर प्रदेशके उस ग्रामीण अञ्चलके निवासी हैं जिसकी छँवरें और पगडण्डियाँ कठिनाइयोंसे ही सही उन सड़कोंसे मिल लेती हैं जो आधुनिकताके योजनाबद्ध ढाँचेमें निरन्तर ढलते नगरोंको जाती हैं; जिसके ऊपरके आकाशमें दिन-रातमें कई बार पगडण्डीके राह-गीरके लिए हवाई-जहाज किसी अनजाने गन्तव्यको अपनी तीव्र ध्वनिके साथ गुज़र जाया करते हैं; जहाँ योजनाओंकी चरितार्थताके लिए बे-शुमार चाँदीके ठीकरे बरसाती पानीमें गल-पच जाते हैं; जहाँ ग्रामीण जीवन कचहरीकी हाटमें अपनी सारी नेकनीयती और सहकर्मिता बेंचकर जबर्दस्ती फ़ौजदारी और लूट-खसोट खरीद लाया करता है; जहाँ प्रकृति बरसातका प्रलय उमड़ाती है, शरदकी शस्य-श्यामल धरतीपर जुन्हाई बरसाती है, जौ-गेहूँके अंकुरणशील पौधोंको स्निग्ध धूपकी गरमाई देती है और ग्रीष्मकी दोपहरीके पथिकको पाव-भर सत्तू और आम या वट वृक्षकी छायाके नीचे पूर्ण तृप्तिका आयोजन करती है। नाना प्रकारके अन्तर्विरोधोंकी क्रीड़ा-भूमि इस गाँवमें ही कथाकार रहता आया है, इनको ही जीता आया है और कलम पकड़नेके कालसे अबतक इनको ही लिखता आया है। उसके अन्तश्चेतनके पटपर बिजलीका आलोक कभी-कभार ही अंकित हुआ है और वह भी उसका उतना अपना नहीं हो सका है जितना अपना उसकी अपनी ढेबरी और लालटेनका धुँधुवाता मद्धिम प्रकाश। इन कथाओंका लेखक किसी कैफ़ेमें अथवा सिने-गृहमें अथवा किसी पार्टीमें अथवा रंगीन किनारोंके बीच अठखेलियाँ करनेवाली लहरोंमें तैरते मोटर-बोटमें अपना कथानक खोज पाकर किसी शीत-ताप-नियन्त्रित गृहमें कथा-सर्जना

करनेकी सुविधाओंसे युक्त नहीं हैं, उसके कथानक तो उसे गाँवके गन्दे टोलोंमें किसी कामसे आते-जाते हुए या खेतकी पगडण्डियोंपर खेती अथवा स्कूल आदिके लिए आते-जाते हुए यों ही ढूँढ़ लेते हैं और कुरसी-मेज-स्टूल तो क्या पेड़की छाँह-तले अथवा खपरैलकी छाजन-तले चौकी या चारपाईपर ही उन्हें वह लिख लेता है। पेशेसे वह अध्यापक है इसलिए देहातकी चौहद्दी—जो अब उतनी दुर्लभ नहीं रह गयी है—फाँदकर कभी-कभी शहर भी हो आता है और उसकी रंगतके प्रकाशमें अपने गाँवको दोबारा-तिबारा देख लिया करता है। वह अपने गाँवको या गाँवों-को या इनमें ही बसे भारतको बार-बार देखता है क्योंकि वह जानता है कि यहाँ ही असली भारत बसता है, क्योंकि यहींका अन्न उसकी धमनियों और शिराओंमें रक्त बनकर बह रहा है, क्योंकि वह इनसे कर्तव्य-बोधके बन्धनमें अपने उदयकी ही किसी घड़ीमें बँध गया है। यह बन्धन उसे देहातके जीवनके अन्तर्विरोध और विद्रूपसे कतराता नहीं बल्कि उसमें अपने ही द्वारा भोगे गये और भोगे जानेवाले जीवनके प्रति एक निर्लेप-निर्मम दृष्टिकोण पैदा कर देता है। इस दृष्टिकोणका प्रोद्भास गाँवके प्रति उसकी गहरी ममताके भीतरसे ही होता है : ऐसी ममता जो उस विद्रूप-पर परदा डालनेमें अपनी चरितार्थता नहीं मानती है बल्कि उस विद्रूपको उभारकर पुनर्निर्माणकी दृढ़ आकांक्षासे बाँधनेमें ही अपनी सार्थकता स्वीकार करती है।

पूर्वी उत्तर प्रदेशका गाँव थोड़े-से हेर-फेरके साथ आज भी वैसा ही है जैसा कि कभी भी था। ट्यूब-वेलके खम्भे-तार और हर गाँवमें दो-चार पक्की हवेलियाँ बहुत अन्तर नहीं डालतीं। अब भी गाँवोंके खँडहरनुमा 'कच्चे घर' 'भूकी छातीपर' 'फोड़ों-से कुछ उठे हुए' प्रतीत होते हैं। हिन्दीके कुछ आदर्शवादी रोमानी कथाकार और कवि इन ग्रामोंकी अरसेसे आदर्शवाद और रोमांसका जामा पहनाते आये हैं, उन्हें सदा ही गाँवके 'स्वच्छ सुन्दर गेहोंमें' 'मृदु महीका स्नेह'—वरदान दिखलायी पड़ता

है, उन्हें गाँवकी जिन्दगीके प्यारी लगनेका रहस्य वहाँकी 'थोड़ेमें निर्वाह-कर लेनेवाली जीवन-शैली लगती है', वे आश्चर्य-पृथुल वाणीमें कहते हैं 'अहा ग्राम-जीवन भी क्या है !' हिन्दीके कुछ ऐसे भी यथार्थवादी कथाकार और कवि हुए हैं जिनकी परम्परा इस थोड़ेमें निर्वाह करनेवाले गाँवोंकी उस प्रायः ही अधिकांश आवश्यक सुविधाओंसे वंचित दयनीय जीवन और किसी फोड़े-सी भीतर-ही-भीतर बराबर पीड़ासे दहकनेवाली जीवन-स्थितिको देखती है। शायद इन गाँवोंमें असन्तोषकी लपटें नहीं दिखलायी पड़तीं इसीलिए गाँवके वातावरणको कथित साहित्यकार शान्त और सुविधा-सम्पन्न कहते हैं (ऐसी सुविधा और कहाँ है ?)। वास्तविकता यह है कि हमारा गाँव हृदय-दरजेका सहिष्णुता-धर्मी है और यही नहीं गाँवोंके इर्द-गिर्द वह प्रकृतिकी नैसर्गिक शोभाकी परिवृत्तिसे आज भी लिपटा हुआ है, लेकिन यह हरी-हरी फसलोंकी समृद्धि आज भी खलिहानमें अकसर और अधिकांश तुल जाती है और ठठरियोंवाले किसानके चारों ओर अनेक रंगकी और भिन्न-भिन्न मुहरोंसे लगी, कभी न शान्त होनेवाली भूखसे भूखी थैलियाँ आज भी सब-कुछ समेट लेनेके लिए किसी चील्ह-जैसी मँडराती ही रहती हैं। बाहर-बाहरसे गाँवका जीवन किसी-किसीको नयनाभिराम लगे तो लगे भीतर-भीतरसे वह अधिकांश कुरूप है। यह कुरूपता बड़ी गहराईमें कुछ इस प्रकार फैली हुई है कि दुर्गन्धजन्य उबकाईके मारे प्रायः ही सुधारक, प्रशासक और साहित्यकार वापस हो जाते हैं और 'न कुछके' लिए आपसमें लड़ते हुए ये गरीब अनदेखे रह जाते हैं। विवेकी रायने 'फिर बैतलवा डालपर' में इसी 'अनदेखे'को देखा है, और गहराई और आयाम दोनोंमें देखा है।

'फिर बैतलवा डालपर'की गद्य-कृतियाँ प्रायः ही कथाएँ हैं, लेकिन ये ऐसी कथाएँ हैं जो थोड़े व्यापक अर्थोंमें कथ्यकी अनेक भूमियोंके साथ-साथ कथन-शैलीकी अनेक विधाओंमें संक्रमण करती चलती दिखलायी पड़ती हैं।

ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कथाकार कथा तो लेकर अवश्य आरम्भ करता है लेकिन हमेशा वह कहानी लिखनेकी निश्चित योजनासे चालित नहीं होता । इसीलिए इन गद्य-कृतियोंमें कहानीका रूपाकार थोड़े लचीले अर्थोंमें कुछ ही को मिल सका है, अधिकांशमें-से कुछ स्केच हैं तो कुछ कैरीकेचर, कुछ यात्रावर्णन-जैसे हैं तो कुछ आंशिक रूपसे निर्वन्ध निबन्ध । वह रूपकी निश्चितताके प्रति शायद बहुत आग्रहवान् नहीं है । असलमें वह अपनी कथाओंकी उत्स-भूमिके कला-स्रोतोंकी ओर ही उन्मुख है । उसकी कथन-कला गाँवके लोक-तत्त्वों (फोक एलिमेण्ट्स) से दूर तक प्रभावित है किन्तु साथ ही वह अपनी प्रत्येक गद्य-कृतिमें कथा-तन्तुके स्वरूपके अनुसार विशिष्ट विधा-विधानको भी स्वीकार करनेके पक्षमें दिखलायी पड़ता है । कहीं यदि एक व्यक्ति ही सम्पूर्ण प्रतिपाद्यका केन्द्र है तो लेखक स्केच-विधाको बहुत कुछ स्वाभाविक रूपसे अंगीकार कर लेता है । यदि किसी घटना या व्यक्तिका व्यंग्य-विद्रूप उपस्थित करना होता है तो वह स्वाभाविक रूपसे कैरीकेचरका पथ पकड़ लेता है । यदि वह किसी पथको ही पकड़कर किसी मंजिलकी ओर बढ़ चलता है तो यात्रा-वर्णनका रूप स्पष्ट होने लगता है । यदि कोई स्थान अपनी समूची विशदताके साथ चित्रात्मकता प्राप्त करता दिखलायी पड़ता है तो लेखक रिपोर्ताजके मार्गपर चल पड़ता है (वैसे लेखकने रिपोर्ताज बहुत कम लिखे हैं ।) कहीं-कहीं लेखक वैयक्तिक स्पर्शमुक्त चिन्तनका कोई सूत्र पकड़कर दूर तक चलता जाता है ।

ऊपर कहा जा चुका है कि लेखक लोकतत्त्वोंसे दूर तक प्रभावित है, अर्थात् ये लोकतत्त्व उसकी नवीन विधाओंको अंगीकार करके चलनेवाली कला-चेष्टाको गहराईमें प्रभावित करते हैं । यों तो इनमें-से अधिकांश गद्य-कृतियोंका समूचा वातावरण आञ्चलिक वैशिष्ट्यसे युक्त है लेकिन लेखक इनमें देहाती चौपाल, देहाती संवाद-वार्ता, देहाती कथा-गाथा, देहाती मसल-मुहावरेके प्राणद स्पर्शोंको देनेमें कहीं चूका नहीं है । इन स्पर्शोंसे

निश्चय ही कृतियाँ स्फूर्त हो सकी हैं ।

प्रायः सभी कृतियाँ किसी-न-किसी व्यंग्य और विनोदन-चेष्टासे गर्भित हैं । यह व्यंग्य और विनोदन-चेष्टा प्रत्यक्षतया किसी अन्यके ऊपर प्रहार करके नहीं स्फुट होती बल्कि कथाकार अपनेको ही समसामयिक व्यक्तियों, संस्थाओं और स्थितियोंमें इस प्रकार विनियुक्त करता है कि उपहासका केन्द्र वह स्वयं बन जाता है अर्थात् वह भोक्ता रूपमें उपस्थित होता है निरपेक्ष द्रष्टाके रूपमें नहीं । इस प्रकार, वह अपने ऊपर पाठकको हँसनेके लिए बाध्य करके एक गहरी संवेदना जगा जाता है । साधारणतया व्यंग्यकार रामझरोखेपर बैठकर सबका मुजरा लेनेके पक्षमें होते हैं किन्तु असाधारणतया प्रस्तुत कथाकार व्यंग्य-सम्बन्धी एक ऐसे कला-सन्दर्भको उपस्थित करता है जो व्यंग्योंको बहुत गम्भीरता प्रदान करता दिखायी देता है ।

जैसा कि कहा जा चुका है, शिल्पकी दृष्टिसे सभी रचनाओंका रूप भिन्नतायुक्त है । किन्तु एक दृष्टिसे सारी पुस्तक एकतानता और एका-न्विति प्राप्त कर लेती है । वह है कृतिका नाम—‘फिर बैतलवा डालपर’ । ऊपर संकेतित कथांशके अनुसार ही यहाँ भी लेखक वेतालकी तरह स्वच्छन्दता-पूर्वक समस्यात्मक कथाएँ कुछ इस प्रकार सुनाता है कि वह डालपर भी बना रहे और पाठक उसे डालपर-से कहानी सुनानेके लिए उतारता भी रहे और पुनः वह लौटकर डालपर लटकता भी रहे..... कथित कहानियाँ समस्यात्मक हैं, ‘वेताल-पञ्चविंशतिका’की कहानियोंकी तरह रोमानी नहीं । यह एक विचित्र तथ्य है कि साधारणतया अन्य व्यंग्य संकलनोंकी तरह इसमें बिना ‘मियाँ’ और ‘बीबी’के सम्बन्धोंको लक्ष्य बनाये ही सभी व्यंग्योंकी सृष्टि की गयी है । सम-सामयिकताके गहरे पुटके बावजूद कथाएँ लेखकके वाक्-कौशलसे स्थायित्व ग्रहण करनेकी क्षमता रखती हैं ।

इन कथाओंमें ग्राम-जीवनके प्रति यथार्थवादी दृष्टिपात है । इनमें कहीं

रजाईके अभावमें कुत्तेके साथ कोल्हुआड़में ईखकी पत्तियोंकी ढेरीमें सोकर जवाहरलाल नेहरूके विषयमें सोचा जाता है, कहीं गाँवमें खेत उखाड़ने वालोंके बीच ग्राम-मुधारपर भाषण दिया जाता है; कहीं साल-भर मटर-गश्ती करनेवाला छात्र परीक्षामें चिट-पुरजा लेकर जोर लगाता है, कहीं गाँवके रईस स्कूल-कॉलेजोंको दान देनेके नामपर हजारों शब्दोंका दान देते हुए दिखलायी पड़ते हैं, कहीं कोई गाँवका भलेमानस ब्लॉक डेवलप-मेण्ट अफसरसे मिलकर उसकी अफसररी 'हेकड़ीका रोब मानता हुआ उसे खूब बनाता है; कहीं ग्रामीणोंको उल्लू फँसाकर बहते दरियामें हाथ धोने का सपना देखनेवाले पूँजीपतिका एम० एल० ए० होनेका सपना टूट जाता है। कहीं आधुनिक नेताओंका मनोरंजक रूप दिखाया जाता है, कहीं किसान प्रेत-लीलामें विश्वास करता हुआ दिखलायी पड़ता है, कहीं वह गाँधी-चबूतरेको कालीमाईसे अनुप्राणित करता हुआ अपनी 'मनोकामना' पूरी होनेकी प्रार्थना करता दीखता है, कहीं आयी गृह-लक्ष्मीको दहेजके लिए घरसे लौटा देता है, कहीं भारतका घूसखोर चूहा हिन्दी नहीं समझता हुआ दिखलायी पड़ता है। एक जमा हुआ, तीखा और तिलमिला देनेवाला व्यंग्य प्रत्येकमें है। व्यंग्यके शिकार नेता, अधिकारी, रईस, विधायक, अध्यापक, छात्र, कवि, पेटू, कंजूस, निठल्ले, अन्धभक्त आदि अनेक हैं। कथाकार यथार्थका निर्मम द्रष्टा है और यह यथार्थ अंकन व्यंग्य-गर्भित होकर साहित्यिक वक्रता और प्रभावोत्पादकतासे युक्त हो गया है।

इन गद्य-कृतियोंमें बहुत स्पष्ट होकर दिखलायी पड़ता है कि गाँवका साधारण जन एक अनिर्दिष्ट चारित्र्यके साथ राष्ट्रनिर्माणके गीतकी किसी-किसी कड़ीको कभी-कभी वैसे ही दुहरा देता है जैसे कभी किसी कीर्तनमें सम्मिलित कोई अन्यमनस्क अप्रबुद्ध व्यक्ति गाये जानेवाले अर्चना-गीतके अर्थगत मर्मको ठीक-ठीक न समझनेके कारण उसे कुछ उनींदे और कुछ अनबूझे स्वरमें यों ही कभी-कभी दोहरा देता है। राष्ट्र-निर्माणका प्रतिफलन यह है कि गाँवोंकी खुशहालीके हजार-हजार प्रयत्नोंके बावजूद

इस ग्राम-जीवनमें अनेक-अनेक घुन अब भी लगे हुए हैं। दरिद्रता उसकी चिरसंगिनी बनी हुई है। जमींदार तो गया लेकिन कुरसीदार, राजनीतिज्ञ और कुरसीके लिए ही पैदा हुई अफसरशाही बड़ी निर्ममतासे भारतीय लोकतन्त्रको भीतर-ही-भीतर चालती और खाखला करती जा रही है। अकसर नाना संकीर्णताओंको बरतनेके बाद उपलब्ध राजनीतिकी यह जैसे-तैसे हाथ लगी कुरसी साहित्य और संस्कृतिकी भी अगुआई और रहनुमाई करनेका शौक रखती है। लेखक इधरके ग्रामाञ्चलपर हो रहीं इन दाहरी-तिहरी मारांका द्रष्टा है—ऐसा द्रष्टा जो अपनी दृष्टिको भोक्तृत्वके भीतर से उपलब्ध करे। इस प्रथा-प्रथित, रूढ़ि-जटिल ग्राम-जीवनका विद्रूप जो हज़ार-हज़ार मुखोंको खोलकर उसकी प्राणवत्ताको पीता जा रहा है कथाकारका कथ्य है। ग्राम-जीवन को नोचने-खसोटनेवाली इन कालो अर्थहीन छायाकृतियोंका लेखक गाँवोंकी सुनहली ज़िन्दगीको वापस लानेके बड़े दृढ़-संकल्पसे युक्त है। उसकी हार्दिक आकांक्षा है कि लोकतन्त्रके वरदानोंका फल-भोग गाँवोंमें बसनेवाला असली भारत कर सके। यह ग्राम-मंगलकी गहरी इच्छा ही विवेकी रायकी इन गद्य-कृतियोंको व्यंग्यके कुछ कड़ुए-चटपटे रससे सींच रही है जिसकी अन्तिम परिणति मीठी ही मीठी है।

यह भी कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि लेखक जहाँ गाँवोंकी मलिनताका जुगुप्सा-उत्तेजक चित्रण करता है वहींपर गाँवोंके अक्षुण्ण प्राकृतिक वैभवका भी बड़ी सार्थक-प्रसन्न भाषामे अकन कर सकता है। प्रकृतिके शोभांकनमें लेखक एक उल्लेख्य क्षमता अर्जित कर सका है। इसके लिए वह घनिष्ट सम्बन्ध दूर तक सहायक हुआ है जो उसका अपने परिवेशसे है। भाषा उसकी सर्वथा उसकी ही है और उसकी भंगिमा भी उसकी ही। छोटे-छोटे, हलके-फुलके, सार्थक-ध्वनिपूर्ण, मैत्रीक्षम शब्द एक ओर और दूसरी ओर वैसे ही छोटे-छोटे कथ्यके रेशे-रेशेको अलग करनेवाले साकांक्ष वाक्य भाषाकी एक ऐसी भंगिमा सिद्ध करते हैं जो इन गद्य-कृतियोंको स्थान-स्थानपर बड़ी ताज़गी और निर्धूम आभा प्रदान

करती है ।

लेखक अपनी इस प्रकारकी गद्य-रचनाओंके लेखनमें सक्रिय रूपसे लगा हुआ है इसलिए विश्वास किया जा सकता है कि वह इन गद्य-कृतियोंमें एक सुचिन्तित-सुनियोजित कला-शिल्पका विकास कर सकेगा । विधाओंकी निश्चितिके प्रति यदि वह आग्रहवान् हो सके तो और भी अच्छा होगा ।

अब आप अपने प्रश्नका उत्तर लें । ,लेखक उस शवाधिष्ठित वेतालकी तरह किसके मौनको तोड़नेके लिए कृतसंकल्प है ? शायद अबतक आप भी समझने लगे होंगे कि वह युगके मौनको तोड़नेके लिए सचेष्ट और संकल्पवान् है । वह मौन जिसके टूटनेपर लेखक-वेताल चाहे डालसे लटके अथवा न लटके उसे उसकी सिद्धि प्राप्त हो जायेगी ।

हिन्दी-विभाग, डिग्री कॉलेज,
गाज़ीपुर, उत्तर प्रदेश
४ अक्टूबर १९६१

जितेन्द्रनाथ पाठक

रचना-सूची

१. चतुरी चाचासे मुलाकात	१७
२. कवि-सम्मेलनमें	२४
३. दुखन	३२
४. सुर्ती-काण्ड	४०
५. भाषणका असर	४९
६. सोनेकी लूट	५९
७. एक हज़ारकी थैली	६८
८. सभापति, मास्टर और नेता	७८
९. चौबेजीका चमत्कार	८८
१०. परिभाषाका चक्कर	९७
११. बड़ा साहब	१०६
१२. रामबाबू बी० डी० ओ०से मिले	११५
१३. नयी कथा	१२८
१४. मुखिया साहब	१५३
१५. गरदनका दर्द	१५९
१६. अफ़्रीमकी बत्ती	१६६
१७. गांधीजी और कालीमाई	१७२
१८. प्रेत-लीला	१८१
१९. चूहे, अंग्रेज़ी और घूस	१८९
२०. फिर बैतलवा डालपर	१९५
२१. 'बम'का सहारा	२०३
२२. रातकी बात	२०९
२३. निशानी अँगूठा : ज़िन्दाबाद	२१५

चतुरी चाचासे मुलाकात

पलक मारते ही मैं चतुरी चाचाके यहाँ पहुँच गया। देखता हूँ कि चाचा जनेरा अगोर रहे हैं। काफ़ी ऊँचा मचान है। मचानपर टोपीकी तरह एक छोटी-सी पलानी पड़ी हुई है। मचानपर चढ़नेके लिए सीढ़ी नहीं बनी है, बल्कि खम्भेके बाँसकी बड़ी-बड़ी गिरहोंपर पैर रखकर चढ़ने का प्रबन्ध है। खूब सरकसका काम है। कहीं पैर बिचल गया तो चारों खाने चित। बुढ़ीतीमें भी काफ़ी फ़ुर्ती है ! रात-दिनमें कई बार ऊपर जाना और नीचे उतरना होता होगा। अब उनसे बातें करनेके लिए हमें भी इसी बीहड़ चढ़ाईपर-से गुजरना होगा।

मचान खेतमें था। घुसते ही मानो भूख लग गयी। भुट्टेकी सोंधी सुगन्ध और उसका स्वर्गीय स्वाद मनमें भरने लगा। ललचाई निगाहोंसे तने हुए जनेरेके पौधोंमें लगी हुई जटाधारी बालियोंको देखा। हाँ, यह जटा क्यों ? अजी यह तो जैसे रेशमी, मुलायम और सुनहरी केशराशि है जो आँखोंमें गड़कर मनको पुलकित कर देती है ! हरे, पीले और सूखे छिलकेवाली बालियाँ, कई-कई परत छिलकेको छेदकर गुलाबी दन्त-पंक्तियों-से झलकते दाने !

तभी हवाका एक झोंका आया। पौधे झूम गये। पत्तियोंके साथ अठ-खेलियाँ करता हुआ, हरहराता हुआ पवन निकल गया। जनेरेकी जय-जयकार करता झण्डेकी तरह ऊपरका धाना मोचा (फूल) लहरा उठा। कुछ दोहरी बालवाली पेड़ियोंके नखरे बादतक चलते रहे। ये मदमत्त वन-कन्या जैसे यौवन-भार सँभाल नहीं पाती हैं। हवाके इशारे-पर लचक-लचक जाती हैं। पत्तियोंका आँचर इधर-उधर उड़-उड़ जाता है।

इधर चाचाकी मचान भी कम नहीं। वह भी हवाकी तालपर बल खाती हुई मरमराने लगी। ऊपर आकाशमें तभी चिड़ियोंका एक दल सरसे निकल गया। मुझसे छू-छूकर पौधे खड़खड़ाने लगे। मानो वे अपने मालिकको किसी अजनबीके खेतमें घुसनेकी सूचना दे रहे हों। वह मालिक भी ऐसा जो पौधोंके इन इशारोंको बूझता है, क्योंकि तभी आहिस्तेसे गम्भीर आवाजमें मचानपरसे किसीने पूछा :

“के टघरल आवत बा हो?”

“आपका ही नाम तो चतुरी चाचा नहीं है?” मचानके समीप जाकर मैंने पूछा।

“जी, नीक नाम बा जे चतुरी चाचा तो हम ही हैं, हुकुम?”

“ऐसे ही भेंट-मुलाक़ातके लिए आया हूँ।”

“अच्छा, डाँकि आओ।”

अब हमें नीचेसे ‘डाँककर’ यानी कूदकर ऊपर जाना था। चाचाकी भाषापर तबीयत खिल उठी। यहाँ मचानपर सीढ़ीसे, सरलतासे और शराफ़तसे चढ़ जाना नहीं था, बल्कि मचानके बाँसकी उन प्राकृतिक खूँटियोंके सहारे लंगूरकी तरह लपककर डाँक जाना था। हाथसे बाँस पकड़कर खूँटीपर पैर दिया ही था कि चाचाका प्रसिद्ध मेटा दिखाई पड़ा। शीतल जलकी आशामें पैर खींच लिया। उचित ही था कि प्यास बुझाकर पहाड़पर जाऊँ। ढकनी उठाकर देखा। मेटा पानीसे भरा था। सबेरेका ही भरकर रख दिया गया है, राततक काम आयेगा। पास ही पड़ा था एक चीनी मिट्टीका भग्न प्याला। यह प्याला काई लगे पुराने मिट्टीके मेटेके साथ खूब मेल खा रहा था। जब पास ही में सावधानीसे रखी गयी अरहरकी सूखी लकड़ियोंकी आँचपर ताज़ी-ताज़ी दूधाकी बाल चुरमुर-चुरमुर सेंककर नमक-मिर्चके साथ स्वादसे उड़ायी जाती होगी और मन-भर छक लेनेपर जब प्यालेका ठण्डा पानी होंठोंसे लगाया जाता होगा तो उस मजेके आगे नमकीन-चायके मजे पानी भरते होंगे। कैसे स्वर्गीय वैभवके

बीच रहता है यह चतुरी चाचा !

मुझे वहाँ बिखरी पड़ी राखकी ढेरीमें से ५६ प्रकारके मधुर व्यंजनोंकी गन्ध आने लगी। यह कूड़ा नहीं, वातावरणका एक प्रधान अंग है। उसमें आग सुगबुगा रही है। धुएँकी एक क्षीण रेखा आकाशकी ओर नाना प्रकारकी आकृतियाँ बनाती हुई, उठ रही है। आग और नमक समाप्त हो जाये तो किसानके पास रह ही क्या जायेगा ! आग इज्जत है और नमक नियामत है। दरवाजेपर कउड़ेमें आग है यानी वहाँ हाथी बँधा हुआ है। स्वागतका सिपाही हुक्का बिना आगके निर्जीव है। चिलम भी ठण्डी रहेगी और तम्बाकूका वह धुआँ ! ओफ़, वह तो बस आगका खेल है। यहाँकी सोंधी मिट्टी, सोंधी हवा, सोंधी भुट्टेकी महक, सोंधा स्वाद और सबके ऊपर तम्बाकूका धुआँ। गाँवकी ये विभूतियाँ हैं।

यह एक कोनेमें मेटीमें भरा तम्बाकू रखा है। यह चिलम औंधी पड़ी है। उसीपर टिका हुआ हुक्का करवट सोया हुआ है। यह चाचाकी 'कठनही' है। देहाती चप्पल है। अजब कछुए-सी शक्ल है। वास्तवमें इसका नाम 'कठपनही' यानी काठका जूता है। 'प' शब्द घिसकर उड़ गया और बन गया 'कठनही'; या हो सकता है काठको नाथकर बनाये जानेके कारण इसका नाम 'कठनही' पड़ा हो। बात सत्य है। ऊपरवाले भागमें पैरको रोकनेके लिए तीनों छेदोंमें रस्सियाँ बँधी हैं। पूरा भारी, मजबूत यानी जूता जातिका भैंसा है। टूटनेका नाम नहीं। टूटेगा क्या ? रस्सी टूटी, बस चट दूसरी लगा दी। मरम्मतमें पाँच मिनट भी नहीं लगे।

पानी पी चुका। मुँह पोंछ रहा था कि चाचाने टोका, "यह क्या किया आपने ? छूछा पानी करेजा लगता है। ऊपर यहाँ भेली रखी थी। भला कहिए !"

उनकी बात खत्म होते-होते एक जोर लगाकर मैं अब उनके सामने था। चरण छू लिया।

"मालिक बनाये रखें ! कहिए कुशल समाचार ? कहाँसे आपका आना

हुआ और क्या कहकर आपको लोग पुकारते हैं ?”

“जी, कंचनपुरके मनबोध मास्टर आपकी सेवामें हाज़िर हैं ?”

“मास्टरजी, आपने बड़ी कृपा की ! यहाँ कौन आता है ? घुरहू, निरहू, फेंकू, चेथरू और मैंगरू । क्या सुननेको मिलता है ? घास-भूसा, चोरी-चमारी, निन्दा-चुगली, दुखरा-धन्धा और अण्ट-सण्ट बेकार बातें । धन्य है आजका दिन ! सज्जनका सत्संग ईश्वरकी कृपासे मिलता है ।”

“मगर चाचाजी, न तो मैं सज्जन ही हूँ और न सत्संगका पात्र ही हूँ । काहेसे कि मैं मास्टर हूँ ।”

“ठीक बोलते हो । आज मास्टर होना पाप हो गया है । आज वह गुरु नहीं, दो कौड़ीका नौकर है ।”

“नौकर यानी सेवक भी वह कहाँ है ? वह अपना कर्तव्य-पालन भी कहाँ कर पाता है ?”

“भैया ! क्या कोई कर्तव्य-पालन करेगा ? लिखा है : ‘भूखे भजन न होहि गुपाला, लेहु आपनी कण्ठी माला !’

“मगर चाचाजी, यह कण्ठी-माला उतारकर रख देनेका ताव भी अध्यापकमें कहाँ रह गया है ? गरीबीने, भूखने उसकी मन-बुद्धि, आत्मा और स्वतन्त्रताको एकदम पोसकर ठण्डा कर दिया है ।”

“तभी तो कहा जाता है कि लौनामें करसी : बरतनमें बोरसी, वैंसी मुदरिंसी ।”

“क्या लाख रुपयेकी बात कही आपने चाचाजी । करसी न बलेगी, न जलेगी : न आँच, न तेज—वैसे धुँधुँआती रहेगी । ऐसी ही दमघोट ज़िन्दगी है अध्यापककी । बोरसी ज़िन्दगी-भर जलती रहेगी, किसी महत्त्वके काममें आयेगी नहीं । आलसी लोग जाड़ेमें लेकर तापते रहेंगे और ज़रासे धक्केमें टूट जायेगी—ऐसा ही भाग्य मिला है अध्यापकको ।”

“क्यों नहीं, यही देखो : आज एक मास्टरको उतना ही पैसा दिया जाता है जितनेमें एक साधारण आदमी केवल अपना निजी खर्च किसी

प्रकार कठिनाईसे चला सकता है और उसे बना दिया जाता है साधारणसे ऊँचा पूरा सफ़ेद-पोश ! दे दिया जाता है जगत्-गुरुका ऊँचा दरजा ! अब सारा जीवन वह इस जालमें छटपटाते हुए जिस प्रकार काटता है प्रत्यक्ष है । क्या तुमने एक कहावत सुनी है ? सुनो, कहा है कि 'करें मास्टरी दुइ जने खायें, लरिके सब निनिअउरे जायें !'

“सोलह आना सत्य चाचा ! अध्यापक जब मरने लगता है तब अपने बाल-बच्चोंसे कह जाता है कि और चाहे जो करना परन्तु मुदरिरीको दूरसे ही सलाम करना ।”

“भाई मनबोध, मैं तो सौ बातका एक बत्ता जानता हूँ । आज अध्यापक भूखा है, शिक्षा सूखी है—देशमें सरसता आवे कहाँसे ?”

“सचमुच देशकी हालत खराब होती चली जा रही है ।”

इसके बाद मेरी और चाचाकी वार्ता राजनीतिपर आ गयी । जमकर बातचीत चली । राजनीतिसे धर्म, समाज, गृह-शिक्षासे होते-होते वार्ता पाक-शास्त्रपर आ गयी ।

कहनेवाला एक । सुननेवाला एक । परम एकान्त । कल्पना-सी पलानी । भावुकता-सी मचान । खेतके ऊपर हवामें किसी कविके अन्तःकरण-सा वह उन्मुक्त परन्तु रुचिकर प्रकोष्ठ । रमणीयताका चारों ओर प्रसार । जब-जब भाषा मुखरित होती वह एकान्त जैसे खिल उठता ।

चाचाने कहा, “असल चीज़ है भोजन । यही आरोग्यका जनक है और यही रोगकी जड़ है । देखो, क्वार द्वारपर आ गया । घरका-घर खाटपर दिखायी पड़ेगा । जानते हो क्यों ? यह पेट है कि इसमें दोनों जून लोग ठूसते ही चले जायेंगे ।”

“तब क्या आजकल भोजन करना ही नहीं चाहिए ?”

“हाँ.....आँ.....आँ....! यही तो कह रहा हूँ । सुनो—

‘सावन मास बिभ्राहू न कीजै,

भादो बिभ्राहीका नाम न लीजै ।

क्वारके दोउ पाख,
किसी तरँ जीव राख ।’

अर्थात् सावन-भादोंमें रातका भोजन न करो । क्वारमें एकदम दोनों समय भोजन न करके किसी प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षा करो ।’

अब हमारी समझमें आया कि भोजनकी वेला क्यों यों ही बीत गयी । पूछा, “तो क्या आप एक ही समय भोजन करते है ?”

“तब क्या ? वैद्यकशास्त्रमें बातें झूठी कही हैं ? और एक बात और है । आपको बताता हूँ मास्टर साहब । आप कोई तिलकहरू नहीं हैं । किसान आदमी दोनों जून खाने लगे तो कहाँसे अटेगा ?”

परन्तु मुझे तो उस समय भूख लगी थी । अनायास मेरे मुँहसे निकल गया, “और कोई अतिथि आ जाये तब ?”

चाचा चौंक पड़े । बोले, “अरे राम राम, तबकी बात और है ! देखो न बात-बातमें खानेका वक्त निकल गया । हमें तो ध्यान ही न रहा । शाम हो चली । अब आपको कुछ खिलाना चाहिए । ओ मूसन ! ओ मूसन ! कहाँ गया रे ? देखिए मनबोधजी, इस छोकरेने तंग कर दिया है । अभी नीचे आहट मिल रही थी, न जाने किधर सरक गया ! वंशके ओज (कमी) से है, नहीं तो बइला (खदेड़) देते । लमेर (आवारा) की तरह घूमा करता है । यहाँ रहता तो अगोरता । हम लोग दरवाजेपर चलते । अच्छा, कोई प्रबन्ध करता हूँ ।”

चाचा नीचे उतरकर गये । एक लड़केको पकड़ लाये और बोले, “इस लड़केके साथ आप दरवाजेपर चलिए । मूसन आता है तो मैं आता हूँ । देर नहीं होगी ।”

मैं चतुरी चाचाके बैठकखानेमें पहुँचा । अभी ठीक तरहसे बैठ भी नहीं सका था कि भीतरसे एक लड़के और एक स्त्रीकी दिलचस्प वार्ता कानोंमें पड़ी । मैंने अनुमान किया कि एक चाचाका लड़का मूसन है और दूसरी उसकी माँ है । लड़का जल्दीमें घबराया हुआ-सा बोल रहा था । उसने कहा,

“देखो माँ, जब पिताजी खेतमें मूसन-मूसन कहकर चिल्लाने लगे तो मैं नीचेसे धीरेसे सरक आया। वे इस समय हमसे कहते कि जाओ घरसे खाना लाओ। भला इस समय तुम कहाँसे देतीं ?”

“चुप रहो, हरामजादा ! तुम बाप-बेटे नम्बरी हो। उस शरीफ़ आदमीको खाने बिना डाह दिया। सबरेका आया मचानपर टंगा है। अपने मनमें क्या कहता होगा ? हाँ, आगे बताओ। क्या कहा तुम्हारे पिताने ?”

“माँ, पिताजीने कहा कि क्वारके महीनेमें खाना नहीं खाया जाता है। उन्होंने यह भी कहा कि किसान अगर दोनों जून खाने लगेगा तो डीह पर रहना कठिन हो जायेगा।”

“अच्छा ! यह भी कहा ? आने दो ! कहाँ है रे बेलना ! दाढ़ीजार यह नहीं देखता कि पोर-पोर सरकता यह मूसन बेटा नटई-भरका हो गया ! साल-दो सालमें इज़्जत-पानी बची रही तो आने-जानेवालोंसे मोल-मोलाई होगी। यही बान रही तो मुँह दिखाना दूलभ हो जायेगा !”

मैं बैठकमें झूठ-मूठका खाँसने लगा, ताकि भीतर समझ जायें कि कोई बाहरी आदमी बैठकमें आया है। मेरा खाँसना सुनकर मूसनने समझा कि पिताजी आ गये और अपनी माँसे बोला, “लो माँ, पिताजी आ गये, पूछ लो !”

मूसनकी माँ हहास बाँधकर बेलना लिये दौड़ पड़ी। मैं घबरा उठा और चारपाईसे कूदकर जो भागा तो चौखटसे ठोकर खाकर गिर पड़ा।

चोट खाकर मैं हड़बड़ा गया और आँख खुली तो देखता हूँ कि स्कूलके कक्षा-भवनमें हूँ। तीसरा घण्टा चल रहा है। चतुरी चाचाकी चटपटी चिट्ठी मेज़पर सामने खुली पड़ी है। अचानक झपकी आ जानेके कारण फुरसत पाकर छात्रोंमें-से कुछ गप लड़ा रहे हैं और कुछ बाहर निकलकर मटर-गश्ती कर रहे हैं।



कवि-सम्मेलनमें

अब सोचता हूँ कि कवि-सम्मेलनमें हमारा न जाना ही अच्छा होता । रात-भर नींद बुलाता रहा और आती रहीं कवि-सम्मेलनकी कड़ुई यादें । सबेरे चारपाईसे उठानेपर उठा हूँ । मन आहत है । रह-रहकर रातकी बातें चोट कर जाती हैं ।

न जाने कहाँसे यह रोग गाँवोंमें भी आ गया । कवि-सम्मेलन क्या है शुद्ध नाच है । शरीफ़ लोग नाचते हैं । अजब-अजब नाच नाचते हैं । सिरके बल नाचते हैं । रुपया नचाता है । लोग ताली पीटते हैं । बाह-बाह करते हैं । गालियाँ देते हैं । किसीको पसन्द करते हैं, किसीको नापसन्द करते हैं । यह सब क्या है ? सस्ते कवि, सस्ती कविता । कितनी कविताएँ मनको छू पाती हैं ? यह सब मुझे एकदम नापसन्द है; परन्तु मेरी पसन्द और नापसन्दका कोई सवाल नहीं ।

अब रातकी बात बताऊँ । कवि-सम्मेलन पासके ही एक गाँवमें था । दूर-दूरके कवि आये थे । काफ़ी सज-धजकर और बन-सँवरकर । गाँवमें ऐसे साफ़-साफ़ चेहरे और चमकीली पोशाक कहां दिखलायी पड़ती है । फुलवारीकी तरह मंच उग गया । सबका नाम नहीं बता सकता । मेरे एक परिचित थे 'सुकुमार'जी । नीचेसे घसीटकर हमें ऊपर बिठा दिया । मैंने कहा, भाई, 'अब मैं न कविता लिखता हूँ और न सुनाता हूँ । सब भूल गया । मौज-मस्तीके दिन लद गये । अब मैं आदमी नहीं मास्टर (शायद कथित देवता) हूँ, कवि नहीं कौआ हूँ । दिन-भर टर-टर करता हूँ, रात-भर आमदनी-खर्चका हिसाब करता हूँ । ऊपरसे जगत्का गुरु हूँ और नीचेसे गोबर हूँ । खाद बनता हूँ । समाजके अँखुए निकलते हैं ।

इन सब बातोंका मेरे मित्रपर कोई असर नहीं हुआ और अब मैं

मंचपर था। कुछ बड़प्पन-सा लगा। ऐसा लगा कि बिलकुल मर नहीं गया हूँ। उसी समय एक लम्बे-चौड़े, डील-डोलवाले खद्दरधारी ग्रामीण रईस उठ खड़े हुए। कई लोग फुसफुसाये, “ग्राम-सभापतिजी हैं !” उन्होंने सभापतिके प्रस्तावके लिए भूमिका बाँधी। सबके कान खड़े हो गये। ग्राम-सभापतिने अजब शानसे कहा कि जब हमारे मान्य-मालिक श्री आर० बी० दयाल, एम० एल० ए० यहाँ मौजूद हैं तब दूसरा और कौन सभापति बन सकता है ?

कवियोंने सिर झुका लिये और पंडाल तालियोंकी गड़गड़ाहटसे गूँज उठा। ‘सुकुमार’जीने धीरेसे पूछा कि इस एम० एल० ए० साहबके कौन-कौनसे काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित हैं ? मैंने बताया, “अजी पूरा आदमी है। किसी प्रकार हस्ताक्षर कर लेता है। रोबदाब, जोर-जबरदस्ती और काली करामातोंका कबीर समझो। यह एम० एल० ए० का पद ही इसका प्रख्यात काव्य-ग्रन्थ है।”

अब सभापति रघुबरजी फूल-मालाओंमें डूबे मुख्य आसनपर विराजमान थे। एक बार मैंने ध्यानपूर्वक उनकी ओर देखा। एकाएक बिना जोर लगाये हो ढेर-सी बातें याद आ गयीं। मेरा मन उखड़कर उड़ गया। तबीयत उचाट हो गयी। यादकी रेखाएँ गहराईके साथ उभरने लगीं। फिर तो मेरा शरीर-भर उस पंडालमें रह गया। उधर कवि-सम्मेलन शुरू था और इधर मैं सिनेमा देख रहा था। लगभग सत्रह मास पूर्वकी एक दिलचस्प घटना चित्रकी तरह मेरी आँखोंके सामने नाचने लगी।

वसन्तकी सन्ध्या, मधुर उदासी, हलकी गरमी, पछिबाँकी धूलके साथ उड़ती मेरी साइकिल उस छोटे-से कस्बेके सिरेपर स्थित चौमुहानीपर आ रुकी। एक पानकी, एक सत्तू-भूजाकी और दो पूड़ी-मिठाईकी दूकानें, पास ही सड़कके एक ओर नीम तले खड़े रिक्शे और इक्के। कुछ खड़े, कुछ टहलते, कुछ बैठे हुए मन-चर्चामें लीन अनेक लोग। चेहरेपर

उत्सुकता, आँखोंमें खोज, चाल-ढालमें मौज, पोशाक असाधारण नहीं तो साधारण भी नहीं, बिना सरो-सामानके पान चबाते, छड़ी धुमाते, सिगरेटका धुँआ उड़ाते और कुछ अखबारोंमें डूबे हुए लोग । अजब-सालगा । बिना लगनके ये कैसे बाराती लोग हैं ?

ज्ञात हुआ कि यहाँसे आज जुलूस निकलनेवाला है । कांग्रेसकी शानदार विजय हुई है । एम० एल० ए० साहब खुद तशरीफ ला रहे हैं ।

टूटी झोंपड़ियोंके सामने खड़ी कार देखी, प्रचारका हंगामा देखा, जुलूस देखा, हवा बनाना देखा, भारी धूम-धाम देखी और वोटके दिनकी चहल-पहल देखी । पद-सेवकोंके सामने हाथ जोड़कर खड़े सिरमौर लोगोंको देखा; लक्खू-भिवखूकी अभूतपूर्व मिलनी देखी; तिकड़म, मकड़-जाल, सब्जबाग और ४२० के नये-नये नज़ारे देखे और अब आज इन सबका उपसंहार भी देख लूँ । यह जीतका जुलूस वास्तवमें दर्शनीय होगा ।

“.....तो मैं रुक गया । मगर किसी भी आदमीके हाथमें झण्डा वगैरह न देखकर सन्देह हुआ । बिना झण्डे-झण्डियोंका कैसा जुलूस होगा ? पानवाली दूकानपर एक आदमीने बताया कि जुलूसका वक्त्र चार बजे दिन था । इधर छह बजने ही वाला था । वहीं यह भी सुना : “अजी, आते होंगे ! आयेंगे—छह बजे, सात बजे, आठ बजे, नहीं भी आयेंगे । गरजवाले आज क्या, रोज़ जुलूस निकालेंगे !”

मुझे कुछ निराशा-सी हुई । साइकिल उठाकर चलनेकी बात सोच रहा था कि बाजा बज उठा । शायद ये बजाने लगे यह सोचकर कि यदि जुलूस न भी निकले तो कुछ पैसेके हकदार तो हो जायें । फिर आदमी भी तो बटोरना था । दस-पाँच गिने-चुने लोगोंसे ही जुलूस कैसे निकलेगा ! उसके लिए चाहिए थी जनताकी भीड़, नर-वानरोंका पीछेसे जय-जयकार करनेवाला जमघट ।

एक जीप आती दिखायी पड़ी । “बस, आ गये !” खलबली मच गयी ।

एक आदमीने झट पाकिटसे तिरंगा झण्डा निकाला और चट सोंटेमें खोंसकर कन्धेपर रख लिया गया । अचानक कई और झण्डे उग गये । अनेक नंगे सिर टोपियोंसे विभूषित होने लगे । अरे ! लोगोंके हाथोंमें यह क्या है ? ये फूल-मालाएँ कहाँसे आ गयीं ? कई लोगोंको सावधानीके साथ पाकिटसे निकालते देखकर रहस्य खुला । भीड़ खिल उठी और हवा गमक उठी । जीप पास आ गयी । लोग दोनों ओर क्रतार बाँधकर खड़े हो गये । जय-निनाद हुआ । हाथ भाँजकर, उछलकर और गला फाड़कर नारे लगे । जीप आयी और सर्रसे निकल गयी । लोगोंने देखा, केवल ड्राइवर बैठा था, और गाड़ी किसी औरकी थी ।

सब धूल झाड़ते पीछे हटे । बाजा बन्द हो गया । उल्लास किरकिरा पड़ गया । किसीने जोरका ठहाका लगाया । मेरी दृष्टि उधर जाये तबतक पाससे सुना, “अरे यार, बाज़ार-भाव बिगड़ गया ।” उधर पश्चिम ओर बगीचेके पेड़ोंकी फाँकसे सूर्यका ईगुर-जैसा लाल गोला दिखायी पड़ा, आधा डूबा हुआ ।

मालाएँ सावधानीसे समेटकर रख ली गयीं और लोग पूरब ओर सड़कपर आँख बिछाकर इधर-उधर बैठ गये । थोकके-थोक आदमियोंके बीच यदि कोई अकेला था तो यह मास्टर ! मास्टरको इसीमें मज़ा था । वह सुनता था कि जैसे हर आदमी यह सिद्ध कर रहा है कि एम० एल० ए० साहबको जितानेमें पड़ला नम्बर उसीका है । वास्तवमें वहाँकी चर्चाएँ बड़ी मज़दार थीं, पर यह मज़ा देर तक नहीं चखा जा सका । एक जीप फिर आती दिखायी पड़ी और शायद तिरंगेसे शोभित जीप वही थी जिसका घण्टोंसे इन्तज़ार था ।

जीप रुकी । लोगोंने घेर लिया । जयकार तोपके समान छूट पड़ी । बाजा बिगुलके समान बज उठा । क्या ही रोमांचक दृश्य था ! आह्लादमें मुसकराते हुए लोग माला पहनाते हैं, गले मिलते हैं और एक ओर हट जाते हैं । दूसरा आता है, माला पहनाता है और एक ओर हट जाता है ।

कोई-कोई खूब मिलते हैं। एक सज्जन बड़े। गोदमें एक सुन्दर सजा हुआ बालक हाथमें माला लिये है। माला एम० एल० ए० साहबके गलेमें पड़ी और बालक उनकी गोदमें था। चूमकर प्यार किया। कितना विशाल और सरल हृदय है! वह सज्जन भी खूब मिले। बच्चेको लेकर एक ओर आये। मालूम हुआ, कस्बेके सबसे बड़े रईस हैं। अच्छा! ये एक भरे-पूरे शरीरवाले सज्जन हैं। विजयी नेताको माला पहनाकर इन्होंने गोदमें उठा लिया। फिर दोनों खूब हँसे। चेहरा खिल गया। लोगोंने कहा कि यह सेठ कोरा सेठ नहीं है। फिर अनेक लोगोंका क्रम चला। एक बूढ़े बाबा आये। एम० एल० ए० साहबने चरण छू लिया। बाबाने माला पहनायी। ये महन्तजी थे।

मैं निकट आ गया। देखता हूँ, एक व्यक्ति है। खादीकी पोशाक है। कुछ मैला ज़रूर है। देखनेमें यह भी मास्टर-जैसा लगता है। आगे बढ़ता है, मिलना चाहता है, तबतक दूसरा माला लिये पहुँच जाता है और यह पीछे सरक आता है। बेचारा माला नहीं लिये है। उत्सुकता, अधीरता और श्रद्धा उसे ठेलकर फिर आगे बढ़ाती है। आँख फाड़-फाड़कर उनकी ओर देखता है। कभी मुसकराता है। जैसे यह व्यक्त कर रहा है कि जीतके इस मिलन-पर्वपर उसे भारी खुशी है, क्योंकि एम० एल० ए० साहब उसके अपने हैं। उधर एम० एल० ए० साहबकी आँखें ऐसे खास ढंगपर अधमुँदी-सी होकर झुक गयी थीं जैसे वे आज सबको देख नहीं रहे थे। मैंने मनमें सोचा, एक वह दिन होता है कि ये धा-धाकर सबको गले लगाते फिरते हैं और आज यह समय है कि लोग इनसे मिलनेके लिए भारी तप कर रहे हैं।

मेरी दृष्टि उसी मिलनेवाले युवककी ओर थी। वह अपनेको दिखानेके लिए ठीक उनके आगे चला गया। मिलनेके लिए कुछ हाथ निकाल चुका था कि एकने एम० एल० ए० साहबके गलेमें माला डाल दी और उसे उन्होंने छातीसे चिपटा लिया। सौ मुट्ठीका एक मुट्ठी होकर

वह पीछे सरक गया। मैंने कल्पना की, वोटके जमानेमें उसने झण्डा लेकर खूब जय-जयकार किया होगा। उन दिनों इसे खूब वाहवाही मिली होगी। एम० एल० ए० साहबसे परिचय हुआ होगा और आज भी समझता हूँ कि वे हमारे हैं।

मैंने साधारण तौरपर पूछा, “क्या भाई, मिल लिये?” उसने कहा, “देखते हैं, फुरसत है? तमाम कस्बे और जवार-भरके रईस और बड़े-बड़े आदमी आये हैं। एम० एल० ए० साहब तो हमारे खास आदमी हैं। आँखके इशारेसे बताया है कि मीटिंगमें मिलना।”

मुझे उसकी समझपर बड़ी दया आयी। भाग्यवान् हैं ये बड़े आदमी। इनके यहाँसे कोई उपवास करके आ जाये तब भी वह यही कहेगा कि बड़ी भारी खातिरदारी हुई है।

मिलन-अध्याय समाप्त हुआ। अब बिना मालावाले हाथ मिलाने लगे। ये भी खास लोग हैं। आम लोग चारों ओरसे तमाशा देख रहे हैं, इधर-उधर चक्कर काट रहे हैं। मैंने इन्हीं लोगोंमें अपने मित्र महमूदको देखा। बड़ा भक्त है एम० एल० ए० साहबका। शायद गले मिलनेमें असफल होकर अन्तिम बार भाग्य आजमा रहा है। मौका नहीं पा रहा है। मैंने देखा, वह उनके सामने पहुँचा ही था कि वह पानवाला पान लिये पहुँच गया। फिर जलूस आगे बढ़ा। पीछे था बाजा और महात्मा गांधीकी जय बोलनेवालोंका दल।

महमूद मिला। सारी बातें ज्ञात हुईं। मैंने कहा, “तुमने बेवकूफी की। मुक़दमेमें तारीख पड़ गयी तो तीन बजेवाली ट्रेनसे तुमको घर चला जाना चाहिए था। तुम रह गये जुलूस देखनेके लिए, गले मिलने और मुबारकबादी देनेके लिए। अब रातको मोदीकी दूकान आबाद करो। सड़ा-गला खाकर फटे टाटपर सोना, मच्छरोंसे शरीर कटवाना और एक-आध रुपयेका खून कराना तुम्हारी तकदीरमें लिखा था।”

उसने कहा, “मुझे क्या पता था कि फूल-मालावाले घेर लेंगे! क्या

बिना मालावाला उनका प्रेमी नहीं हो सकता ?”

मुझे लगा कि महमूद काफ़ी दुःखी है और उसे मैंने समझाया कि यह आयोजन जिन लोगोंका था वे लोग गले मिले। तुम भी एक आयोजन अपने यहाँ करो और खूब मिलो।

पर मैं जानता था कि इससे न तो उसे ही सन्तोष था और न मुझे ही। अब हमे लौटना था। चलते-चलते एक बार फिर एम० एल० ए० साहबको देख लेना चाहा। वह गौरवर्णवाला भरा चेहरा फूल-मालाओंमें डूब-सा गया था।

अँधेरा हो गया। जुलूस पीछे छूट गया। साइकिलपर लौट रहा हूँ। रह-रहकर वह फूल-मालाओंमें डूबा चेहरा याद आ रहा है। तभी सनसनाती हुई किसी कविकी एक कविता कानोंमें आ घुसी—

“कुछ ऐसे नदिया बढ़ी किनारे डूब गये,

कुछ ऐसे बादल उठे सितारे डूब गये !

पथके काँटोंसे कौन हमें आगाह करे—

जब फूलोंमें रहनुमा हमारे डूब गये !”

कविता जैसे साकार रूपमें हमारे सामने आ गयी। मैं उसे गुनगुनाने लगा।”

तभी संचालकने हमारा नाम पुकार दिया। मैं चौंक पड़ा। भारी हड़बड़ीमें पड़ गया। ‘सुकुमार’जीने ठेलकर स्टेजपर आगेको कर दिया। मेरी सारी याद कविताएँ न जाने कहाँ चली गयीं। कोई याद ही नहीं आयीं ! माइक हाथमें लिया तो ललाट पसीनेसे चकचका उठा। सिर चकराने लगा और दिल धड़कने लगा। क्या सुनाऊँ ? एक बार सभा-पतिजीकी ओर देखा और जल्दीमें सुना गया—

“कुछ ऐसे नदिया बढ़ी किनारे डूब गये,

कुछ ऐसे बादल उठे सितारे डूब गये !

पथके कांटोंसे कौन हमें आगाह करे—
जब फूलोंमें रहनुमा हमारे झूब गये ।”

पण्डालसे आवाजें आयीं : यह तो जौनपुरके पण्डित रूपनारायण त्रिपाठीकी कविता है और पण्डितजीने इसे अभी-अभी सुनाया है । आप अपनी सुनाइए ।

कुछ लोग हँसने लगे और कुछ मुसकराने लगे । कुछ हमें घूर-घूरकर देखने लगे । कुछ साँयफुस करने लगे । सभापतिने व्यंग्य किया : “मास्टरों के दिमाग लड़के चर डालते हैं ।”

मैंने जोरसे कहा, “सज्जनो ! श्री रूपनारायण त्रिपाठीने अपनी जिस कविताको सुनाया है उसे मैंने यहीं अभी-अभी प्रत्यक्ष रूपसे देखा है । आप क्षमा करें ।”

जबतक मैं पण्डालसे बाहर निकलूँ एक भारी ठहाका लगा और सारा पण्डाल गूँज उठा ।



दूखन

आज सबेरे-सबेरे दूखनने कहा, “बाबू साहब, मैं तो विष्णु भगवान्‌के पास पहुँच गया था। एकदम एकान्तमें उनका बैंगला था। चारों ओर जल-ही-जल था। बीचमें एक खूब ऊँचा डोह-जैसा था। उसीपर एक बरगदके पेड़के नीचे उनका बैंगला था। वह भी काफ़ी ऊँचा था। तीन सौदीतक मैं गया, तबतक सबेरा हो गया।”

“यह तो बड़ा गड़बड़ हुआ,” मैंने कहा, “कितनी मेहनतसे पहुँचे होंगे। अच्छा देखो, इस बार पहुँचना तो चाहे सबेरा हो चाहे दोपहर बिना बातचीत किये मत लौटना।”

“तब क्या ? ऐसे ही एक दिन स्वर्गमें गया। सिपाही फाटकपर रोकने लगे परन्तु मैं क्यों मानता ? धड़धड़ाते हुए घुस गया। खूब भारी मैदान था। एक साहबानी फुलवारी थी। दूर-दूरतक मुनी लोगोंकी कुटी थीं। वहींपर धनपत भाईसे मुलाकात हुई। वे चिलम बना रहे थे। देखते ही बोले, “आओ दूखन भाई ! बहुत दिनपर भेंट हुई। हमें तो यहाँ भी यही अपनी जातिवाला काम मिल गया। मुनी लोग गाँजा पीते हैं। उन्हींके लिए चिलम तैयार कर रहा हूँ।” मैंने भी दो-चार तैयार करा दीं और घूम-फिरकर लौट आया।”

“तो वहीं रह क्यों नहीं गये ?”

“खूब बात करते हैं ! बिना परान निकले वहाँ कोई कैसे जाकर रहेगा ? फिर, करम भी तो वैसा चाहिए ? कहा गया है कि—कका फिरि फिरि परों मोहके फन्दा, जनम गँवायो करि करि धन्धा !”

“तो क्या वहाँ बिना काम-धन्धाके ही लोगोंको सुख मिल जाता है ?”

“और क्या आप ही बताइए कि पहाड़की गुफाओंमें जो मुनी लोग

तपस्या करते हैं उन्हें कौन भोजन देता है ? कौन काम-धन्धा वे करते हैं ? वहाँ कहाँ खेती-गृहस्थी होती है ? अरे बाबूसाहब, लिखा है कि 'कोटि करे चतुराई, विधिका लिखा मेटि ना जाई।' वही देनेवाला है। सबकी चिन्ता भगवान् करता है। लिखा है कि—

‘छोटे जीवमें छोटा बसेरा
बड़े जीवमें बड़ा बसेरा
पाप-पुण्यका करो निबेरा।
सबकी खबर सांभको लेऊँ।
बिना आज्ञा भोजन ना पावें।’

“साधू-मुनी लोगोंकी क्या बात है ? वे लोग तो हवा पीकर रहते हैं।”

“हवा पीकर रहा जायेगा ? खूब बात करते हैं ! अरे, मैंने तो जाकर देखा है। भगवान् खूब बड़ा-बड़ा चार पेड़ा सबेरे-सबेरे उनके यहाँ भेज देता है।”

“तुम्हारे यहाँ भी कभी भेजा है दूखन ?”

“रोज भेजता है। दूसरा कौन देता है ? आप ही सोचिए। पचहत्तर वर्षकी हमारी उमर हुई। सोलह वर्षकी अवस्थामें मैं सिलहट गया। वहाँ चाय-बगानमें चौतीस वर्षतक साहबोंके साथ रहा, खूब कमाया। यहाँ आये पचीस वर्ष हो गये। सारी कमाई चली गयी तो बुढ़ीतीमें बेटे-बहूने मिलकर घरसे निकाल दिया। पाँच वर्षसे, इस मरनेके वक़्त भी, चैनसे खा-पीकर भगवान्का भजन करता हूँ। न कभी उपवास किया और न भीख माँगी। तब बताइए कि कौन खिलाता है ?”

“अरे भाई, तुम तो इस बूढ़ी अवस्थामें भी इतना काम कर लेते हो कि कोई नया आदमी भी नहीं करेगा। काम करनेसे खानेको मिलता है।”

“और वह सुग्गा कौन काम करता था कि भगवान्ने उसे भोजन दिया ?”

“कौन सुग्गा ?”

“नहीं जानते हैं ? एक बार ऐसे ही रामचन्द्रजी और सीताजीमें बाजी लगी । रामजीने कहा कि बिना हमारी आज्ञाके कोई भोजन नहीं पाता और सबकी खबर मैं सन्ध्या समय लेता हूँ । सीताजीने कहा कि इसकी परीक्षा होगी । उन्होंने अपने सिन्दूरवाले डिब्बेमें एक सुग्गा (छोटा पतिंगा) बन्द कर दिया । रात हुई । शयनकी वेलामें सीताजीने कहा कि क्या दुनियामें सबके भोजनका प्रबन्ध आपने कर दिया ? रामचन्द्रजीने कहा ‘हाँ’ । तब सीताजीने अपना सिन्दूरवाला बक्स खोला । देखती हैं कि उसमें भी नन्हों-नन्हों मुलायम घासोंका चारा सुग्गेके आगे पड़ा है । अब आप ही बताइए न किसने उस बन्द डब्बेमें चारा रख दिया ?”

“यह सब तो किताबकी बातें हैं ।”

“तो क्या किताबोंमें ऐसे ही झूठ-मूठका लिख दिया जाता है ?”

“क्यों नहीं लिख दिया जाता है ? तुम्हीं तो राजा नृगवाली कहानीमें बता रहे थे कि झूठ लिखा है ।”

“हाँ वह बात तो थी—उसमें यह लिखा था कि गंगाका बालू गिना जा सकता है, आकाशके तारे गिने जा सकते हैं और वर्षाकी बूँदें गिनी जा सकती हैं, परन्तु राजा नृगकी दान की हुई गौवें नहीं गिनी जा सकतीं ।—भला बताइए गंगाका बालू कौन गिन सकता है ?”

“अरे दूखन दादा, दानकी गायोंकी अधिकता दिखानेके लिए ही ऐसे बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है ।”

“हाँ, मानना ही पड़ता है । भगवान्ने खुद कहा है कि ‘हुंड विसास विसुन गुन गाना ।’ हे अर्जुन, विश्वास करके विष्णुका गुन गाओ । विश्वासमें ही सब कुछ है । अगर चूक गये तो ‘जाल लिये जम फिरत अहेरा, हरी विमुखपर देत दरेरा’ और आगे कहा है कि ‘अवसर चूकि फेर पछतैहो, गूनवेद प्रभुके न गइहो ।’ इसीसे बाबू साहब ! केवल गप-शपमें ही नहीं रहना चाहिए । कुछ भगवान्का भजन भी करना चाहिए । कहा है—‘राम नाम लिहल करीं, टहल-धन्धा कइल करीं ।’”

“तो आज क्या टहल होगा दुखहरण जी ?”

“क्या होगा ? जा रहे हैं, कई दिनसे मुखिया बाबू डोर बरनेके लिए कह रहे हैं । स्नान हो गया । शिवजीको जल चढ़ाया, सूर्य भगवान्को धूप-दीप दिया । अब एक दोहा रामायन पढ़ेंगे । फिर शाम तक रस्सी बरेंगे । वहीं आज मेलिह छूटेगी (भोजन होगा) । शामको एक खाँची घास काटेंगे । वह हीरा सुनार रोज एक आना देता है । कहाँका कम है ? बताइए, कोई ऐसे एक पाई भी देगा ?”

“इतना काम मत करो दूखन । अब मरनेके निकट आये । खानेका इन्तज़ाम तो ऐसे ही तुम्हारा यहाँ रहता है ।”

“बिना काम किये रहा ही नहीं जाता बाबू साहब । जिन्दगी-भर खूब पुरुषार्थ किया । अब बैठकर खाते नहीं बनता है ।”

दूखनने भींगा हुआ अपना गमछा ओढ़ लिया । सोंटा उठाया और धीरे-धीरे चल दिया ।

अब मैं सोच रहा हूँ कि भाग्यवाद और कर्मवादका क्या ही सुन्दर समन्वय है । भगवान्पर कितना दृढ़ विश्वास है ! पर साथही कर्ममे कितनी दृढ़ निष्ठा और तत्परता है । एक दिन भी बेकार नहीं जाता, एक क्षण भी बेकार नहीं जाता । जब कोई काम नहीं तो बोरा बिछाकर ध्यानपूर्वक प्रेमसागर जिसे वह रामायन कहता है, पढ़ता रहता है । इसका पुस्तकालय कितना संक्षिप्त है । एक पुराने कपड़ेकी बेठनमें पाँच पुस्तकें बँधी हैं : प्रेमसागर, अर्जुन-गोता, बारहखड़ी, राशिमाला और हनुमानचालीसा । एक मनोरंजनी भजनमालाकी किताब भी शायद रही, जिसे बताता है कि कोई चुरा ले गया । तो भी उसके सारे भजन इसे कण्ठस्थ हैं, जिन्हें रातको सोते समय या एकान्तमें काम करते समय गाता है । उस भूली हुई किताबपर इसकी बढ़ी ममता है । उसे प्राप्त करनेके लिए इसने तिवारीजीसे बम्बई बैंकटेश्वर प्रेसमें चिट्ठी लिखवायी । उसका कहना है कि ‘खेमराज पण्डित’ उसे अच्छी तरह जानते हैं । उनकी बहीमें उसका नाम दर्ज है । जब वह

सिलहटमें झा, तो वहींसे पुस्तकें मँगाया करता था। चिट्ठी उसने छोड़वायी रामचरित-मानसके लिए और निवेदन किया कि रामायणका तो दाम देंगे, परन्तु मनोरंजनी भजनमाला हमारे लिए मुफ्तमें भेज दीजिए, क्योंकि आपका पुराना परिचित ग्राहक हूँ। बम्बईसे बत्तीस रुपयेके सटीक बड़े रामचरित-मानसकी बी० पी० आ गयी तो दूखन बड़े चक्करमें पड़ा। उसका ख्याल था कि दो-चार रुपयेमें मामला हल हो जायेगा। खैर, उसने इसे उचित नहीं समझा कि उसके श्रद्धेय 'खेमराज पण्डित' की भेजी बी० पी० वापस चली जाये। भला वे क्या सोचेंगे? अतः बड़े श्रमसे एक श्रद्धालु महाजनसे बी० पी० छुड़वा ली। दूसरे, यह भी बात थी कि मनोरंजनी भजनमालाकी किताब भीतर होगी। बण्डल खुला तो दूखनको बड़ा खेद हुआ। वह किताब उसमें नहीं थी। पत्र मिला कि पुस्तकें मुफ्त नहीं मिल पायेंगी। दूखनने दुःखी होकर फिर पत्र लिखवाया। पत्र भोजपुरीमें लिखा गया जिसका आशय था कि 'हे खेमराज पण्डित! आपने बड़ा धोखा दिया। मैं तो आपके विश्वासपर था। ऐसा काम नहीं करना चाहिए।' बेचारे दूखनको क्या पता कि व्यापारका मामला है और उसके पत्र उसके पण्डितजीको शायद मिलते भी नहीं!

मैं सोच रहा हूँ कि मेरे परिचितोंमें जितने भी लोग हैं उन सबसे यह दूखन महान् है। बेसहारा है, अकिंचन है, पर यों मुफ्तमें खाना नहीं चाहता। रहता है यहींपर। वह अलमारी है। उसमें उसका सामान है। छह-सात घड़े हैं। किसीमें चावल है किसीमें दाल, सारा सामान है। तेल, मिर्च, नमक, गुड़ और भुजना सब रखा है! एक हाँड़ीमें सत्तू है। सबेरे शर्बत बनाकर भगवान्‌को अर्पित कर पीता है। दोपहरमें नित्य सत्तू और शामको पुनः जलपान और रातमें भोजन। भोजन किसीके घर सीधा देकर बनवा लेता है। एक घरपर ही भोजन बनानेका यह बोझ भी नहीं देना चाहता, बदल-बदलकर कई लोगोंके घर बारी-बारीसे बनवाता है। सभी प्रसन्नतापूर्वक बना देते हैं। किसीकी चारपाई बुन दिया, किसीकी

रस्सी बट दी, किसीको घास गढ़कर दे दी। किसीकी पलानी छा दी। किसीकी टाटी बाँध दी। हाथसे बैठकर करनेवाला हर काम इतनी खूबीसे कर लेता है कि प्रसन्न होकर लोग खानेको भरपूर दे देते हैं। जो पाता है उसे पूरा हिफाजतसे रखता है। मैं सोचता हूँ कि धन और ऐश्वर्य पाकर भी कोई क्या ऐसा सुखी और सन्तुष्ट हो सकेगा? शामको पहले घण्टों पाठ बाँचता है, भजन गाता है, फिर भोजन करता है और उसके बाद यदि सुननेवाले हैं तो घण्टों प्रेमसागर और रामायणकी कहानियाँ सुनाता है। सुनाते-सुनाते उसीमें लीन हो जाता है। इस तन्मयतासे सुनाता है जैसे प्रत्यक्ष देखी बातको कह रहा है। कोई चिन्ता नहीं, कोई शिकायत नहीं; हथ्य है, काम करता है, खाता है, भजन करता है और जी रहा है। विश्वका महान् उपकारी दुखना !

मैं सोचता हूँ उसकी दिन-चर्यामें क्या कभी कोई व्यतिक्रम आता है? कभी नहीं। पचहत्तर वर्षका बूढ़ा, चाहे कोई मौसम हो, कैसी भी प्राकृतिक आफ़त हो, स्नान ज़रूर करता है। दिनमें घास वगैरह काटनेका काम करता है तो पुनः स्नान करता है। शिव और सूर्यकी पूजा ज़रूर करता है। यहाँ कमरेको धूपसे ज़रूर सुगन्धित कर देता है।

यह लो, दूखनदास आ गये ! खट्ट, खट्ट, खट्ट !! सोटा बज रहा है। फाल-फालपर धीरे-धीरे चल रहा है। शरीर झुककर धनुष-सा हो गया है। पेट सटकर जैसे पीठकी ओर खिंच गया है। एक हाथमें १५-२० हरी-हरी बाँसकी कइनि लिये है, दूसरे हाथमें गठरी है।

“क्या है दूखन? बड़ी जल्दी चले आये? काम नहीं हुआ क्या कुछ?”

जवाब देनेके लिए आँगनमें एक क्षणके लिए दूखन खड़ा हो गया। मैंने सोचा यदि चश्मा और चप्पल हो तो ठीक इसकी आकृति गाँधीजी जैसी हो जायेगी।

“मुखिया साहबने कहा कि अभी मूँज मँगानी है, परसों काम होगा। वहाँसे कुटीपर महाराजजीके यहाँ चला गया। भगवान्‌का प्रसाद लिया।

एक खाँचीका हुकुम हुआ। यह कइनि काटकर ला रहा हूँ। रास्तेमें एक जगह जन्माष्टमीके दिनका सीधा बाक्री था, लेता आया। उस मौके-पर दोनों दिन मैं व्रत रहा।”

“ऐसा क्यों किया दूखन ?”

“पत्रामे लिखा था कि दोनों दिन जन्माष्टमी है।”

“इससे क्या ? व्रत तो एक ही दिन रहना चाहिए ? दो दिन उपवास करनेसे क्या लाभ ? यह तो बेवकूफी है।”

“वाह वा ! आपको कोई दो रुपया देगा तो बुरा लगेगा ? जितना ही गुड़ डाला जायेगा उतना ही मोठा होगा। यही न कमाई है !”

सीधा ठीक जगहपर रखकर दूखन अपना हँसिया लेकर पास आ गया और बातकी-बातमें बाँसकी उस कइनिके बण्डलको सुधार-चीरकर बातीका रूप दे दिया।

“कितनी देरमें एक खाँची तैयार हो जायेगी ?”

“छन-भरमे।”

“तुम हमको एक सौ बनाकर दो। बाज़ार भेजवा दें। काफ़ी पैसा मिलेगा।”

“खाँची तो आपकी कृपासे यहीं नहीं अँटती हैं। कितने लोग माँगते हैं। बस बनाना तो है।”

बातकी-बातमें ज़मीनमें थोड़ा गढ़ा बनाकर पेनी छानकर उसमें डाल दी गयी। खाँची ऊपर उठने लगी। दूखनकी सरस बातें जारी हैं।

“देखिए, हम लोग सिलहटमें थे तो साहब बोलता था कि काला लोग सब कामचोर है। बैठकर खाना पसन्द करता है। खर नहीं टकसाना चाहता। आप ही बताइए इससे पेट भरेगा ?”

“नहीं दूखन दादा, ऐसे कैसे पेट भरेगा। तुम साहबोंके साथ रहे इसीसे ऐसे फुर्तीले हो गये।”

“और क्या ? साहब हमको बहुत मानता था।”

“क्या कहता था ?”

दूखनको ऐसा लगा मानो वह सिलहटमें है और साहबके रूपमें है ।
पूरा जोर लगाकर टोनसे बोला,—

“क्वान्ट ! दूखना ? क्वान्ट !”

“वाह-वाह ! बहुत मानता था । अच्छा, जब वह बिगड़ता था तो क्या कहता था ?”

“क्वाण्ट ! दूखना ? गोदड़का बच्चा ! विविल ग्याल ! गेट आउट !”

“खूब दूखन, तुम तो अँग्रेजी भी जानते हो ?”

“मैं क्या नहीं जानता ?”

दूखनकी खाँची बनकर तैयार हो गयी । अब मैं सोच रहा हूँ, सच-मुच यह बूढ़ा क्या नहीं जानता है ? इसका हाथ नहीं, पारस पत्थर है । यह अनगढ़ वस्तुओंको आकार देता है । यह कलाकार है, इसका हृदय विश्वासकी सुदृढ़ चट्टानपर प्रतिष्ठित है । मेरी लेखनी और उसके हाथने एक ही समयमें अपने-अपने कार्य पूरे किये हैं, परन्तु उसकी खाँचीके आगे अपने इन चार पन्नोंको मैं किसी प्रकार महान् नहीं मानता ।



सुर्तीकारण्ड

आखिर इस छोटी-सी बातको किस प्रकार लिखूँ ? घण्टोंसे माथा-पच्ची कर रहा हूँ । आसमान और 'जमीनके कुलाबे मिलाता हूँ ।' एक ओरसे श्रीगणेश होता है, दूसरी ओरसे टाय-टाय फ़िस ! एक डर है दोस्तोंका जो कभी-कभी ये लिखे पन्ने उलट लेते हैं । भला वे अपने मनमें क्या सोचेंगे ? अरे, यह मास्टर है ! पूरा लिख-लोढ़ा पढ़-पत्थर है ! बज्रमूर्ख, देहाती भुच्चड़ और मझौआका बागड़ है ! दूसरोंको लम्बी-चौड़ी बातें सिखाता है और अपने कितने गहरे पानीमें है ? 'आप न जाये सासुरो औरनको सिख देय !' यही सब बातें सोच-सोचकर तबीयत कटकर रह जाती है ।

....तो यदि इसे न लिखूँ तो क्या हर्ज ? बात मनके भीतर ही रहे तो क्या संसारको मशीनका कोई पुरज्जा बिगड़ जायेगा ? यह बात भी है और पक्की बात है, परन्तु क्या बताऊँ ? बात है कि बमगोला है । फट-फट पड़ती है । मास्टरका मन ही कितना बड़ा ठहरा ? बात पचे तो कैसे ? कहना ही है, परन्तु समस्या है कि कैसे कहूँ ?

चाहता हूँ कि कोई कल्पित पात्र गढ़कर सारा क्रिस्ता उसीके मत्थे ठोंक दूँ । लेकिन ऐसा करनेमें एक कठिनाई है । सारे पुरुषार्थका यश एक अशरीरी व्यक्तिको मिल जायेगा । सच तो यह है कि चाहे यह मूर्खताका यश है, चाहे दुर्व्यसनका और चाहे लोभका—है तो यश ही ! भीतरसे इसे छोड़ना नहीं चाहता हूँ । हाँ, एक बार मनमें आया कि किसी मित्रको घसीटूँ, परन्तु डर है कि मित्र बोखला न उठें ।

अच्छा साहब, लीजिए एकदम सच्ची घटना आपके सामने रख देता हूँ । लेकिन देखिए, फिर एक बार लेखनी अपना साहस खो रही है ।

इसलिए कि एक भारी रहस्य आपके सामने खुलने जा रहा है। आप मुश्किलसे विश्वास करेंगे कि यह मास्टर सुर्ती खाता है, दुनियाकी आँखें बचाकर खाता है, छात्रोंसे छिपा-छिपाकर खाता है। पर मास्टरकी यदि कोई प्रेयसी है, तो यही है। इसके लिए यह क्या नहीं करता ! चोरी, झूठ, दुराव और याचनाकी सीढ़ियोंको पार करता यह बेहयाईके ऊँचे मंचतक पहुँच जाता है।

....तो मैं आपको एक बात सुनाने जा रहा था। सुनिए ! आज प्रातःकाल जलपानके बाद अचानक सारा संसार हमें बहुत सुन्दर लगने लगा। क्वारका निर्मल प्रभात बिहँस रहा है। हरियालीपर ओसकी बूँदें पड़ी हैं। किरनोंकी आँखें अभी-अभी उनपर गड़ी हैं। बाँसके झुरमुटमें चिड़ियाँ चहक रही हैं। अमरूदकी फुनगीपर दो सुन्दर शरदके मेहमान चटक-मटक रहे हैं। क्या सुन्दर पाँखें हैं, कैसी चंचल आँखें हैं ! सारा संसार कितना प्रसन्न है !

पाकिटमें हाथ डाला। अरे, सुर्ती तो कलकी ही खत्म है। मँगाना चाहिए। परन्तु यह तो बिना टटोले ही ज्ञात था कि जेब खाली है। वेतन मिलनेकी तारीख द्रौपदीके चोरकी भाँति बढ़ती जाती है। हाय रे दुःशासन ! बनियेके यहाँसे सबेरे-सबेरे उधार मँगाना सम्भव नहीं। उनकी बोहनी कौन बिगाड़े ! तब सुर्तीकी समस्याका क्या समाधान है ?

कहाँ मैं सुर्ती बनाता हुआ यहाँ बैठकर प्रकृतिकी छटाका आनन्द लेता और कहाँ छत्तीसके फेरमें पड़ गया। चित्त चंचल हो उठा। नाना प्रकारकी अण्ट-सण्ट बातें डाँवाडोल करने लगीं। बैठा रहना कठिन हो गया तो सुर्तीकी खोजमें उठ पड़ा। अभी मेरे मित्रके आनेमें एक घण्टेकी देर थी। वे आठ बजे आनेवाले थे। अत्यावश्यक कार्यसे बुलाया था।

अपने दरवाजेके बाहर चबूतरेपर उस जगह आकर खड़ा हो गया, जहाँसे रास्तेपर-के आने-जानेवाले दिखायी पड़ते हैं। हाथमें एक पुरानी पत्रिका ले ली और टहल-टहलकर पढ़नेका अभिनय करने लगा। आँखें

आधी पत्रिकापर आधी रास्तेपर थीं। कभी पत्रोंके बीचमें उँगली लगाकर हाथ नीचे करते हुए विचार-मग्नकी जैसी मुद्रा बनाता। कितने लोग आये, कितने गये, कितने प्रणाम-आशीर्वाद खर्च हुए। सुर्तीवाला एक भी नहीं मिला। मेरा नाटक चलता रहा, उस समय चराचर हमें सुर्तीमय प्रतीत हो रहा था।

बिसेसर आता दिखायी पड़ा। खाता तो है, परन्तु शिष्य है ! कैसे माँगूँ ? “ऐ बिसेसर !”

“प्रणाम मास्टर साहब !” और बिसेसर सामने खड़ा था।

“कहाँसे आ रहे हो ? नदीकी ओरसे ? उधर कोई साइकिलवाला आदमी दिखायी पड़ा ?” न जाने क्यों और कैसे पूछ बैठा।

“नहीं !”

“अच्छा जाओ।”

आखिर सुर्ती माँगनेकी हिम्मत नहीं हुई और बेबातकी-बात पूछकर बुलानेका प्रयोजन समाप्त कर बिदा कर दिया। मन धिक्कार उठा, सुर्ती है कि नीचताकी हद है ! क्या मज्जा मिल रहा है इस विपन्न याचक भावमें ?

आज सबेरे न जाने किसका मुँह देखकर उठा। मुँह खोलनेपर बार-बार इनकार हाथ लगता है। कितना प्रपंच खड़ा करना पड़ता है माँगनेके लिए ! मनोहरदास आये। देखते ही बोले :

“अरे मास्टर साहब ! क्या खड़े-खड़े पढ़ रहे हैं ?”

“यही एक पत्रिका है,” पत्रिका हाथमें मोड़ते हुए मैंने कहा, “अभी-अभी मिली है। यहाँ जरा देख रहे हैं, एक आदमीकी प्रतीक्षा है। आपके पास चूना है ?”

“है तो जरूर, मगर आप सुर्ती खिलायें तब ?”

“अरे यह बात नहीं, चूना मैं खोजता था, कपड़ेका एक दाग छुड़ाना है। वैसे सुर्ती खाना तो अब मैं धीरे-धीरे छोड़ रहा हूँ।”

मनोहरदास काफ़ी चूना देकर चले गये तो सिरका पसीना पोंछकर फिर पत्रिका इधर-उधर करने लगा। भारी मुसीबत टली। यह चूना माँगनेवाली कला तो लगा कि गले ही पड़ जायेगी। पछताने लगा कि कपड़ेका बहाना क्यों किया? ज़रूर सुर्ती भी ली थी परन्तु अब माँगनेकी हिम्मत नहीं रही।

जब महेश बाबूको सुर्ती बनाते आते देखा तो थोड़ी प्रसन्नता हुई। बोला :

“कहिए महेश बाबू, कहाँ जायेंगे?”

“जायेंगे कहाँ, पाससे ही कुछ खेत देखकर लौट आयेंगे। आज छुट्टी है? रात-दिन किताबोंमें डूबे-डूबे दिमाग़ खराब हो जाता है, चलो घुमा लायें।”

“चलिए,” मैं पीछे हो लिया, पत्रिका घर भेजवा दी। सुर्ती माँगना ठीक नहीं समझा। सोचा, बनाकर अपने आप बढ़ा देंगे। तब कोई भारी बहाना कर लौट आयेंगे।

“लो, मास्टर, सुर्ती बनाओ न?” पीछे मुड़कर उन्होंने कहा।

“नहीं, नहीं, आप बनाइए। बहुत मीठी लगती है आपके हाथकी बनी हुई सुर्ती।” कहनेको तो मैं कह गया परन्तु फिर हाथ मलने लगा। जल्दीसे ठोंक-पीटकर चलता बनता और अब तो न जाने कितनी देर लगे।

“मैं तो, जानते हो, दो कामोंमें जल्दी नहीं करता। एक तो भोजन करनेमें और दूसरे सुर्ती बनानेमें। इसका विधान बनाया गया है। चूना मिलानेके बाद १०८ नुटकी धीमे-धीमे मलना चाहिए।”

यह प्रवचन सुनकर मेरा माथा ठनका। मगर ऐसी आशा भला कौन कर सकता है कि कोई घण्टों तक सुर्ती बनाता ही रह जायेगा! अब हम लोग गाँवके बाहर हो गये। महेश बाबूने कुछ और सुर्ती पाकिटसे निकाली और टूंगने लगे। मैंने सोचा, पहले अपने लिए ही बनाते आ रहे थे अब हमारे साथ हो जानेके कारण बढ़ा रहे हैं।

टेंगरी बोजरेके खेतमे मूँग काट रहा था । महेश बाबूको देखते ही बोला, “बाबूजी, तनी सुर्तीके दया हो !”

“दया-मया अपने पास रखो ! सुर्ती लेना हो लो, बना लेना ।” थोड़ी सुर्ती और तनिक चूना उन्होंने दे दिया और चलते बने । उसी समय मनमें आया कि हम भी माँगकर लौट चलें पर मुँह बलात् बन्द-सा हो गया ।

“देखते हैं मास्टर साहब ! चार जगह सुर्ती दे चुका । अभी जाते-आते न जाने कितने लोग माँगेंगे ।” उन्होंने कहा ।

“दुनिया मंगन हो गयी है”, मैंने कहा और हँस पड़ा ।

“क्या कहते हैं ! जैसे कार्रूँका खजाना महेश बाबूके घर गड़ा है, या लोग गेहूँ तौलकर दे गये हैं ! बहाना कर दूँ तो सियारकी तरह मुँह लटक जाये । बेहया कहींके !”

“नहीं जानते हैं, लिखा है कि अगर भीख माँगनेकी कला सीखनी हो तो सुर्ती खाना सीखो ?”

“मगर सभी सुर्ती खानेवाले भिखमँगे थोड़े होते हैं । मुझे ही देखो, बराबर पासमें रखता हूँ । ढाई-तीन आने नित्य खाकर थूक देता हूँ !”

“अरे, आपके समान ही सभी हैं ? हीरा और काँच एक समान कैसे होंगे ।”

मैंने देखा अभी सुर्ती कुटकनेका ही कार्य हो रहा है । अभी चूना मिलाया जायेगा । एक-सौ-आठ चुटकीवाली बात प्रयोगमें आती होगी तो और बना ! फिर भी सब मिलाकर आधा घण्टा तो बहुत काफ़ी होगा ।

अब हम लोग खलिहानमें आ गये । महेश बाबू अगहनीकी फ़सलवाले खेतोंकी ओर देखकर बोले :

“देखो, इस साल बाढ़ नहीं आयी, लोग बस गये ।”

“और क्या, नहीं तो बेमौत मर जाते ।”

“तुम्हारे पास कितने बीघे अगहनी है मास्टर ?”

“होगी छह-सात बीघे ।”

“मेरे पास तो इस साल काफ़ी है । अच्छा जोड़ो ।” अब महेश बाबू सुर्तीवाली मुट्ठी दबाकर बैठ गये । मुझे भी बैठ जाना पड़ा और लगा हिसाब होने—

“तीन बीघा टाँड़पर.... एक बीघा एक....जोड़ो....चार बीघा....ढाई बीघा पाँच मण्डा बटइया....कितना हुआ....साढ़े पाँच....और छह बीघे उस गाँवपर....और हाँ....डेढ़ बीघा गोंयड़....कितना हुआ ?”

मेरा मन सुर्तीकी ओर था । हिसाबकी तरफ़ ध्यान ही नहीं था । इधर कुल योग पूछ दिया गया ।

“यही करीब....करीब....यही करीब....।”

“तेरह बीघा हुआ न ?”

“हाँ, तेरह बीघा ।”

“बस यही है,” वे बोले ।

“काफ़ी है, चलिए !” ‘चलिए’ शब्दपर ज़ोर दिया और एक कदम बढ़ गया । अब वे भी उठे और चल पड़े । हाथ धीरे-धीरे सुर्तीपर चलने लगा । मैंने सोचा कि अन्य बातोंमें भूल जानेके कारण सुर्ती बनानेमें विलम्ब हो रहा है अतः सुर्तीकी ही बातोंको चालू रखना चाहिए ।

“नशोंमें सुर्ती श्रेष्ठ है, क्यों महेश बाबू ?” मैंने पूछा । महेश बाबू मौन हो गये । क्षण-भर सोचकर बोले :

“नशे सब खराब हैं मास्टर ! तुम्हें क्या बताना है । यही कहो कि एक गन्दी लत पड़ गयी, अब जबतक मर नहीं जाते गले पड़ी रहेगी ।”

“मेरे कहनेका मतलब था,” झेंपते हुए मैंने कहा, जैसे किसी प्रकार बात जारी रखनी थी, “कि कम नुक़सान करती है ।”

“कम नुक़सान करती है ? कौन कहता है ? देखो !” और खड़े होकर महेश बाबूने मेरे सामने मुँह बा दिया । बोले, “देखो, अगले चार दाँत सुर्तीकी बलिवेदीपर चढ़ गये । घनकी बरबादी अलग, समयकी बरबादी अलग, गन्दी आदत अलग ।”

“जब ऐसा है तो क्यों खाते हैं ?” मेरे मुँहसे निकल गया ।

“और यही सवाल मैं भी पूछता हूँ.....मैं तो गृहस्थ हूँ.....मूर्ख हूँ....
तुम मास्टर.....गुरु.....होकर क्यों खाते हो ? बोलो ? जवाब दो ?”

मैं मौन हो गया । गाँवसे काफ़ी दूर निकल आये थे । अब तो मेरे मित्रके आनेका समय भी हो गया था । मेरा मन घबराने लगा । सिर चकराने लगा । साँप छछूँदरकी दशा हुई । न आगे बढ़ते बनता न पीछे घूमते । महेश बाबूके पीछे जबरदस्ती खिंचा जा रहा था ।

इतनेमें महेश बाबूने चुनौटी निकाली और एक मिनट रुककर चूना निकालकर सुतीमें मिला दिया । चुनौटी बन्दकर पाकिटमें डाल ली और आगे बढ़े ।

“देखो, यह सूरतका खेत है । डाँड़-मेंड़पर दूसरोंकी अगहनी माच मार रही है और यह परती पड़ा है ।”

“हूँ ।”

“यह भी नहीं अकिलमें धँसा कि किसीको साझी-बटाईपर दे दे । दुनिया तमाम बेईमान थोड़े हो गयी है ? खाने बिना मर रहा है । महँगीमें दो-चार बोरा मिल जाता ।”

“हूँ ।”

“जब विपत्ति आती है तो बुद्धि बिगड़ जाती है । एक बैल भी खरीदा तो बूढ़ा । न जाने कहाँसे लँगड़ीकी बीमारी आयी और पंगुल हो गया । गाँवमें अब कोई वैसा दयावन्त सरदार-रईस नहीं रह गया । बेचारेका दो-चार बीघा भला लोग चाहते तो न बो गया होता !”

“हूँ ।”

“यह देखो, जान मियाँका खेत है । खूब खाद दी है । कैसी अगहनी है । काले भँवरके समान उमड़ी आती है ।”

“हूँ ।”

“यह तो तुम्हारा पड़ेगा ?”

“हूँ।”

“अरहर कम डाले हो क्या ?”

“हूँ।”

“अच्छा जो भाग्य-भूमिमें होगा कहाँ जायेगा !”

“हूँ।”

अब मेरा धैर्य सीमा पार करने लगा । हाथ मलता, पैर पटकता, दाँत पीसता, आर सिरका बाल नोच लेनेकी इच्छा होती । मैं आखिर क्यों अब आगे बढ़ूँ ? मुझे क्यों नहीं लौट चलना चाहिए ? मैं क्यों व्यर्थ मुँह न खोलकर और फँसता जाता हूँ ? बोला :

“अच्छा, अब दीजिये सुर्ती, चलूँ, बहुत काम है।”

“काम तो लगा ही रहेगा,” महेश बाबू एकदम निश्चिन्तताके साथ बोले, “जबतक चोला बदल नहीं जाता कामसे पिण्ड कहाँ छूटता है । बस अब यही एक खेत देखकर लौटेंगे । इसीको कहते हैं भाग्य ! चूहोंका उपद्रव देखा न ? मालूम होता है एक पौधा नहीं रहने देंगे, सब काट डालेंगे । तब भी खेत भरे हुए दिखायी पड़ रहे हैं । देनेवाला देता है तो छप्पर फाड़कर.....”

मैं ‘हूँ.....हूँ.....’ करता बेबस बढ़ता जा रहा था । एक-एक पग बढ़ाना खल रहा था । एक-एक पल युगके समान बीत रहा था । महेश बाबू क्या कह रहे हैं, पता नहीं । इस समय बुरी तरह मैं अपनेमें उलझा था । अब यह भी इच्छा करती कि घर न लौटूँ, आगे ही बढ़ता चलूँ । ओफ़, वह भला आदमी कबका बैठा होगा । किसीको पता भी नहीं कि मैं कहाँ गया हूँ । महेश बाबूने सुर्ती ठोककर गर्दा साफ़ किया ।

“अरे मास्टर, यह तो धोखा हो गया !” महेश बाबू बग़लके एक खेतकी ओर लपके । पीछे-पीछे मैं भी खीजता । पछताता ज़बरदस्ती ढकेलता-डगरता पहुँचा । वे एक खेतकी मेढ़पर रुके ।

“देख रहे हो ? सालोंने खेत चौपट कर दिया । कई बोझ काट ले

गये । रातमें ही हुआ मालूम देता है ।”

महेश बाबू एकदम व्यग्र हो गये । खेतमें घुस गये । मैं बाहर ही रहा । भीतरसे जव्र कटे हुए कई थान हाथमें लिये वापस आये तो मैंने गौरसे देखा । हाथमें सुर्ती नहीं थी । शायद इसी घबराहटमें अकेले ही फाँक गये । तभी रास्तेपर कई आदमी गाँवकी ओर जाते दिखायी पड़े । एक कटा हुआ पौधा दिखाते हुए महेश बाबू बोले :

“एकदम ताजा कटा है, देख रहे हैं ?”

“हूँ...एकदम...” मैं रास्तेकी ओर जाते हुए लोगोंको देखते हुए जल्दीबाज़ीके स्वरमें बोला, “देखिए ये लोग हमारे यहाँ जा रहे हैं, ज़रा देखूँ ।” और लपककर बढ़ा । अच्छा बहाना मिला ।

“अरे मास्टर, सुर्ती तो मैं भूलकर अकेले खा गया । लेते जाओ, बना लेना ।” उन्होंने अधीरताके साथ कहा ।

पर मैं अब आगे बढ़ आया था । छूटते ही बोला, “रहने दीजिए, मेरे पास है ।” और फ़ुर्तीसे रास्तेपर आकर कुछ देरतक तो उन लोगोंके साथ चला फिर बादमें जब महेश बाबू आँखसे ओझल हो गये तो तेज़ीसे फ़ाल कसकर चलने लगा । करीब-करीब मैं दौड़ने लगा । गाँवके पास पहुँचते-पहुँचते हाँफने लगा । मुखिया साहबने टोंका : “क्या बात है मास्टर ?”

“कसरत कर रहा हूँ ।” संक्षिप्त उत्तर देकर आगे बढ़ा । दरवाज़ेपर धड़कते दिलसे आया तो ज्ञात हुआ कि एक पुरजी रखकर मेरे मित्र चले गये हैं । शीघ्रतापूर्वक पुरजी लेकर एक सांसमें पढ़ गया । लिखा था, “मुझे उम्मीद नहीं थी कि तुम मेरा इतना अपमान करोगे । एक घण्टेतक प्रतीक्षा की । सारे गाँवमें खोज करायी । खैर, जा रहा हूँ ।”

भाषणका असर

कलकी बात है ।

यह सुनते ही कि फिर हमारे खेतसे चार-छह बोझ हरा चारा चोर चुराकर काट ले गये शरीरमें मानो आग लग गयी । धीरजका बाँध टूट गया । आखिर इस प्रकार भीगी बिल्ली बनकर गाँवमें कैसे गुजर होगी ? खाँसी रोको नहीं तो नाव डूब जायेगी ! मुँहमें ताला लगाकर रहो नहीं तो छत्तीसके फेरमें पड़ जाओगे ! खूनका घूँट पीकर चोरीका दुख झेल लो नहीं तो जबरदस्तका टेंगा सिरपर पड़ेगा ! क्या जानते नहीं हो कि चोरोंको छेड़ना बरेंके छत्तेको लकड़ीसे खोदना है ? आदि-आदि बातें सुनते-सुनते कान पक गये । अब कुछ वारा-न्यारा होकर ही रहेगा । सीधी उँगली घी नहीं निकलता । पानी नहीं हूँ कि लोग पी जायेंगे । अब एक बार चलकर लोगोंको देखूँगा । जमाना सीधे और मुँहचोर लोगोंका नहीं है ।

स्कूल जानेमें अभी घण्टे-भरकी देर थी । कुरता पहनकर चादर भी ले ली और पश्चिम टोलाकी ओर चल पड़ा । इस बातकी जाँच नहीं करनी थी कि यह किसकी करनी है । यह तो दिनकी तरह जाहिर है कि हरी फ़सलके चोर कौन-कौन लोग हैं । एक पूरा मुहल्ला ही इन्हीं लोगोंका है । सभी जानते हैं, सभी कहते हैं; वे स्वयं कहते हैं और दिन-दहाड़े लाते हैं । यहाँतक कि चोरी और सीना-जोरी तककी घटनाएँ आये-दिन सुनते हैं, परन्तु क्या बेढंगा ढंग है गाँवका कि सब चल रहा है ।

उस मुहल्लेमें पहुँचते ही मटरू चौधरी अपने दरवाज़ेपर मिले । पहुँचते ही मुसकराकर प्रणाम किया और बोले,

“अरे मास्टर साहब ! किधरसे रास्ता भूलकर इधर आ गये ? आइए

बैठिए।” उन्होंने चारपाई बिछा दी परन्तु मेरे विकृत मनने बैठनेका हुक्म नहीं दिया ! खड़े-खड़े बोला,

“खूब आदर हो रहा है मास्टर साहबका चौधरी ! इतना आदर हो जायेगा तो जल्दी ही लाद-पाथकर सिलहँट चले जायेंगे ?”

“अरे क्या बात है ? कुछ बताइएगा ?”

“बात क्या है, चारा-भूसाकी जो परेशानी है किसीसे छिपी है ? इस महामारमें प्राणकी तरह वह दो मण्डा चरी बचाकर बावगके दिनोंके लिए रख छोड़ी थी, सो सहसबाहु लोगोंने जाकर तहस-नहस कर दी।” तो हम यह पूछने आये हैं कि सचमुच बहुत लम्बी-लम्बी भुजाएँ हो गयी हैं ?”

“आपके खेतमें हाथ लगा दिये हैं ? क्या कहें ! अच्छा जाइए, पता लगाकर डाँट-फटकार देंगे। अब आपका नुकसान नहीं होगा। अन्धोंको खेत भी पहचानमें नहीं आते हैं ! मौत भी दो-एक घर बखश देती है। भला मास्टरका लाना चाहिए ?”

“यानी दूसरोंका ऐसे ही सत्यानाश करते रहेंगे ?” मैं काफ़ी झल्लाहटमें बोलने लगा, “यही तो तुम लोगोंकी चाल है। आज मैं यह कहने आया हूँ कि यह काम ठीक नहीं है।”

“तो क्या आप गाँवभरका ठीका लेकर आये हैं ?” अब वह मटरू चौधरी भी गरमाने लगा, “गाँवभरका भार आपसे चलेगा ? जाइए मास्टर साहब, कमर टूट जायेगी। आपके कन्धे इतने मजबूत नहीं हैं। यों, आपसे कहा न, बर्ज देंगे।”

“देखो चौधरी,” मैं जैसे सब कुछ दाँवपर रखकर बोल रहा था, “हमको धमकी न दो। हमारे कन्धे चाहे कितने ही दुर्बल क्यों न हों, हमारी ज़बानमें ताक़त है कि मैं खुलकर कह सकूँ कि यह एकदम नीच काम है। महापाप है।”

“पाप-पुण्य हम नहीं जानते महाराज ! हम आपकी तरह पढ़े-लिखे

नहीं हैं। हम अपना काम जानते हैं। मगर आप क्या समझ बैठे हैं कि हम रात-दिन चोरी ही किया करते हैं? आपके खेतसे चार पौदे क्या काट गये जैसे इसीसे हम लोगोंकी गुज़र होती है? अरे, कोई लुच्चा-लफंगा देर-अबेर ग़लती कर बैठा तो क्या उसे फाँसी दी जायेगी? अब वह गाँवमें नहीं रहेगा?"

गरमागरम बातें सुनकर वहाँ अनेक लोग एकत्र हो गये। अधिकांश उसी मुहल्लेके वे ही चलते-पुरज्जे रात्रिचर थे, जिनका बखान हो रहा था। एकने हँसकर कहा—

“मास्टर साहब ! ‘आपन कुसल कुसल जग माहीं।’ क्या दुनियाके भँवरजालमें पड़े हैं। कह दिया गया कि आपका एक तिनका भी अब नहीं छू जायेगा। आप तो दुनिया-भरका पँवारा पढ़ने लगे।”

“आपका हम लोग शील गुन रहे हैं,” दूसरेने कहा, “नहीं तो दूसरेसे झारकर कह दिया जाता कि जाओ जो इच्छा हो कर लेना।”

मैं इसका उत्तर देने ही जा रहा था कि ननकूका बूढ़ा बाप हाथमें सोटा लिये काँपता-काँपता आगे आ निकला और मेरा हाथ पकड़कर बोला,

“तनिक हमारी उमर देखिए। आपके पिताजीके साथ मैं गुल्ली-डण्डा खेला करता था। बड़ी लम्बी दुनिया हमने देखी है। जरा इन गौओंकी ओर देखिए—उसने पासमें ही सवेरे-सवेरे खिला-पिलाकर हटाये गये मोटे-ताज़े मवेशियोंके झुण्डकी ओर उँगली उठायी। उधर आँख जाते ही दो बातें मनमें आयीं। इतने हृष्ट-पुष्ट गाँवमें किसीके मवेशी नहीं और एक धूर ज़मीन न रखनेवाला यह चौधरी किस बलपर मवेशियोंका यह झुण्ड खूँटेपर टिकाये है? बैल महादेवजी हैं। बोलते हैं : हरियर-हरियर महादेव ! गाय पार्वती माता हैं। किसी पूर्व जन्मके पुण्यसे भगवान्ने इन्हें द्वारकी शोभा बढ़ानेके लिए, घर-आँगन पवित्र करनेके लिए भेज दिया। अब आप ही बताइए कि इनकी सेवा करना हमारा धर्म है या नहीं? अनबोलते साधुओंकी इस जमातको तृप्त करना हमारा कर्तव्य है कि नहीं?

अरे बाबूजी, 'आप जिसे चोरी कहते हैं उसे हम लोग पूजा समझते हैं। हम भी इसी गाँवमें न हैं ? कहाँ जायेंगे ? अगर मैं गलत कहता होऊँ तो आप हमको दस जूता मारें।' बूढ़ेने सिर झुका दिया।

“तो तुम क्या कहना चाहते हो ?” मैं फट पड़ा, “तुम्हारे ये नाद चरन शिवालय हैं ? तुम घासकी चोरी न कर शंकर-पार्वतीकी पूजा करते हो ? मगर मित्रो, आश्चर्य तो यह है कि इतने पूजा-पाठके बावजूद महादेवजी कभी प्रसन्न होकर तुम लोगोंके घर हीरे-जवाहरातकी वर्षा नहीं कर देते ! देखनेमे तो आ रहा है इस प्रकार कि पूजा करनेवाले ही दुनिया में सबसे अधिक दरिद्र हैं।.....”

“तुम लोग आँख खोलकर देखो ! ये तुम्हारे खँडहरके समान टूटे-फूटे मकान। ये तुम्हारी फूसकी झोपड़ियाँ। यह तुम्हारी पोशाक। तुम लोग चिथड़े पहनते हो। भरपेट भोजन शायद ही जीवनमे मिलता है, और आराम ! आराम दिनभर बेकार घूमनेमे नहीं है, आराम कुछ दूसरी वस्तु है।.....”

“गाँवके बड़े-बड़े लोग तुम लोगोंकी पीठ ठोंकते हैं। अपना मतलब गाँठनेके लिए तुम लोगोको उल्लू बनाते हैं। उनके दुश्मनोंपर हथियारकी तरह तुम लोग छोड़े जाते हो। रातों-रात खेतका-खेत उपार डालना तुम लोगोंके बायें हाथका खेल है। पर सोचो, ज़रा कलेजेपर हाथ रखकर सोचो तो सही ! बड़ोंकी गोटी तो सदा लाल रहती है, उनकी हर तरह पो बारह है—और तुम लोग ? अरे, ओ लाठी रस्सीवाले ! तुम्हारा हिसाब यह है कि तुम लोग ज़िन्दगी-भर दरिद्र ही रह जाते हो। गजभर वस्त्र और दो मुट्ठी अन्नके लिए तरसते तुम्हारे दिन बीतते हैं। ओ दूसरोंको बरबाद कर देनेवाले बावन वीर ! तुम अपनेको आबाद नहीं कर पाते। तुम रास्ता ही भूल जाते हो। नोंच-खसोट आबादीका रास्ता नहीं है। ऐसा करते तो तुम्हारी पीढ़ियाँ गल गयीं।

“आज खेत अरक्षित है। उनपर तोप-बन्दूकका पहरा नहीं है। उन्हे

तिजोरीमें नहीं रखा जा सकता । आज दिनभर खेत उसके मालिकके हैं और रातके समय तुम लोगोंके हो जाते हैं । आज तुम लोगोंका दल बड़ा बीस पड़ रहा है । आज तुम लोगोंका स्पर्श होते ही खेतके पौदोंमें जैसे पंख लग जाते हैं । अहा, कैसे पुजारी तुम लोग हो ! दिनभर इधर-उधर मटरगश्ती करते हो और रातको आसमानके तारे तुम लोगोंके घरमें हरा हरा चारा बरसा जाते हैं । तुम लोगोंके ये शंकर-पार्वती अघा जाते हैं और आशीषते हैं । दूधों नहाते हो, पूतों फलते हो ! तुम्हें धिक्कार है, यह नारकीय जीवन, ओफ् ! क्या तुम लोगोंको कभी सुबुद्धि आयेगी ? कभी पवित्र और सरल जीवन अपनाओगे ? कभी मेहनतकी मर्यादित रोटी खाओगे ? सच कहता हूँ भाइयो, जिस दिन तुम ठीकसे समझ जाओगे, जिस दिन अपने इस पापको प्रत्यक्ष देखोगे उस दिन आँसू पोंछने के लिए सूखे कपड़े नहीं रह जायेंगे । उस दिन तुम लोगोंका नया जन्म होगा । बोलो, हमारी बातें समझ रहे हो ?”

बोलते-बोलते अचानक यहाँ आकर मैं रुका । आँख उठायी तो वहाँ नर-नारियोंका एक विशाल झुण्ड चुपचाप मन्त्र-मुग्धकी भाँति सामने दिखायी पड़ा । मुझे अपनेपर बड़ा आश्चर्य हुआ । क्या-क्या बोल गया और सबसे बढ़कर ताज्जुब था कि इतनी शान्तिसे मेरा कथन लोग सुन रहे हैं । लगा, जैसे मैं नेता हो गया । मेरी बातें पुरअसर हैं और हमें अपना वक्तव्य पूर्ण कर डालना चाहिए । और जोर देकर बोला,

“ऐ मेरे प्यारे ग्राम-निवासियो ! आज मेरा दिल उमड़ पड़ा है । आज मैं वह बात बताने जा रहा हूँ जो वर्षोंके अनुभवसे सिद्ध है । दुनिया कितनी आगे बढ़ गयी । अपने हाथ और मस्तिष्कके श्रमसे लोगोंने जीवन को कितना सुन्दर रूप दिया है । और एक तुम लोग हो—गुल्लरके कीड़े जैसे, मोरीके कीट जैसे, सड़ा हुआ जीवन, सड़ा हुआ गन्दा तरीका !

“तुम्हारे लड़के स्कूलोंमें नहीं जाते । जाते भी हैं तो पढ़ते नहीं । पढ़ें क्या ? तुम्हारा रात-दिनका चोरीवाला पाठ ही उनके लिए काफ़ी होता

है। वे भी वही हो जाते हैं, जो उनके बाप हैं। इसी प्रकार युग-युगसे तुम लोग नरक-भोग करते आ रहे हो !.....

“तुम लोग आँख रहते अन्धे हो ! कौन है जो बताये कि चोरीका घन रसता है। मैं तो प्रत्यक्ष देखता हूँ हर साल तुम लोगोंका भारी-भारी नुक़सान हो जाता है। किसीकी भैंस उलट जाती है, किसीका बैल मर जाता है। आखिर कितना नफ़ा करते हो ? देखनेमें लगता है कि दो-चार रुपयेका घी रोज़ तैयार होता है। माठा-पाठीकी आमदनी अलग। पाड़ी-बाछाकी बढ़न्ती अलग। मगर सब क्या हो जाता है ? न तो तुम लोगोंकी बहू-बेटियोंको सजी-धजी हालतमें देखते हैं, न तुम्हारे लड़के आदमीके बच्चे जैसे हैं ? यह देखो तुम्हारी चारपाई है ? एक-एक रस्सी अन्तिम साँस गिन रही है। माघकी ठिठुरन आगके सहारे बिताते हो। दोनों वस्त्रतका भोजन सपना है और दुनियाकी—इस नयी दुनियाकी—बातें तो तुम्हारे लिए जैसे एकदम स्वप्न हैं।.....

“आओ, मैं तुम्हें बताऊँ ! यह चोरी-चमारी छोड़ो। यह नीचताका अपवित्र कार्य विसर्जित करो। हरामकी कमाईका भरोसा छोड़ो। दुनिया किसीके चलानेसे चलती है। कोई इसका मालिक है। हरगिज़ उसकी राय नहीं है कि कोई आदमी दूसरोंका गला काटकर अपनी ज़िन्दगी सँवारे।.....

“भाइयो, दिनभरका भूला शामको घर आ जाता है तो इसमें उसकी चतुराई है। आप लोगोंने ज़िन्दगीभर जो किया सो किया। आइए, आज प्रतिज्ञा कीजिए कि अपने पसीनेकी कमायी ही खायेंगे !”

अचानक भीड़को चीरते हुए परमेश्वर चौधरी आगे आ गये और बोले, “भाइयो, मास्टर बाबूने लाख रुपयेकी बात बतायी है। सचमुच हम लोगों की आँखोंपर परदा पड़ गया है। जैसे-जैसे लूट-खसोटकर घर भरना चाहते हैं वैसे-वैसे और दरिद्र हुए चले जाते हैं। मास्टर बाबूका कहना पाई-पाई पूरा होना चाहिए।”

जैसे-जैसे सभीने हमारी बातोंका समर्थन किया वैसे-वैसे मन दूना होता गया। मटरू चौधरीकी शान्ति देखकर पूरा विश्वास हो गया कि भाषण अरण्य-रोदन नहीं हुआ। घर लौटा तो एक भारी प्रसन्नता-सी छा गयी।

स्कूल पहुँचा। दिनभर सवेरेका वक्तव्य मनमें बादलकी भाँति उमड़ता रहा। कोई पाठ किसी कक्षामें होता, उसमें किसी-न-किसी प्रकार ग्राम-सुधारका प्रसंग अवश्य खींच लाता। मैंने लड़कोंसे बताया कि वास्तवमें ग्राम-सुधार असम्भव नहीं है जैसा कि मैं पहले कहा करता था। समस्या है कि गाँववालोंको ठीक रास्ता बतानेवाले नहीं हैं। कामकी उपयोगी बातों को ग्रामीण आज भी बहुत जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। सबसे कमी है गाँवमें समझदार लोगोंकी। आज जो भी पढ़-लिखकर निकलता है, शहरमें जा घँसता है। गाँवमें रह जाते हैं निरक्षर या अर्द्धसाक्षर मूर्ख। समझदार लोग उनसे समझकी बातें नहीं करते।

छुट्टी हुई। घर चला तो कल्पना कर रहा था कि गाँवमें आज गली-गली मेरे वक्तव्यकी चर्चा होगी। वास्तवमें आज एक बड़ा भारी काम कर डाला था। जिस मुहल्लेमें अपनी हानिका उलाहना ले जाते पैर काँपने लगता है उस मुहल्लेमें जाकर आज सफलतापूर्वक प्रभावशाली भाषण कर आया। कभी-कभी यह भी मनमें आता कि क्या मूर्खताकी बात रही। काली कमरीपर दूजा रंग नहीं चढ़ता। जो हो, मैं अपने वक्तव्यकी प्रतिक्रिया जाननेके लिए अधीर हो उठा था।

मेरी बेचैनी उस समय और बढ़ गयी जब यह देखा कि गाँवमें इसकी कोई चर्चा नहीं। हमसे कोई कुछ पूछता भी नहीं है। मुखियाके दरवाजेपर गया। जब किसीने कुछ नहीं कहा तो स्वयं ही छेड़ दिया, “आज तो चोर लोगोंको खूब फटकार बतायी है।”

मुखिया साहब हँस पड़े। बोले, “हाँ...हाँ...एक आदमी आज कह रहा था कि आज मास्टर तो जैसे सनक गया था। शहर—उस बदनाम मुहल्लेको व्यंग्यमें लोग शहर कहते हैं—में जाकर हड़कम्प मचा दिया।”

इस टिप्पणीने हमें और बेचैन कर दिया। भोजनके बाद जब नींद भाग गयी तो अनायास पैर फिर उसी मुहल्लेकी ओर चल पड़े। गाँवकी गलियाँ : ९ बजते ही सन्नाटा हो गया। कुत्तोंको डाँटता-पुचकारता और कहीं-कहीं उनसे लोहा लेता पहुँच गया। रास्तेमें कोई नहीं मिला। वहाँ भी वही सन्नाटा ! एक झोपड़ीमें कुछ लोग बात कर रहे थे। सोचा, भरसक छिपकर सुनूँगा कि क्या बातें हो रही हैं; और अगर किसी ने देख लिया तो सवेरेके वक्तव्यका कोई सिलसिला जोड़ लिया जायेगा।

मटरूकी झोंपड़ीमें कोई नहीं था। एक ओर वही सवेरेवाली चारपाई पड़ी थी और एक ओर गाय बँधी थी। चिरागका तो कहीं नाम-निशान भी नहीं था। मैं आरामसे चारपाईपर लेट गया। वहाँसे पासकी झोपड़ी की चर्चा साफ सुनायी भी पड़ रही थी। अब मैं वहाँ इस प्रकार था कि यदि कोई आ जाये तो आसानीसे यह समझ सके कि मटरूसे भेंट करने आये थे। उसकी अनुपस्थितिमें चारपाईपर पड़ रहे और झपकी आ गयी।

बातें इस प्रकार धीरे-धीरे चल रही थीं कि स्वरकी पहचान कठिन थी। अनुमान लगाया कि ५ आदमी हैं। सुना, बात हो रही थी—

“एक दिन ऐसा हुआ कि पगहा तोड़कर भाग गयी। पानी बरस रहा था। मैंने कहा कि जाओ पानीमें जुड़ाकर ठण्डो हो जाओगी। एक पहर रात रही तो आयी। चुपचाप खूँटेपर खड़ी हो गयी और पागुर करने लगी। चरकर अघा गयी थी। मैं समझ गया कि यह पूरी सधी हुई है। तबसे जब चारा-भूसामें कमी होती है, धीरेसे खोलकर पीठ ठोक देता हूँ। गाय है कि हीरा है !”

“कुछ मवेशी ऐसे होते हैं जो रातके चरानेपर बहुत पतियाते हैं। आजकल तो मज्रा बिगड़ गया है। कल मैं अपनी उस दोहानीको ले गया था। बस, मनफेर भर हो गया।”

“अच्छा, मास्टरके खेतमें कौन पड़ गया ?”

“हम ही लोग रहे काका, क्या लम्बी-लम्बी बात बक रहा था !”

“लम्बी-लम्बी नहीं, बात तो ठीक ही कह रहा था ।”

“तमाम कुत्ता काशी चले जायेंगे तो हाँड़ी ढूँढनेके लिए कौन रहेगा ?”

“हमारा तो भाई मन कहता है कि सचमुच यह रातियाई बड़ा बुरा कर्म है । लोक-परलोक दोनों जाता है ।”

“तो क्या करोगे ? जाकर तुम भी कुरसी तोड़ोगे ? अरे, सब भाग-पारसका खेल है बच्चा ।”

“मैं तो मास्टरसे पूछने जा रहा था कि हम सत्तोसत्त चोरीको छोड़ रहे हैं, हमें बताइए कि क्या करें । चार मर्द, तीन औरत, छह लड़कोंकी खर्ची कैसे चलेगी ? कौन हाल-रोज़गार करें ? कौन-सी नौकरी करें । एक धुर ज़मीन नहीं । पासमें एक पाई नहीं । यही चौआ-चाँगर तो है जो घास-पात करके, मजदूरी-बनिहारी करके पेट चल रहा है । कहो भैया ?”

अब उसके ‘भैया’ कुछ कहने ही जा रहे थे कि उधरसे एक आदमी आया और ‘चला जाये’ संक्षेपमें बोला । कुछ खड़बड़ हुई और जात हुआ कि कुछ आदमी कहीं जा रहे हैं ।

उत्सुकतावश मैं भी खड़ा हो गया और आहटसे जान गया कि लोग दक्षिण ओर बढ़े हैं । उत्तर ओर पीपलके पेड़के पाससे घूमकर मैं भी धीरे-धीरे उसी ओर बढ़ा । क्वारकी अँधेरी रात तिसपर भी आसमानपर हथिया नक्षत्रके बादल मँडरा रहे थे । बगीचेके पाससे जब वे पूरबकी ओर मुड़े तो मैं समझ गया कि बस आज ये किसी अभागके खेतपर हाथ साफ़ करेंगे ।

अब वे सीधे रास्तेपर आ गये । मैं अपनेको काफ़ी बचा-बचाकर चल रहा था । धोती बटोर ली क्योंकि साफ़ थी । कुरतेका रंग अँधेरेमें मिल गया था ।

अचानक खरखराहटकी आवाज़ आने लगी । अनुमान किया कि खेतमें पड़कर काट रहे हैं । किसका खेत यह हो सकता है ? मैं धीरे-धीरे बढ़ रहा था । अब एक-दो खेतका फ़ासला रह गया । अरे, यह तो मेरा ही खेत था ! ख़ूब बना ! मैं एकदम पास चला गया और कुछ इधर ही एक

खेतमें घुसकर देखने लगा। ठीकसे देखनेपर ज्ञात हुआ कि मेरे खेतके बगलमें जो हीराका खेत है वही इस समय मूँड़ा जा रहा है। अगहनियाके नरम-नरम पीधे, खच-खच कट रहे हैं। बेचारा हीरा ! बस यही पाँच मण्डेका खेत उसकी जीविका है।

अरे, ये गरीब एक गरीबका ही गला काट रहे हैं ! कैसी अजीब बात है !

तभी सुना, “इस मास्टरके खेतमें भी थोड़ा देख लिया जाये, क्या हर्ज ?”

दूसरेने उत्तर दिया, “जाने दो सवेरे-सवेरे आकर लेक्चर देने लगेगा। भारी मूज़ी है।”

तभी मैं जोरसे बोल उठा, “ठहरो, इस समय भी लेक्चर देनेके लिए मैं हाज़िर हूँ।”

सोनेकी लूट

सवेरे-ही-सवेरे पूरबके क्षितिजपर लंका-काण्ड दिखायी पड़ा। काले-काले धनखण्ड रावणकी सेनाके समान छा गये। किसी कोनेसे सूरजकी पीली ज्योति-रेखा रामके तेजोद्दीप्त मुखमण्डलकी आभाका पता बताती-सी लगती। यह ज्वलन्त रूप कभी प्रकट, कभी भर्द्धप्रकट हो जाता है और कभी पूरा छिप जाता है। निशाचरोंका दल वायु-वेगसे मुक्त नभमें इधरसे उधर घा रहा है, फैल रहा है, सिकुड़ रहा है। नानाकारसे अपनी माया-का विस्तार कर रहा है। यह कज्जलगिरि-समूहका बीहड़ वन और इसका समस्त तमस् गूढ़ताको चीरकर ऊपर उठता हुआ रामका अलौकिक कान्ति-वाला सत्य स्वरूप ! अहा, अब लड़ाई जमकर होगी। वह देखो सूरजको देखकर लगता है—

‘तेज पुंज रथ दिव्य घनूपा,
हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा।’

अब आसमानसे उतरकर मैं जमीनपर आ गया। शरद् ऋतुकी दूतिका खंजनको आये लगभग एक मास हो गया। कास फूलकर झड़ गये। मद-भीनी बाजरेकी महक खुलकर लुट गयी। चित्रा नक्षत्र बीत चली। शनैः-शनैः सरकती विजयादशमी भी आज आ गयी, परन्तु अबतक घरतीपर शरद् ऋतु उतरकर नहीं आयी। हवामें वह शीतलता नहीं है, अबतक ऊमस-सी लगती है। आकाशमें नील धवलताका आगमन नहीं हुआ। अबतक वह मेघाडम्बरोसे आपूरित रहता है। घरतीपर कीचड़-पानीका प्राधान्य है। अबतक बाढ़का पानी फैला है। किसान हाथपर-हाथ रखे बैठे हैं। साँस रोककर पछिमा हवाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्या हो गया प्रकृतिको ? किसी रावणके प्रभावमें वह आ गयी है क्या ? क्या रामकी

प्रजाको वह भूखों मारनेका कुचक्र रच रही है ? ज्ञात तो ऐसा ही होता है । खेतोंके रास्ते आजकल जहाँ बैलोंकी टुन-टुन-टुन घण्टीसे मुखरित रहते वहाँ भारी सुनसान है । खेतोंमें बोआईका जहाँ मेला उतर जाता वहाँ पूरी उदासी है । आसमानमें जहाँ चमचमाता शरद्का सूरज हलकी शीतलतामें मधुर गरमीकी गुदगुदाहट देता हुआ पूरे दिन चक्कर लगाता वहाँ गोलके गोल नाना रूप-रंगके बादल अपना क्रीडागार बनाये हैं—

‘प्राबृट सरद पयोद घनेरे,
लरत मनहु मारुतके प्रेरे ।’

अच्छा लो, निशाचरी मायाका आज अन्त है । आज विजय-दिन है । रामकी प्रजा आज खुशियाँ मना रही है । रह-रहकर क्षण-क्षणमें, अपनी बेहालीके बीच, अपनी चिन्ताके बीच उसे याद आता है कि आज विजय-दिन है ।

मेरा ध्यान भंग हुआ तो सामने सिसकती हुई गोमती खड़ी थी । ऐं ! क्या बात है ? सवेरे-सवेरे यह लंकाकाण्ड यहाँ भी उतर आया ? पूछा, “क्या बात है गोमती ?”

“घर चलकर जरा देख लीजिए,” उसने कहा, “मोहन बाबूजीने तमाम नाबदानका पानी ठेलकर हमारे दरवाजेपर कर दिया है । गन्दगीके मारे रहा नहीं जाता । ऊपरसे दोनों भाई लाठी लेकर चढ़ आये कि बोलोगी तो जबान खींच लेंगे ।”

वहाँ जाकर देखा तो लड़ाई अभी हथियारसे नहीं हो रही थी, खैरियत थी । गोमतीके पति गोबिनका पक्ष गरीबी और दुर्बलताके कारण रो रहा था । वह कह रहा था—

“मोहन भैया, क्यों छातीपर कोदो दल रहे हैं, कह दीजिए साफ़-साफ़ कि मैं गाँव छोड़कर चला जाऊँ ।”

“तुम गाँव छोड़कर जाओगे कि कपारपर चढ़कर बैठोगे ? दलिद्दर कहींका ! बराबर चर-चर करता रहता है !”

“हम दलित्तर हैं अपने घरके और आप लखू साहु हैं अपने घरके । कभी एक पैसा दिया है ?”

“मुफ्तमें पैसा लुटानेके लिए तुम्हारे बापने धर्मखाता खोल रखा है कि बाँटता फिरूँ ?”

“हमारे बापका नाम बेकार क्यों ले रहे हैं ? उनकी करनी सोचकर आप लोगोंको चुल्लू-भर पानीमें डूब मरना चाहिए ।”

“बस, बस कर !” मोहनके भाई बनारसीने गरजकर कहा, “बदमाश कहींका ! बहुत वक्ता हुआ है ! हम अपनी जमीनमें नाबदानका पानी बहायेंगे अथवा चन्दन छिड़केंगे तुमको क्या ?”

“यहाँ आपकी जमीन है हमारे दरवाजेके सामने ?”

“तुम्हारे दरवाजेके सामने नहीं है तो क्या पानी जमीनसे आसमानके रास्ते बहेगा ?”

“उसका इन्तजाम कीजिए ।”

“इन्तजाम तुम करो । हमारा पानी ऐसे ही बहेगा ।”

“यह तो बरिआईकी बात हुई बनारसी भाई ।” मैंने कहा, “पतली-सी गली है । यही रास्ता है । तुम्हारे घर पचासों घड़ा पानी रोज़ गिरता है । यह गन्दगीका नाला गोबिनके दरवाजेसे होकर बहता रहेगा तो कैसे काम चलेगा ? जैसे पहले पानी फेंकवानेका प्रबन्ध करते थे वैसे कर दो अथवा सोखता बनवा दो ।”

उसी समय मोहनके घरसे किसी स्त्रीकी आवाज़ आयी—

“गोहार बुला लायी है राँड़ कहींकी !”

“बहुत घमण्ड खा डालता है बहन !” गोमतीके मुँहसे निकल गया, “रावनका भी घमण्ड नहीं रहा ।”

“देखा, मास्टर ?” बनारसीने लाठी सँभालते हुए कहा, “चाण्डालिनी हम लोगोंको रावण बना रही है । अब आप हट जाइए । अब हम नहीं मानेंगे ।”

उसी समय एक हाँड़ी आसमानके रास्तेसे भनभनाती हुई गोमतीके आँगनमें हाइड्रोजन बमकी भाँति गिरी और फूट गयी ।

बनारसी गोबिनपर झपटा तबतक कई लोगोंने पकड़ लिया और खींचकर दरवाजेपर दोनों भाइयोंको पकड़ लाये । उधर औरतोंका युद्ध पूरे वेगपर शुरू हो गया । हाँड़ी, घड़ेके टुकड़े, ईंटें, कीचड़ और मिट्टीके ढेले दोनों आँगनोंमें बरसने लगे । चुनी हुई गालियोंके साथ वाक्धारा पूरी काव्य-धाराकी भाँति प्रवाहित थी । दोनों, परिवारोंकी यह लीला अड़ोस-पड़ोसके लोग जमा होकर देखने लगे । मैंने सोचा, आसमानमें ही नहीं आज धरतीपर भी रामलीला शुरू है । यह लंकाकाण्डका लोमहर्षक दृश्य प्रमाण है—

‘नानाकार सिलीमुख धाये,
दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाये ।’

दरवाजेपर आया तो हलवाहा हल-बैलके साथ तैयार मिला । बोला,
“आज विजयादशमी है न ?”

उसका तात्पर्य स्पष्ट था : उसे पैसा चाहिए । मिठाई आज वह भी खायेगा । धन्य है वह राम जिसके प्रतापसे एक दिनके लिए इन्हें भी मिठाई खानेको मिल जाती है ! दुनियाके सर्व प्रकारके सुस्वादु भोज्य पदार्थोंसे पूर्णतया वंचित संसारके सबसे महत्त्वपूर्ण जीव ! मार्क्स युगके ‘पूज्य-पुरोहित’ और गान्धी युगके हरिजन !

जब मैंने उसे एक चवन्नो दी तो बोला, “मिठाई खानेसे ही नहीं दिन कटेंगे, घरमें खानेको कुछ नहीं है ।”

बात ठीक ही थी । जिसके घर खानेका ठिकाना नहीं वह क्या मिठाई खाये और क्या न खाये ! यह इस प्रकारका मेरा ही एक हलवाहा नहीं है, इस प्रकारका कोटि-कोटि लोगोंका एक वर्ग है जो दूसरोंके लिए रात-दिन श्रम करके हलुआ-पूड़ीका प्रबन्ध करता है और स्वयं उसके लिए त्योहार भी त्योहार नहीं है । आज विजयादशमी है । राम और रावणकी लड़ाई

है। रामकी विजय होगी। अत्याचारी रावण मारा जायेगा। रामकी प्रजा प्रसन्न होगी। पर क्या वास्तवमें रामकी प्रजा प्रसन्न होगी ?

यहाँ तो भूखका रावण, गरीबीका मेघनाद और मूर्खताका कुम्भकर्ण पूरे जोरपर है। रामराज्य दूर है। श्रमिक देवता खून दे-देकर क्षीण-प्राण हो रहे हैं। पूरी दुनिया लंका हो गयी है। एक ओर सोनेका संसार है, दूसरी ओर दानवी चक्रमें पिसी गरीब प्रजाके आँसुओंका समुद्र है ! आँसुओं के समुद्रके कोटके बीच बसी यह सोनेकी लंका। आतङ्कका डंका गरीबोंकी छातीपर चढ़कर बजता है। कहाँ है सत्य ? कहाँ है न्याय ? कहाँ है मानवता ? कहाँ है धर्म ? कहाँ है मानवी गुण ? सब सोनेकी लंकाकी नीवमें दबा दिये गये। आज सदाचारकी सीता सोनेकी लंकामें क़ैद कर ली गयी है। दानवोंके लिए आदमी कीड़े-मकोड़ोंके समान हैं। सोनेवाले मिट्टीवालोंको खाते हैं। मिट्टीवाले त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। इनके राम अभी वन-वन घूम रहे हैं। अजी देर नहीं कि नर-वानरोंकी सेना लंकाके कंगूरोंपर देखी जायेगी ! घनघोर लड़ाई होगी। सोनेकी लंका ढाहकर दबे मानवी गुणोंका उद्धार करना होगा। बन्दिनी सीताका उद्धार करना होगा। महावीर-सा गरजना होगा। उस दिन इनकी विजयादशमी होगी और यही दृश्य उस दिनका होगा—

‘रहे छाड़ नभ सिर अरु बाहु,
मानहु अमित केतु अरु राहु।’

हलवाहोंने कन्धेपर हल उठा लिया। पुराने ज़मानेका ज़मीन जोतनेका यन्त्र। इसे लंकाके निशाचरोंने अपना एक हथियार बनाया था। जो सभ्य प्रजाके लिए जीवनका साधन था वही बर्बरोंके लिए विनाशक हथियार था। अब वही ज़माना फिर मानो आ गया। यह हल मानो धरतीमें नहीं, गरीबोंके पेटमें चलता है। गरीब दिनपर-दिन गरीब होते जा रहे हैं। वह कौन छिपा रावण है, जो अज्ञात रूपसे शोषण करता है ?

“क्यों भाई, क्या खेत बोने लायक हो गये ?” मेरे पड़ोसी माधो

भाईने पूछा ।

“नहीं, अभी तो खेतोंमें निखार आनेमें देर है । आज विजय-दिन है । एक जगह दो मण्डा खेत मिलेगा । सोचा, शुभ दिनको कुछ बो दिया जाये ।”

“यही काम महन्तजी भी करने जा रहे हैं । कहते हैं कि विजय-दिनको जरूर थोड़ा बोना चाहिए और रामलीला देखनी चाहिए । मगर हम लोगोंने तो जो रामलीला क्रल देखी वह किसी युगमें नहीं लगी होगी ।”

“कौन-सी लीला ?” मैंने आश्चर्यसे पूछा ।

“नहीं जानते हो ? सुनो । कल हम लोग राशन लाने पहुँचे । सोचा गया कि विजयादशमीको कुछ त्योहार-जैसा लगना चाहिए । दूकानपर पहुँचे तो सवा-दो सेरकी जगहपर दो सेरका चावल बिक रहा था । झूठ मारकर लोग ले रहे थे । बोलनेपर सुनते नहीं थे और उलटे ताव बघारते थे । एक आदमीने साहसपूर्वक कहा कि तमाम जगह सरकारी दूकानोंपर सवा-दो सेरका बिक रहा है और आप लोग दो सेरका क्यों बेच रहे हैं ? इसपर दूकानदारोंकी ओरसे कई गुण्डे लाठी लेकर मारने दौड़े । उन्होंने दूकान बन्द कर दी और बोले कि जाओ जो देते थे वह भी अब नहीं देंगे । सब लोग अपना-सा मुँह लिये चले आये । मैं वहीं रह गया । चार-पाँच व्यक्ति और थे । शाम हुई तो तीन व्यक्ति चावलोंका भारी-भारी गट्टर लेकर निकले । हम लोग उनके पीछे हो लिये । रास्तेमें ज्ञात हुआ कि चावल नाजायज रूपसे धारीपुरमें जा रहा है जो इस दूकानके क्षेत्रमें नहीं है । ले जानेवाले लोग दूकानके मुनीबके घरके हैं । अब हम लोगोंमें शक्ति आ गयी । एक तो दिनभरकी परेशानीके बावजूद दो रुपयेका भी चावल न मिलना और दूसरे यह धाँधली । चावलसहित लोगोंको पकड़कर थानेमें ले जाकर पुलिसके हवाले करा दिया गया ।”

“जरूर यह भी रामलीलाका ही एक टुकड़ा है ।” मैंने कहा, “आज

देखो चारों ओर अराजकता है। भ्रष्टाचारका रावण सुराज्यके रामके साथ लड़ रहा है। वास्तवमें इस प्रकार पुलिसको देना, पकड़ना, दण्ड दिलाना आदि क्या है? यह सब वैसा ही है जैसा रावणके सिरोँको काटना। सिरोँके काटनेसे रावण मरेगा? अजी इस भ्रष्टाचारके रावणके हृदयमें कुशासनका अमृत बसता है। जबतक वह नहीं सूखेगा रावण नहीं मरेगा।

‘काटत बढ़ाँह सीस समुदाई,
जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।’

“तुमने तो भाई त्रेता युगकी लड़ाईको आजके जमानेपर घटा दिया।”

“क्या तुम्हें नहीं मालूम हो रहा है? भाई साहब, राम-रावणकी लड़ाई तो एक-एक क्षणमें व्यक्तिके जीवनमें, समाजके जीवनमें और राष्ट्रिय जीवनमें ही हो रही है।”

“तभी तो इस लड़ाईका, इस पर्वका इतना महत्त्व है? चलो मनबोध भाई, हमलोग भी रामलीला देखने चलें।”

“मैं तैयार हूँ।”

थोड़ा दिन शेष था और लीला-भूमि तीन-चार फ़र्लांग रह गयी थी। मेलेकी गूँज, बाजों और गायन आदिकी ध्वनि जब समवेत रूपसे कानोंमें पड़ी तो पैर तेजीसे उठने लगे। मैंने कहा, “माधो भाई, देखो मेला खींच रहा है। अच्छी तरह मालूम है कि मेलेमें क्या है, परन्तु फिर भी आतुरता है। हम लोग भला होगा कि यहींसे देखें। वह देखो रंग-बिरंगे वस्त्रोंकी प्रदर्शनी-सी लग रही है। अजी गाँवके लोग आज भी मर नहीं गये हैं। बच्चोंकी उछल-कूद, फुलाने, पिपिहिरी और खिलौनेकी खुशीमें खिले चेहरे! लोगोंकी साफ़-सुथरी पोशाकें! किसानोंके सिरपर पगड़ी, गोदमें बच्चे! वह देखो चरखी। चढ़े हुए लोगोंका एक दल जय-जयकार कर रहा है। वह देखो रामचबूतरा। वह देखो युद्ध हो रहा है। सिरपर चेहरा बाँधे लड़के रावणकी जय बोलते हैं। पैतरेपर राम-लक्ष्मणकी जोड़ी किस

प्रकार चल रही है। वह दूसरी ओर सीताजी बिठायी गयी हैं। पासमें ही ढोल-झालपर लोग रामायण गा रहे हैं।”

“सब भगवान्की माया है !” माधो भाईने कहा। उसी समय रामायण की एक चौपाई रामलीलाके संवाद-सूचक लोगोंके मुँहसे निकलकर झनझनाती हुई कानोंमें आयी—

‘गर्जेंउ मरत घोर रव भारी,
कहाँ रामु रन हतौ पचारी।’

और ठीक उसी समय कागज़की बनी एक विशाल मानवाकृतिमें आग लगा दी गयी। धूमकुंज उगलकर वह आकृति उधर भस्म होने जा रही थी और इधर हम लोगोंके साथ आते अनेक आदमी उस ओर दौड़ पड़े।

“चलो चलो, दौड़ो।” कहकर माधो भाई भी उन लोगोंके साथ दौड़ पड़े और उस समय मुझे भी और कुछ नहीं सूझा। खिचा-खिचा पीछे दौड़ चला एकदम अनियन्त्रित-सा।

पास पहुँचे तो रावण जल चुका था और उसके नीचेकी भूमिकी मिट्टी लोग हाथसे बटोर रहे थे। माधो भाई भी एक ओर भिड़े थे। मेरी समझमें कुछ नहीं आया और देखा-देखी मैं भी एक जगह बैठकर मिट्टी धीरे-धीरे बटोरकर उठाने लगा।

उसी समय एक छात्रने आकर प्रणाम किया और बोला, “मास्टर साहब, आप भी सोना लूट रहे हैं !”

अब न मिट्टी लेकर उठते बनता था और न फेंकते बनता था तथा माधो भाईने उत्साहित किया—

“अजी, यह मिट्टी नहीं, लंकाका सोना है। क्या असमंजसमें पड़े हो। थोड़ा रख लो। घरमें ले चलना शुभ माना जाता है।”

अब, यह मेरे सामने मट्टीभर मिट्टी है। यह मिट्टी नहीं लंकाका सोना है। सकल विश्वकी सम्पदाकी राशिको ‘चाककर’ रखनेवाला रावण जल गया। उसकी सोनेकी लंकामें ‘रहा न कुल कोड रोबनि हारा।’ राम

राज्यका श्रीगणेश हो गया । प्रजा प्रसन्न है । यह विजयका दिन है ।
घरतीपर ऐसा शुभ शायद ही कोई दूसरा दिन है । तभी सुना—

‘बरसाहि सुमन देव मुनि वृन्दा,
जय कृपाल जय जयति मुकुन्दा ।’

काश कि वह दिन दूर न होता जब विश्व रंग-मंचपर फिर शोषण,
बर्बरता, अन्याय, अहम्मन्यता, भ्रष्टाचार, प्रपीड़न, अत्याचार, भौतिकवाद,
धर्मन्धता और पैशाचिकताके दशाननका वध होता और रामकी जयकार
करनेवालोंके हाथमें वास्तविक सोना होता !



एक हज़ारकी थली

अभी हम लोग सीढ़ियोंको पार कर ऊपर पहुँचे भी नहीं थे कि श्री धन्यप्रसाद सिंहजी चारपाईसे उठकर आये और धधाकर हाथ जोड़े हुए बोले, “धन्य है आजका दिन ! आईए, आइए ! बड़ी खुशी हो रही है । जबसे आप लोग इस बहेरी गाँवमें आये, बाट खोजता था कि इस गरीबपर भी दया करेंगे ।”

नमस्कारके लिए उठे हुए हम लोगोंके हाथ जबतक नीचे गिरे ठाकुर साहब हमारे दलके अगुआ बृजमोहन बाबूके साथ सबको लिये बैठकमें पहुँच गये ।

“कहिए, धूपमें चारपाई डाल दूँ ! कार्तिककी धूप बड़ी मुलायम होती है ! आरामसे बैठकर बातें होंगी ।” ठाकुर साहबने कहा और स्वयं एक चारपाईको उठानेका प्रयत्न करने लगे ।

“नहीं नहीं, ज्यादा देर तक बैठना नहीं है । बड़ा काम है ठाकुर साहब । आज आखिरी दिन है ।” पण्डितजीने कहा और इस समय तक हम सब लोग बैठ चुके थे ।

ठाकुर साहब रुक गये । पण्डितजीसे चार आँखें हुई । बोले, “आप पण्डितजी हैं न ?”

“जी ।”

“मेरा अन्दाज़ ठीक निकला । देखिए, पण्डित और विद्वान्का चेहरा छिपता नहीं है । लाखोंमें उसका तेज जगमगाता रहता है । भला सूरज भी छिप सकता है ? अच्छा, पण्डितजी प्रणाम !”

“आयुष्मान् , बाबू धन्यप्रसाद सिंहजी ! नाम आपका बहुत दिनसे सुनता आ रहा था । सचमुच आप पारखी हैं । गाँववालोंके सिरताज हैं ।

बच्चे-बच्चेके मुँहपर आपका यश विराजमान है। आप जैसे उदार और दानी सज्जनके यहाँ याचक बनकर आनेमें हम लोग स्वयं गौरवका अनुभव कर रहे हैं।”

“अरे.....रे.....रे.....पण्डितजी आप क्या कह रहे हैं ? याचक बनकर कैसे आये हैं ? क्या यह सब जो आप देख रहे हैं हमारा है ? हम कौन हैं आपको कुछ देनेवाले ? अरे पण्डितजी, सब भगवान्‌की माया है। जो इसे अपना मानता है उसके समान मूर्ख कौन है। कहा है—

‘कंकड़ चुन-चुन महल बनाया, लोग कहें घर मेरा रे !

ना घर मेरा, ना घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा रे !!’

इस रैन-बसेराकी जिन्दगीमें भगवान्‌के दिये हुऐके हम रखवाले हैं। आप भगवान्‌के नामपर चन्दा माँग रहे हैं। आज आपके लिए कुछ भी अदेय नहीं है।”

अन्तिम वाक्यके शब्द कानमें पड़े और सबकी आँखें ठाकुरसाहबकी ओर खिंच गयीं। लगा जैसे आज किसी अच्छे व्यक्तिका मुँह देखकर सब लोग चारपाई छोड़े हैं। गाँवका यह बूढ़ा सरदार कैसा दरियादिल है। जहाँ कानी कौड़ी निकालनेमें लोगोंका मन सौ-सौ मरोर खाने लगता है, वहाँ यह कहता है कि कुछ भी अदेय नहीं है। इस प्रकारकी बातें तो सतयुगकी सुनते हैं। यहाँ गाँवोंमें मानो सतयुगका बीज अभी भी वर्तमान है। क्यों नहीं ? शहरकी चौकस नागरिकता और पेचीदे छल-छन्दसे दूर खेतोंके ये बादशाह गृहस्थ होते हुए भी साधु हैं।

सुबहकी सुनहरी धूप सामने बाँसकी छाजनपर फैली लौकीकी बेलपर छा गयी है। हरी-हरी, मोटी-मोटी और चौड़ी-चौड़ी पत्तियोंसे एक सुरुचि-पूर्ण कुंज जैसा बन गया है। बोआईका काम हो गया है। खिला-पिलाकर हटाये गये बैल एक ओर धूपमें आँख मूँदकर पागुर कर रहे हैं। लड़ाई जीतकर शिविरमें निश्चिन्त पड़े हुए सैनिकोंकी भाँति ये भी श्रम-शिथिल अवस्थामें धूप खा रहे हैं। चरनपर-से गोबर हटाकर दरवाजा

साफ़कर ठाकुर साहबका नौकर मालूम होता है, घास लाने चला गया है। गृहस्थीकी सारी वस्तुएँ बहुत व्यवस्थित दीख पड़ती हैं। भाग्यशाली है यह ठाकुर ! वह तुलसीकी हरी-भरी गाछ, वह पूजा-पाठके लिए पत्थरकी सुन्दर शिला, वह छोटी-सी फुलवारी और वह आगका खजाना कउड़।.....मगर ठाकुरने अभीतक किसीको तमाखू खाने-पीनेके लिए नहीं कहा ?

“जब आपके यहाँ हम लोग पहुँच गये,” हमारे दलके अगुआ और जीवन-कालेजके प्रबन्धक मोहन बाबूने कहा, “तो सारा काम सिद्ध समझ रहे हैं। हाँ हम लोग भगवान्‌के लिए यानी किसी मन्दिर-मठियाके लिए नहीं स्कूलके लिए चन्दा माँग रहे हैं।”

“अहा हा !” ठाकुर साहबने कहा, “आप हमें इतना नासमझ समझ रहें हैं ? मैं सब जानता हूँ मोहन बाबू ! उस कालेजके लिए आप लोग फ़कीर बन गये हैं। द्वार-द्वारपर अलख जगा रहे हैं। झोली फैला रहे हैं। रातको रात नहीं समझते हैं। दिनको दिन नहीं समझते हैं। गाँव-वालोंकी उन्नतिका रास्ता साफ़ करनेके लिए आपने अपना तन-मन-धन सब दाँवपर लगा दिया है। आपका यह परिश्रम गाँववालोंके मनमें धँस रहा है। नहीं समझ रहे हैं लोग ! समझते तो आपको दौड़ना पड़ता ? क्या यह काम आपने अपने लिए शुरू किया है ? आप देहातके एक महान् आदमी हैं। इस पुण्य कार्यकी आपने नींव दे दी। अब लोगोंको चाहिए कि हाथों-हाथ आपको उठा लें। स्वयं आगे बढ़कर आपकी इच्छाओंको पूर्ण करें। आपको दौड़ना पड़ गया तो क्या शाबाशीकी बात रह गयी ? हमें तो लज्जा आती है कि हमारे ही कामके लिए आपको हमसे विनती करनी पड़ती है।.....अब तक कितना प्राप्त हो सका है ?”

“यह मत पूछिए ठाकुर साहब। बड़ा दुःख होता है। पीठ ठोकने-वाला कोई नहीं, पैर खींचनेवाले घनेरों हैं। सात दिनका समय था। चार हजारका लक्ष्य था। खास-खास लोगोंके यहाँ ही पहुँच रहे हैं। अब

अन्तिम दिन आपके यहाँसे शुरू हो रहा है ।”

“जरूर शुरू हो रहा है । जरूर आपकी इच्छा पूर्ण होगी । अच्छा, अब देखिए जल-जलपानका समय हो गया है । मुझको आज्ञा दीजिए, आपकी कुछ खातिरदारी करूँ ।”

“नहीं नहीं, इसकी कोई जरूरत नहीं, इसकी कोई जरूरत नहीं । रात आपके ही गाँवमें सभापतिजीके यहाँ रहे । वहींसे सब होकर चला है ।……”

“हम लोगोंकी खातिरदारी वही है……।” रसीद-बहीका पन्ना पेन्सिलसे उलटते हुए देवीदयालने कहा ।

“भैया, ऐसी जल्दीबाजी काहेकी है ! सारा कार्य ईश्वरके हाथमें है । किसी भारी पुण्य-प्रतापसे तो आप लोगोंका चरण द्वारपर आया । सो इस प्रकार हमें आप लोग छोटा क्यों कर रहे हैं ? कुछ-न-कुछ खातिरदारी तो होनी ही चाहिए । रामने शबरीके जूठे बेर खाये और कृष्णने विदुरके घर केलेके छिलके खाये । प्रेम ही तो दुनियामें है ! और क्या है ? साग-सत्तू जो कुछ है लेकर मैं आपके सामने हाज़िर हूँ । कहिए, आप लोगोंके लिए मोहनभोग बनवा दें ?”

“पानी तो हम लोग पी चुके हैं, यों आपका जैसा प्रेम हो ।” पण्डित-जीने कहा ।

“पानी पी चुके हैं तब हमारी खातिरदारी कैसे होगी ?”

“हम लोग आपके व्यवहारसे ही तृप्त हो रहे हैं ।”

“फिर भी कुछ तो होना ही चाहिए ।”

“अच्छा !”

“एक-एक गिलास दूध मँगाऊँ ?”

“जाने दीजिए, क्यों कष्ट करेंगे ?” मोहन बाबूने कहा ।

“इसमें कष्टकी क्या बात है ? क्या शहर है कि खरीदना है ? दो-दो भैंस लग रही हैं । यही तो गाँवका मज़ा है । हरपुरके विनोदबिहारीको

जानते हैं न ? बम्बईको ओर कहीं जज हैं । न जाने किसने बता दिया और एक दिन हमारे यहाँ मझले लड़केकी शादीके लिए आ गये । बोले, 'ठाकुर साहब, हमने भी खूब दुनिया देखी है मगर आपकी गृहस्थीकी सारी बातें ऐसी पूरी हैं कि मन भर जाता है । बोलिए क्या लीजिएगा लड़केका तिलक ?' मैंने कहा, 'जज साहब, मैं रुपये-पैसेको हाथका मैल समझता हूँ । शादी करूँगा, मगर लड़केको बेचूँगा नहीं । बेचना ही होता तो दस हजार रुपया, एक घोड़ा और एक जोड़ा बैल लेकर कितनी सिफारिश किये एक रिश्तेदारीके लोग ।' साहब बहुत खुश हुए । परन्तु असल बात थी कि उनके यहाँ हमें करना नहीं था । हाँ, तो शामको बड़ा तमाशा हुआ । जलपानके समय दो बाल्टी गरम दूध चीनी डालकर घरसे आ गया । प्यालेमें चाय पीनेवाले जज साहब तो आधे गिलासमें मुँह फेर लिये । नौकर-चाकर और द्वारपर एकत्रित लोगोंने उसे सधाया । इसीलिए कहता हूँ, इसमें कष्टकी क्या बात है । हाँ, आपकी इच्छा नहीं है तो कहिए कुछ तमाखू वगैरह ही सही ?"

"मत तकलीफ करें, कोई नशेवाला आदमी नहीं है ।"

"तब कैसे सन्तोष होगा ?"

"अरे ठाकुर साहब, हम लोग कोई गैर नहीं हैं. जो आप इस प्रकार खातिरदारीके फेरमें पड़े हैं । अपने ही घरके लड़के हैं । आपका दर्शन कर ही हम लोग प्रसन्न हो गये हैं । अब खुशी-खुशी बोहनी कीजिए कि आज-का दिन मंगलमय हो ।" किशोरने कहा ।

"ज़रूर मंगलमय होगा । आप लोगोंने काम ही ऐसा उठाया है । मालवीयजीको देखते हैं, कितना बड़ा विश्वविद्यालय बनवा दिया । हम लोग हैं कि नमक चाट-चाटकर ४ पैसा इकट्ठाकर अकड़े रहते हैं । वहाँ काशी-में जाते हैं तो आँखें खुल जाती हैं और अपनी दौलत कुबेर-कोषके आगे कौड़ी-जैसी लगने लगती है ।"

"वही कौड़ी दान-स्वरूप दी जाती है तो अमूल्य हो जाती है ठाकुर

साहब !” पण्डितजीने कहा ।

“जरूर हो जाती है, दानकी ऐसी महिमा ही है । दानसे ही स्वर्ग है । दानसे ही अपवर्ग है । आज संसारमें इतना अन्याय, अत्याचार क्यों है ? शोषण-हरण क्यों है ? पाप-ताप क्यों है ? इसीलिए कि लोग दानकी महिमा भूल गये हैं । दौलतकी मायामें चिपटे रहते हैं । वह खा डालती है तब भी आँख नहीं खुलती । यही देखिए, मामले-मुकदमे और शादी-वादीमें हजारों रुपये उड़ जाते हैं । चोर-चाई और नागहानी-सुलतानीमें सरबस स्वाहा हो जाता है । इधर कोई परमार्थके लिए कुछ माँगता है तो मानो अधेला-रूपयेमें ही डीह छूटने लगती है । भले आदमी यह नहीं सोचते कि यह रुपया क्या रहनेवाला है ! जब इसे उड़ ही जाना है तो क्यों न सुमार्गमें लगा दिया जाये ।”

“आप जैसी समझ सबको हो जाये तो दुनिया स्वर्ग हो जायेगी ठाकुर साहब !” पण्डितजीने हँसकर उत्तर दिया ।

“स्वर्गवालोंके लिए अब भी स्वर्ग है पण्डितजी । हाँ, इसीमें लोग हैं जो जीते नहीं हैं बल्कि नरक भोग करते हैं ।....अच्छा मेरी एक इच्छा और है । मैं आप सभी लोगोंका परिचय चाहता हूँ । मोहन बाबूको तो पहलेसे जानता हूँ ।” ठाकुर साहबने कहा और भारी उत्सुकतासे आँखें फैला दीं ।

“जरूर....जरूर....मैं अभी सभीका परिचय बताता हूँ ।” कहते हुए मोहन बाबूने बड़े ठाटसे सबका परिचय कराया ।

“वाह वाह ! यह तो अपने ही परिवारके सभी पढ़े-लिखे लोग आज आ मिले । भला बताइए, जल्दीमें आप लोग चले जाते तो मैं क्या जानता ? एक ही बातका खटका रह जाता है । दरवाजेपर-से बिना कुछ खिलाये-पिलाये जाने देना गृहस्थ-धर्मके विरुद्ध है । आप लोग हैं कि कुछ खाना-पीना चाहते ही नहीं हैं । बड़े धर्म-संकटमें पड़ गया हूँ । अच्छा, कमसे-कम इलायची तो हमारी खा लीजिए ।....अथवा आज हमारे ही गरीबखानेमें

जूठन गिरे तो क्या हर्ज ? 'हम सेबक परिवार समेता, नाथ न सकुचब आयसु देता।' ”

“नहीं नहीं, अभी वक़्त नहीं हुआ है” मोहन बाबूने कहा ।

“वाह वाह ! वक़्त कैसे नहीं हुआ है । ९ बजेवाली ट्रेन चली गयी । स्कूलमे पढ़ानेवाले मास्टर लोगोंके भोजनका वक़्त तो यही है ही । बस चटसे तैयार समझिए ।”

“वास्तवमें ठाकुर साहब, कामके आगे इस समय भोजन आदिकी फ़िक्र तनिक भी नहीं है ।”

“लीजिए, आप भी क्या कहते हैं मोहन बाबू ! भोजन ही तो दुनियामें प्रधान है । भोजनके ही लिए तो सारी दौड़-धूप है । भला यह भी बन्द होनेवाला है ?” ठाकुर साहबने कहा ।

“अच्छा”, पण्डितजीने कहा, “आपका ऐसा ही आग्रह होगा तो जैसे दो घण्टा रुके वैसे एक घण्टा और विलम्ब करना कोई कठिन नहीं है, पर इतना ज़रूर है कि काम बहुत है और जानते ही हैं कि कामकी धुनमें सब भूल जाता है । इस समय भोजनसे बढ़कर वही....”

“समझ रहे हैं पण्डितजी, समझ रहे हैं ।” ठाकुर साहब एकदम नरम होकर बोले, “कामके आगे खाना-पीना बिसर ही जाता है । अच्छा तो इलायची लाऊँ ?”

“अच्छा लाइए भी ।” पण्डितजी बोले ।

“.....और हम लोगोंकी दक्षिणा भी ।” रसीद-बही चारपाईसे उठाते हुए देवीदयालने कहा ।

“.....और ज़रा दिल खोलकर ।” मोहन बाबूने कहा ।

“अरे....रे....रे....आप क्या कह रहे हैं ? धन्यप्रसादका हृदय कभी बन्द नहीं रहता । धर्म और परमार्थके लिए तो सदा खुला ही रहता है । किस दिन नहीं जली-खली आकर माँग ले जाते हैं । मैं भी सोचता हूँ—‘रामजीकी चिरई, रामजीका खेत, खा लो चिरई भर-भर पेट ।’ और

एक बात और आपसे बताऊँ । मेरा पक्का विश्वास है कि धनकी कमी मूर्खताके कारण होती है दान देनेके कारण नहीं—

‘तुलसी पंछीके पिये, घटे न सरिता नीर,
दान दिये धन ना घटे, जो सहाय रघुबीर ।’

ठाकुर साहब चले गये । खड़ाऊँका खट-खट शब्द जब मन्द हुआ तो किशोरने झल्लाकर कहा,

“क्या वाहियातमें फँसकर समय बरबाद कर रहे हैं आप लोग ?”

“वाह, वाहियात कैसे ? चन्दा तो माँगा जा रहा है । कैसे जबरदस्ती छीन लिया जाये ।” मोहन बाबूने कहा ।

“अरे, बड़ा आदमी है । सोनारोंकी ठुकुर-ठुकुर न लोहारोंकी धमाक । हजार-दो-हजार इसके लिए कुछ नहीं । इधर-उधर सौ-सौ, दो-दो सौ माँगनेसे अच्छा है गहरी रकम एक ही जगह मिल जाये ।”

“पाँच-सौसे कम क्या देगा ? अधिक जो दे दे । सुना है कलकत्तेमें एक धर्मशाला बनवा रहा है ।” देवीदयालने कहा ।

“जान छोड़ दे शामतक इसीको मैं गनीमत समझ रहा हूँ ।” किशोर-ने कहा ।

“तो इसमें घाटा क्या है ? दोपरहरमें तुलसी-दल तो कहीं-न-कहीं छोड़ना ही है । पड़ जाओ यहीं । आठ आदमी हो पन्द्रह-बीसकी खबर ले लोगे ।” मैंने कहा ।

“मनबोध भाईको बस भोजन-ही-भोजन लगा रहता है ।” पण्डितजीने टिप्पणी की ।

“अच्छा तो आप वसूल कीजिए चन्दा । काम पड़ गया है । बहुत दिनों तक याद रखेंगे ।” मैंने कहा ।

“आप तो हर जगह ऐसी ही निराशासे भरी बातें करते हैं और प्रत्येक जगह हम लोग सफल रहते हैं ।”

“और जगहकी बात छोड़िए । यहाँ खैरा पीपर मालूम पड़ता है ।

सुने हैं—

‘चाक डोले, चक बम्मक डोले,
खैरा पीपर कभी न डोले !’

“आप आदमी नहीं पहचानते हैं मनबोधजी ।” मोहन बाबूने कहा,
“वास्तवमें हम लोग अच्छी जगह डटे हैं । देरकी कोई बात नहीं । क्या
ख्याल है आपका महेन्द्रजी ?”

“एक हजार तो मिल हो जाना चाहिए ।” महेन्द्रने कहा ।

“बेशक !” बिहारीलालने समर्थन किया ।

“मेरा ख्याल है कि इतनी बड़ी रकम यह शख्स नहीं निकाल सकेगा ।
अधिकसे-अधिक पाँच-सौ ।” गौरीशंकरने कहा ।

“यही तो मेरा भी ख्याल है ।” देवीदयालने कहा ।

“जो हो, देखिए अब तो नाईके कमाये वाल सामने ही गिरनेवाले
हैं ।” मोहनबाबूने कहा ।

खड़ाऊँकी खट-खट आवाज़ सुनायी पड़ने लगी । ठाकुर साहब आ
गये । हाथमें दो-तीन इलायची थीं जिन्हें वे स्वयं छील रहे थे । चारपाई-
पर बैठ गये । एक क्षण-भरतक विचित्र सन्नाटा । उन्होंने आँख ऊपर
उठायी । इलायची छीलते हुए बोले, “परिवारमें एक-एक बातें हैं । हमारी
एक भौजाई हैं । बड़ा रोब है घरमें । अड़ गयी हैं कि सोनेकी चूड़ियाँ
बनवाऊँगी । मैं कहता हूँ, क्या है इसमें ? बनवा लो । हजार-दो हजारकी
तो मैं कोई गिनती ही नहीं करता मगर.....एक गलत नजीर हो जायेगी ।
आज तुम ! कल वह ! परसों वह ! परिवार न है ? क्या गलत कहा
मोहन बाबू ?”

“बिल्कुल सही ।”

“फिर, रुपयेका यह कितना गलत खर्च है ? आप लोग हैं । स्कूल
चलेगा । लड़के पढ़ेंगे । देशकी भलाई होगी । दुनियामें ज्ञान और विद्याकी
बढ़ती होगी । यहाँ घरमें.....चूड़ियाँ.....गहने.....मेला.....टीमटाम.....धत्तरे

की ।.....हाँ, लीजिए आप लोग यह इलायची ।”

ठाकुर साहबने इलायचीके चार-चार दाने बाँट दिये और पुनः अपनी जगह बैठ गये । पुनः सन्नाटा । वास्तवमें सभी दिल थामकर उनको थैली निहार रहे थे ।

“तो ?” थोड़ी अधीरताके साथ मोहन बाबूने कहा ।

“आज्ञा ?” ठाकुर साहबने कहा ।

“अब आपको आज्ञा क्या देना है ?”

“फिर भी ?”

“कुछ नहीं, आप अपनी खुशीसे दीजिए ।”

“आप कुछ खोलते तो हमें सुविधा होती !”

“सब खुला ही हुआ है ठाकुर साहब । बड़े भाग्यसे आप जैसे उदार सज्जनका अनुग्रह मिला ।”

“अच्छा, जैसी मरज़ी आप लोगोंकी । खुशीका दान महाकल्याण ! लीजिए, इसे आप एक हज़ारकी थैली समझिएगा !”

.....और ठाकुर साहबने दो रुपयेका एक नोट आगे बढ़ा दिया ।



सभापति, मास्टर और नेता

आजका दिन इस गाँवके इतिहासमें एक विशेष महत्त्वका माना जायेगा । आज जैसा उल्लास वर्षोंके बाद यहाँ देखनेमें आया है । तीन वर्ष पहले जब पयाहारी बाबा मय जमातके यहाँ आये थे तब गाँवने मानो स्वागतमें अपना हृदय बिछा दिया । हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल, गाय और सैकड़ों साधुओंसे सुशोभित यह सन्तकी बरात गाँवके उत्तर ओर बगीचेमें टिकी थी । आजका आकर्षण भी उसी बगीचेमें था । जिस दिन बाबाका जुलूस ग्राम-भ्रमण करनेवाला था उस दिन गाँवकी भारी सफ़ाई की गयी थी । गली, ख़ोर, चौराहा, अगवार, पिछवार और घूर-कतवार सब साफ़ कर दिये गये । गाँवको गाँववालोंने स्वर्ग बना दिया । द्वार-द्वारके आगे लीप-पोतकर पवित्र कर दिया । इसी धुनमें घरोंके भीतर भी काफ़ी सफ़ाई हो गयी । ठीक वैसे ही आज भी हुआ । यद्यपि आज आगत अतिथिके द्वारा ग्राम-भ्रमणकी कोई योजना नहीं थी, तथापि गाँववालोंने गाँवको झार-बहारकर एकदम सुशोभित कर दिया । दस गाँवके दस भले आदमी जिस गाँवमें आ रहे हैं, वह क्यों न इतना उल्लसित हो । मुख्य रास्तेपर पानी छिड़क दिया गया । चौघरीने अपनी गली गोबरसे पुतवा दी । मुंशीजीके दरवाज़ेके सामने विशाल घूर था । उन्होंने देखा कि इसे जल्दी में हटवाया नहीं जा सकता तो काफ़ी पानी छिड़कवाकर, पीट-पाटकर बराबर करवा दिया । यह भी तो कल्पना थी कि दरस-परसके लोभसे किस व्यक्तिका किस गाँवका रिश्तेदार आ जाये इसका क्या ठिकाना ! अनेक लोगोंके घर बढ़िया और कुछ अधिक भोजन बना । बनियेके घरका सारा साबुन बिक गया । कुएँके चारों ओर साबुनका गाज भर गया । बालक झुण्डके-झुण्ड, बहकी-बहकी बातें करते उधर जाते दिखायी पड़ते जिधर स्वागत

में आम्र-पल्लवोंसे एक फाटक बनाया गया था। लाल रंगके डेढ़ गज लम्बे कपड़ेपर 'स्वागतम्' लिखकर टाँग दिया गया। दोनों किनारोंपर तिरंगे झण्डे सजा दिये गये और पण्डालके पास तक दो क्रतारमें झंडियाँ लगा दी गयीं।

ग्राम-सभापतिजीका पैर आज ज़मीनपर नहीं पड़ रहा है। जो मिलता है उसीसे कहते हैं, "गाँवकी इज़्जत है। कोई शिकायत न होने पाये। कोई भी आदमी बेखातिर न हो। जितने लोग आयें सबको सिरपर उठा लो। दुनियामें इज़्जत ही प्रधान है।".....और फिर प्रबन्ध समझाते, "यहाँ इस प्रकार पानी पिलाया जायेगा। यहाँ इस प्रकार भोजन कराया जायेगा। अमुक-अमुक वस्तुएँ बाज़ारसे मंगा ली हैं। अमुक-अमुक वस्तुएँ गाँवमें प्राप्त हो गयी हैं, आदि आदि।" और अन्तमें कहते, "कोई त्रुटि हो तो बताइएगा।"

किसीने पूछा, "सभापतिजी, ये जो आ रहे हैं, कौन हैं?"

"लो, सारी रामायन हो गयी," सभापतिजीने आश्चर्यके साथ कहा, "और ये पूछते हैं कि सीता किसका बाप था? चार दिनसे हम लोग आकाश माड़ो पाताल खम्भा गाड़ रहे हैं; रात-दिन गली-गली खाक छानकर पैसा बटोर रहे हैं; दूध, दही, मिठाई, पान, इत्र, सिगरेट, चाय, बिस्कुट, पुरवा-पत्तल, कागज़-माला, फूल, पत्तो, दरी-बिछोना, बाजा और प्याला-प्याली बटोर रहे हैं—और. आपको पता ही नहीं है? अरे भले मानुस! एक-एक बित्तोके लाल-पीले और हरे-हरे कागज़पर लिख-लिखकर चारों दिशामें बँटवा दिया गया है कि कई ज़िलोंके नेता, पण्डित जवाहर-लाल नेहरूकी बगलमें कुरसीपर बैठनेवाले, जनताकी नींदके साथ सोने-जागनेवाले और विद्या-बुद्धिसे भरपूर आर० सी० पण्डित पधार रहे हैं! साथमें ज़िलेभरके बड़े-बड़े आदमी। क्या कहा जाये, यही तो हाल है!"

"हम लोग गाँव-गँवारके अपढ़ मनई क्या जानते हैं? धन्य भाग्य कि आज दर्शन होंगे।" उस व्यक्तिने कहा।

तीन बजेसे सभा शुरू होनेवाली थी। लाउड-स्पीकर एक बजेसे ही गाने लगा। “नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे” और गाँवनिवासी उधर उमड़ पड़े।

सभापतिजी मिले। बोले, “मास्टर, तुम्हीं तो गाँवमें एक पढ़े-लिखे आदमी हो, सो भागे-भागे फिरते हो !”

“बताइए मैं क्या करूँ ? मैं तो हर कामके लिए तैयार हूँ।”

“पहले आओ इन्तजाम देख लो।”

सभापतिजीके दरवाजेपर पहुँचे। लम्बा-चौड़ा बरामदा कालीन और गलीचोंसे सजी चारपाइयोंसे भर गया है। बाहर टबमें पानी और सजायी गयी चौकियाँ। भीतर घरमें दहीसे भरे बर्तन और खाने-पीनेका पूरा आयोजन।

“अरे, इतनी तैयारी तो अपने लड़केके तिलकोत्सवके दिन भी आपने नहीं की थी !” मैंने कहा।

“देखो, जिससे काम लेना होता है उसे पहले खूब खिलाना-पिलाना चाहिए।”

“अच्छा सभापतिजी, अभी तय नहीं हुआ कि क्या-क्या बातें उनके सामने रखी जायेंगी ?”

“हो गया सबसे पहले और सबसे जोरदार रूपमें यह प्रस्ताव रखा जायेगा कि हमारे गाँवमें पाँच हाई-स्कूल पास लड़के तीन-चार वर्षसे बेकार बैठे हैं। इनको कोई-न-कोई काम मिलना चाहिए। दूसरे गाँवोंमें चलते-पुरजे लोग हैं। आफ्रिसोंमें घुस-घासकर काम निकाल लेते हैं। यहाँ ऐसा कोई नहीं है। अब सरकारकी मर्जी हो जाये कि ये बेकार लड़के कुछ लायक हो जायें। इसके बाद कुआँ, गाँव ऊँचा करना, स्कूल, बाँध और ट्यूब-वेलकी माँग की जायेगी।”

“ठीक है,” मैंने कहा, “ये सब बातें तो गाँवकी भलाईवाली ही हैं। बिना आपके यह सब कौन सोचे।”

“क्या करूँ मास्टर ! अकेले पड़ जाता हूँ। कोई साथ नहीं देता।

लोगोंको लानेके लिए एड़ीका पसीना चोटी कर देना पड़ा है । खिलवाड़ नहीं है । देख ही रहे हो ।”

दो बजते-बजते बगीचेमे मेला लग गया । जब रेकार्डके सब गीत खत्म हो गये और केवल गीतसे नियन्त्रण कठिन हो गया तो बिरहा शुरू हुआ ‘केतना आराम बा, जवाहर तोरे रजवामे !’ लोग शान्त हो गये । कुछ लोगोंने कहा कि केवल ‘काँग्रेसी’ बिरहा मत गाओ । गायकने उठाय़ा ‘गडँआँ सगरे सोन्हवलू, ऊखि माहारानी !’

तीन बज गया । कोई बात नहीं । “भारतीय टाइम है !” किसीने कहा । बिरहा रंग पकड़ने लगा । सभापतिजी कभी मंचपर आते, कभी बाहर जाते । कभी दरवाज़ेपर, कभी गाँवके बाहर । कभी वहाँ जाते जहाँ चायका पानी आगपर रखा गया था और कहते, “ठीक है बराबर गरम रखो । पानी जितना ही औँटायेगा चाय गाढ़ी होगी ।”

चार बज गया । भीड़मेंसे किसीने कहा, “बुझारथ भी मंचपर आ गये ।” अब तो दो दलोंमे रस्साकशी शुरू हो गयी । श्रोताओंकी दिलचस्पी बढ़ने लगी ।

इधर गाँवके सभापति, उपसभापति, नये नेता, चौधरी, सरदार और अगुआ लोग कुछ सुन नहीं रहे हैं । उनके कान मोटरकी भरभराहट और हॉर्न सुननेको व्याकुल हैं । ये लोग बाहर खड़े होकर उतरे हुए चेहरेसे इधर-उधर ताक रहे हैं ।

सूर्यास्तमें थोड़ी देर रह गयी । अब श्रोताओंमेंसे भी कुछ लोग निकल-निकल बाहर आने लगे । जवाब देते-देते अगुआ लोग परेशान होने लगे । सभापतिजी तो ऐसे चिन्तित दिखायी पड़ रहे हैं जैसे मुँहमे धान डाल दो तो लावा फूट जायेगा ।

×

×

×

आज सभापतिजी सवेरे-ही-सवेरे आये । बोले,

“धोवल-धावल भँइसि पाँकमे अँटक गयी मास्टर ! तमाम गाँव गाली

दे रहा है। मुँह दिखाना कठिन हो गया है। अब क्या किया जाये ?”

“क्या बताऊँ ?” मैंने कहा, “यही तो नेताओंका हाल है। आयेंगे.... आयेंगे.... हल्ला-गुल्ला हुआ.... मर-मरकर तैयारी हुई.... आँख लगाये लोग देखते रहे.... कहलवा दिया कि ज़रूरी कामसे लखनऊ चले गये। वस यहाँ लोग मल्लूके समान मुँह बाये रह गये !”

“कोई पूछनेवाला उनसे नहीं है कि बोटके समय तो माई-बाप बनकर लास-फूस लगाते हो और बादमे यह क्या कर रहे हो ?”

“कौन पूछेगा ?”

“मैं पूछूँगा। कोका नहीं है कि घोट डालेंगे। बड़े-बड़ेसे मैं नहीं डरता हूँ। चलो मेरे साथ शहर मास्टर, आग लगी है ! भला इस मोट-मरदीकी सीमा है ?”

“हमे मत घसीटिए।”

“क्यों डरते हो ?”

“कुछ.... कुछ नौकरीका मामला है। आप जानते नहीं है, ये सब मास्टरोंको अपने चपरासियोंसे भी गया-गुजरा समझते है। काम निकालने के लिए भले ही वशिष्ठ-विश्वामित्र बना दें।”

“यह बात है ? तब तो ज़रूर चलो। वहीं सब बातें उधियाकर रख दूँगा। नेता बने हैं ! किसके पढ़ाये-लिखाये हैं ? किसने बैलसे आदमी बनाया ?”

“आप समझे नहीं। मुँहपर थोड़े ही कुछ कहेंगे ? और यह भी है कि मैं जाऊँगा तो आपकी बातें भी हलकी पड़ जायेंगी। कई बारका अनुभव है। यों ये सब बहुत प्रेमसे मिलते है। साफ़-सुथरी पोशाक और चश्मा-टोपी देखकर समझते हैं कि कहींका भला आदमी है। जब यह ज्ञात हो जाता है कि मास्टर हैं तो मुँह फेर लेते हैं। समाजमें आजकल मास्टरका दर्जा कुछ नहीं, सबसे नीचे आ गया है सभापतिजी !”

“तो आप नहीं चलेंगे तो कौन चलेगा ?”

“क्या ज़रूरी है जाना ?”

“क्यों नहीं जरूरी है ? इतना पैसा खर्च हुआ, इतना श्रम किया है, इतनी हैरानी-परेयानी हुई—सब किसलिए ? आखिर वे बातें तो उनके सामने रखी जायें । आये नहीं तो कमसे-कम यह समझें भी तो कि किसीने हमारे लिए इतनी तैयारी की थी और उसकी तकलीफें ये हैं ?”

“यह तो आपका अच्छा सुझाव है ।”

“हम कहते हैं कि किसीको क्या पता कि आप क्या चाहते हैं, आप को किन-किन बातोंकी जरूरत है । जायेंगे, कहेंगे तभी तो उसके बारेमें कुछ हो सकता है ?”

“और क्या ।”

“तब आप भी चलिए । मैं अकेले जाना ठीक नहीं समझ रहा हूँ । गाँवमें दूसरा कोई नजर नहीं आ रहा है । आप पढ़े-लिखे आदमी है । दुनिया देखी है । आप रहेंगे तो हमारा बल बढ़ा रहेगा ।”

मैं आपकी बात टाल तो नहीं सकता पर कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं कि भारी हिचक होती है ।”

“कुछको बताइएगा भी ?”

“अच्छा, देखिए पहली शर्त तो यह रहेगी कि बातचीतके दौरानमें आप हमें मास्टर मत कहिएगा । मदा नाम लेकर पुकारिएगा ।”

“मंजूर है । और कुछ ?”

“और कुछ तो आप जानते ही हैं महीनेका अन्त चल रहा है और वैसे तो तीन-चार महीनेका यह एक महीना हो गया है ।”

“बम-बस, रुपये-पैसेकी चिन्ता न करें, बम आप चले । और कोई बात ?”

“एक भले आदमीके यहाँ ज़रा ठीक ढंगसे जाना चाहिए । यह भी तो एक बात है । ज़रा पोशाक वगैरह.....”

“अरे भाई, एक दिनके लिए क्या चिन्ता है ? मुलेमान नया चप्पल खरीदकर लाया है, ले लो । विश्राम बाबूसे खद्दरकी धुली धोती माँग लो ।

सुखदेवका ऊनी कुरता तुम्हारे शरीरपर एकदम ठीक होगा । मैं एक साल दे दूँगा । विद्याधरकी घड़ी ले लो । मेरे लड़केसे फ़ाउण्टेनपेन ले लेना । गत साल उसीसे परचा लिखकर हाई स्कूल पास किया है । महेन्द्रलालसे छड़ी माँग लो । चश्मा-टोपी तुम्हारे पास है ही । रहा जाकिट, तो उसकी भी तजवीज़ कर रहा हूँ ।”

×

×

×

संयोगसे स्टेशनपर ही नेताजी मिले । सभापतिजी बहुत प्रसन्न हुए । अच्छे आदमीका मुँह देखकर प्रस्थान किया गया है ! अब कठिनाई यह थी कि इतने आदमी घेरे हैं, कैसे बातचीत हो ।

प्लैटफ़ॉर्मपर जहाँ अनेक लोग, टोपी-टाईवाले, खद्दर-अब्दीवाले और चेहरे-मोहरेवाले उनसे हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं, हम लोग भी एक ओर घँस गये ।

“नमस्ते !” मैं सामनेसे आगे बढ़ गया ।

“नमस्ते ! कहिए क्या हाल-चाल है ?” नेताजीने कहा ।

“यही, सभापतिजी आपसे मिलना चाहते हैं ।” मैंने सभापतिजीको आगे कर दिया ।

“नमस्कार !” नेताने हाथ जोड़ दिये ।

“चिरंजीव ! आपका तो दर्शन दुर्लभ हो गया ।” सभापतिजी बोले ।

“क्या करूँ ? काम इतना है कि दम मारनेकी फ़ुरसत नहीं मिलती । यही देखिए न, आधी रातकी गाड़ीसे आया हूँ और फिर तुरन्त लौट रहा हूँ ।”

“क्या हुआ ?” एक आदमीने पूछा ।

“काम हो गया”, उसकी ओर देखकर पहचानते हुए नेताने कहा, “आप लोग भाई साहब सामर्थ्यवाले जीव हैं । दिनको रात बना दें, रातको दिन बना दें । मुझे भी जाड़े-पालमें घसीट लाये ।”

“क्या कुछ....” उस व्यक्तिने कहा और रुक गया कि नेता उसकी

और लपके और एक ओर लेकर बढे । खादीकी बकुलापंखी धोती प्लैट-फॉर्म ब्रुह्मर रही है । क्रोमती ऊनी चादरमे लिपटे शरीरके ऊपर गाँधी टोपी का विशेष ढब आँखोंसे टक्कर लेना है । चप्पलको आवाज़ मन्द हुई और दोनों व्यक्ति खडे होकर बातें करने लगे ।

“यह तो पहचानता ही नहीं है अब ?” सभापतिने कहा ।

“पहचनवाना पड़ता है सभापतिजी ! जाइए पूछ आइए कि कहाँके और कितने टिकट कटा लाऊँ ? और फिर उमी डब्बेमे बैठकर हम लोग भी चले । रास्तेमें बातचीत होगी ।”

सेकण्ड क्लासके चार टिकट आये । एक और सज्जन नेताजीके साथ थे । गाड़ी चल पड़ी तो सभापतिजीने छोड़ा—

“उस दिन तो हम लोगोंको भारी निराशा हुई ।”

“किस दिन ?” नेताने पूछा ।

“वही जिस दिन हमारे गाँवपर आपका प्रोग्राम था ।”

“अच्छा ! तो आप जलालपुरके सभापति है ?”

“हाँ ।”

“क्या करूँ, बहुत बेवस हो गया सभापतिजी । बड़ा दुःख हुआ । आप लोगोंको बड़ा कष्ट हुआ होगा, धमा करेंगे । और हमसे जो सेवा हो कहिएगा ।”

“आपसे नहीं कहेंगे तो किससे कहेंगे । इसीलिए तो चले हैं । उस दिन आप आये होते तो देखते कि गाँवमें भी आदमी है जो आदमीकी कद्र करते हैं ।”

“हाँ.....आँ.....आँ..... । और क्या ?”

“बड़ी लालसा थी कि आपको अपना गाँव दिखाया जाये । गाँवकी दुःख-तकलीफ़ आपके सामने रखी जाये ।”

“हाँ.....आँ.....आँ..... ।”

“सबसे बड़ी बात यही है कि हमारे गाँवमें पढ़े-लिखे बेकार लड़के बैठे

है। कहीं काम-धाम नहीं है। कोई जरिया भी नहीं है। उनको कुछ काम मिल जाता तो गाँवकी तरक्की होती।”

“हां……आँ……।”

“सुनते हैं कि कुँआँकी मरम्मत आदिके लिए रुपया मिल रहा है। हमारे गाँवका स्कूल अबतक नहीं बन सका। गाँव ऊँचा करनेकी योजना थी उसका पता नहीं चलता।”

“…… .. .।”

“बाँध और ट्यूबवेलके बारेमे आपसे……।”

अब मैंने सभापतिजीको हाथसे इशारा करके रोक दिया। नेताजी बैठे-बैठे सो गये थे। थोड़ी ही देरमे वे बगलमे लेट रहे और जब सिटी स्टेशन आ गया तो उन्हें जगाया गया।

रिक्शेका भाड़ा चुकाकर सभापतिजीके साथ हम लोग जब उनके निवासस्थानके अहातेमें घुसे तो वे भीतर जा चुके थे। मेरी घड़ी इस समय ११ बजा रही थी।

थोड़ी देरमें एक नौकरने बताया कि पण्डितजी अब स्नानादिसे निवृत्त होकर आराम करेंगे। आप लोग दो बजे पुनः आनेका कष्ट करें।

हम लोग शहरमें आ गये।

×

×

×

आज मेरा मन घबराया हुआ है। मास्टरोँके लिए छुट्टियाँ कितनी अनमोल हैं। व्यर्थ ही कलका दिन गया, और आज भी क्या ठिकाना है! दो दिनकी छुट्टी लेनी पड़ेगी। आज भी नेताजीके दर्शन होंगे या नहीं, कौन जाने? दो बजे कल आये तो अभी सो रहे थे। नौकरने बताया कि चार बजे आइए। चार बजे गये तो कलेक्टर साहबके यहाँ चले गये थे। रातमें नौ बजे बुलाया। नौ बजे पहुँचे तो सिनेमा देखने जा चुके थे। सभापतिजी को देखता हूँ तो तरस आता है। बेचारे भोले-भाले ग्रामीण, अपने ही समान सबको समझते हैं। अच्छा लो, नेताजी आ गये।

“अभी आप लोग शहरमें ही हैं ? रात कहाँ रहे ? कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?” नेताजीने नमस्कारके उत्तरमें कहा और कुरसीपर बैठकर कागजों को इधर-उधर उलटना-पुलटना शुरू किया ।

“कोई बात नहीं, कोई बात नहीं ! हम लोग तो मिलने आये ही थे ।” मैंने कहा ।

“बड़ी खुशीकी बात है । कहिए क्या सेवा कर सकता हूँ ?”

“कहो मास्टर !” सभापतिजीने कहा और रुक गये जैसे अपनी गलती महसूस करने लगे । फिर बोले, “ट्रेनमें आपसे निवेदन किया था…… ।”

“ओ ! मैं समझ गया, आप उन लड़कोंसे दरखास्तें लिखवाकर भेजवा दें ।”

नेताजी अब कागजोंमें इस प्रकार डूब गये कि न मेरी और न सभापतिजीकी हिम्मत होती थी कि कुछ कहें ! और कहें भी क्या ? सुनता कौन था ।

नेताजीने सिर उठाया । बोले, “और कहिए मास्टर साहब, क्या हाल है ?” और बिना मेरा उत्तर सुने पुनः फ़ोन उठाकर एक व्यक्तिसे बात करने लगे । थोड़ी देरमें फ़ोन रख दिया और अलमारीसे एक फ़ाइल निकालकर कुछ खोजने लगे । एक कागज निकालकर मोड़ते हुए पुनः बोले, “और कहिए मास्टर साहब, क्या हाल है ?”

“बहुत अच्छा है ! अब आज्ञा दीजिए, चलेंगे ।”

“अच्छा ! हैं……हैं……हैं……नमस्ते । योग्य सेवाके लिए बराबर याद कीजिए और ऐसे ही कभी-कभी दर्शन देते रहनेकी कृपा करेंगे ।” नेताने कहा और फिर कागजोंमें डूब गये ।

बाहर आकर सभापतिजी बोले, “चलो मास्टर यहाँसे भागो । ये सब बनरबझउवा हैं । वही किस्सा है कि देहातका दाल-भात, शहरका सलाम ।”



चौबेजीका चमत्कार

गाँवमें घुमते ही “अरे सिलेमा आ गइल बा रे...ए...ए...ए...!” जोरसे चिल्लाते हुए दौड़ते आनेवाले लड़केसे मालूम हुआ कि टक्कर हो जायेगी। सूखे हुए उपले एकत्र करती हुई फेंकनीकी माईने टिप्पणी की “खायेके साग ना, दरी बिछौना !” बगलसे मनोहर तिवारी निकल आये। बोले,

“मास्टर ! सुना तुमने ? फेंकनीकी माई क्या कह रही है ?”

“क्या कह रही है ? मैंने ध्यान नहीं दिया।”

“कहती है कि खायेके साग ना, दरी बिछौना !”

“क्या अर्थ ?” मैंने आश्चर्यके साथ पूछा।

“यही तो मैं तुमसे पूछता हूँ।”

“मेरी समझमें तो कुछ नहीं आया।”

“कहती है कि सरकार गरीबोंको सेतमें सिनेमा दिखानेके लिए भेजती है, सो भूखे पेट अच्छा लगेगा ?”

“कैसा सिनेमा ?” मैंने पूछा।

“लो, सारे गाँवमें हल्ला हो गया। अफसरपर-अफसर उतर आये। एक मोटर सिनेमा आकर परतीमें खड़ा हो गया है और तुम्हें पता ही नहीं है ?”

“सचमुच तिवारीजी, हमें कुछ भी खबर नहीं। अभी बाहरसे आ रहा हूँ। क्या विकासवाले हैं ?”

“नहीं, योजनावाले हैं।”

“अच्छा, चलिए मैं भी आ रहा हूँ।”

देखा कि हीरा तमोली अपनी ऊँची चौकी और पानकी पूरी दूकान

समेटे बड़ा जा रहा है। मेला-बाज़ार और तमाशा आया नहीं कि इसकी दुकान खड़ी हो गयी। भीड़-भाड़में पानकी दुकान लग गयी यानी गाँवके लिए मेला लग गया।

सभापतिजी कुल्हाड़ी लिये बाँस काट रहे हैं। एक लड़केको समझा रहे हैं, चादर एकदम साफ़ होनी चाहिए। फटी हुई न हो। काफ़ी चौड़ी हो। उसीपर सिनेमा होगा।

“क्या एकदम शहरके माफ़िक सिनेमा होगा सभापतिजी?” एक व्यक्तिये प्रश्न किया।

“तुम सब लोग एकदम गँवार हो! अब क्या घबराये हो, नाईके बनाये बाल सामने ही आ रहे हैं! चलो देखो: आदमी गा रहा है, रेलगाड़ी चल रही है, बाघ-सिंह गरज रहे हैं, पानी बरस रहा है……।” सभापतिजीने कहा।

“हम लोग छाता लेकर तो आये नहीं।” एकने कहा।

“पानीको रोकिएगा सभापतिजी, नहीं तो फ़सल चौपट हो जायेगी और जाड़े-पालेमें हम लोगोंकी भी दुर्गति हो जायेगी। मज़ा भी किरकिरा हो जायेगा।” दूसरेने कहा।

“अरे मूर्खों! सचमुच पानी नहीं बरसेगा, परदेपर ऐसा दिखायी पड़ेगा। आज तुम लोगोंका चीलका जन्म छूट जायेगा। क्या जाने कभी जीवनमें सिनेमा देखनेका सौभाग्य होता या नहीं!”

उत्तर ओरकी खलिहानवाली परतीमें लाउड-स्पीकर गा उठा। गाँव गूँजने लगा। धीरे-धीरे जाते हुए लोग तेज़ीसे जाने लगे, बालक तो दौड़ ही पड़े।

जाड़ेकी साँझ, हलकी पछिवाँही हवा, आसमानमें अस्त-व्यस्त मेघ-खण्ड, पश्चिममें डूबती लालीपर छाती आती-सी कालिमा, शीतके अलख तीर हवापर शान घराये-से, और इन सबके बीच परतीमें उमड़-सा पड़ा गाँवका सजग-सजीव उल्लास।

तरह-तरहकी टीकाएँ । तरह-तरहकी बातें । कोई कहता है, “आज तो गाँव कलकत्ता-बम्बई हो गया ।” कोई कहता है, “सब काँग्रेसी मायाजाल है !” कोई कहता है, “तमाम गाँवको सिनेमा दिखानेके लिए बाहर निकाल-कर गाँवमें डाका डालेंगे !” दूसरा अपनी जानकारी प्रकट करता है, “धत्” उल्लू कहींका ! नहीं देखता है पंचायत इन्स्पेक्टर साहब भी हैं । सूचना अफसर हैं । सिक्रेटरी हैं । अरे, यह सब राजकी ओरसे प्रजाको दिखाया जाता है । स्कूलवाले डिप्टी साहब भी हैं ।”

तीसरेने अपनी वास्तविक जानकारी प्रकट करनेका प्रयत्न किया । बोला, “सब गवर्नमेण्टका प्रचार है.....यही सब तो दिखाया जायेगा कि किस प्रकार सिचाई होती है.....असली फ़िल्म कहां दिखायी जाती है !”

“असली दिखायें, चाहे नकली । गेहूँ नहीं तौला गया है । मँगनीके बैलका दाँत देखा जाता है ?” मुखिया साहब सुरती ठोकते आ निकले ।

“हाँ, मुखिया साहब ! कुछ ज्ञान मिलेगा ही न ?” मंगर साहु दोहरमे शरीरको लपेटे आ गये ।

कुछ-कुछ अँधेरा हो चला । परतीमें लोग-ही-लोग हो गये । आज मर्दीको हार मान जाना पड़ा । जहाँ इस समय तक कउड़पर, पुआलपर, घरमें, रजाईमें लोग पड रहते थे, वहाँ आज मैदानमें सनसनाती हवाको कुछ नही समझ रहे हैं । लड़के तो और ग़ज़ब कर रहे हैं । नंगे बदन, एक कुरता और नेकर पहने कूद-फ़ाँद रहे हैं । ग़ोलके-ग़ोल शोर मचा रहे हैं । अधिकसे-अधिक हलकी सूती चादर शरीरपर है । किसानके लड़के हैं । यही बहुत है । गाँवोंकी गोदमें जाड़ा कहां ?

बहोरन एक फटा गमछा ओढ़े बढ़ा आ रहा है । साथमें विविध ऊँचाई के छोटे-बड़े लड़के-लड़कियाँ हैं । इधर आकर दो लड़कियोंको उत्तर ओर वहाँ भेज दिया जहाँ स्त्रियाँ बैठी हैं । सम्भवतः उनकी माँ उधर ही है । शेष लड़के एक पुरानी साड़ीका टुकड़ा ओढ़े एकमें-एक सटकर एक जगह बैठ गये । बहोरन बार-बार कह रहा है, “कोई सोना मत । देखते रहना ।

सब ओढ़े रहना । कोई इधर-उधर मत जाना ।”

उत्तर अँधेरेमें लगता है जैसे सफ़ेद गठरियाँ जगह-जगह रखी गयी हैं । कहीं एकमें एक, कहीं विरल । छोटे-छोटे बच्चोंके रोने और काँव-किचके विशेष तर्जके कारण जाना जा रहा है कि उधर स्त्रियाँ बैठी हैं ।

अभी लोग गाँवकी ओरसे चले ही आ रहे हैं । चौधरी-सरदार नाच देखने नहीं जाते, परन्तु आज आये हैं । इधर-उधर अँधेरेमें बैठ रहे हैं । करन चौधरी भरोसेको चिढ़ा रहे हैं, “अरे भाई, इतना तेज़ दौड़नेकी क्या जरूरत थी ? सिनेमापर लूट तो मची नहीं थी । यह तो कहो कि ठोकर लगकर अँगूठा ही फटा, ऐसेमें तो नाक धूर हो जाती है ।”

मोमारू कहता है, “आज तो हमारे घर चूल्हा नहीं जलेगा । काकी कहती हैं कि खाना तो रोज़-रोज़ है । यह जलसा फिर कहाँ मिलेगा । घर मे ताला लगाकर पूरा परिवार आ डटा है ।”

इसी समय दो घटनाएँ हुईं । सूचनाधिकारीने ध्वनि-विस्तारक यन्त्रमें कहा कि अब फ़िल्म दिखायी जा रही है । जो जहाँ हैं, वहाँ बैठ जाये । परदेके दोनों ओर दिखायी पड़ेगा । उधर आसमानसे एक बड़ी-सी बूँद आकर मुखिया साहबकी ठीक नाकपर गिरी ।

अचकचाकर मुखिया साहबने जो सिर ऊपर उठाया तो एकदम चौंक पड़े ।

“अरे ये तो घनघोर घटाएँ छा गयी है ! मास्टर, गड़बड़ होना चाहता है । दिन कुदिन है । हवा बन्द हो गयी है । इधर तो ध्यान ही नहीं था ।”

“राम-राम कीजिए । क्या हमीं लोग अभागे हैं ?” मैंने कहा । बहोरन के घरके लड़के शंकर भगवान्की पिण्डीके समान एकमें सटकर और भी गुमट गये । ऊपरके एक ओढ़नेको सबने पूरा खींचकर अपनेको ढँक लिया ।

जब बूँदें आसमानसे छूट गयीं तो क्या मुखियाकी नाक और क्या शेष लोगोंका शरीर, सबपर उनकी सूचना अंकित हो गयी और एक अव्यक्त

आशंकाकी सिहरन एक छोरसे दूसरे छोर तक जन-समाजको आलोड़ित कर गयी ।

सोमारुकी काकीने कालीमाईको 'परसाद' चढ़ानेकी मनौती की । भरोसेने अपनी देवीको गुहराया । सभापतिजीने हनुमानचालीसा 'श्री गुरु चरन सरोजरज' से शुरु किया । फेंकनीकी माईने हाथ चमकाकर कहा, "अव लऽ...दइबोका ना देखि गइल !"

बूंदें घनी होने लगीं । कपड़े ठण्डे होने लगे । उधर परदेपर बड़ा मनोहर सीन चल रहा है । विशाल जलका भण्डार अथक श्रमसे निर्मित हो रहा है । "जहाँ ऊसर था वहाँ दर्शनीय हरियाली लहराने लगी" वह किसान है, उसके खुश-बुश बच्चे हैं ! उसका वह परिवार है । "यह गाँव कि स्वर्ग !" सिनेमामें विकास चल रहा है ।

इधर जनताके धैर्यकी परीक्षाका जैसे अब आखिरी सवाल सामने आ गया है । कुछ लोग खड़े होने लगे । कुछ लोग बैठे-बैठे और सिकुड़ने लगे । खामोशीके बीच कुछ धीमी हड़बड़ी होने लगी । खुले आसमानके नीचे विकासके स्वप्न-संसारको साकार देखनेमें भूले लोगोंको वास्तविकता सुईसे काँच रही है, परन्तु वाह रे वह सपना ! लोग हिलना भी नहीं चाहते हैं ।

तिवारीजीने सलाह दी, "गदहेके कानमें तेल डाल दो, पानी बन्द हो जायेगा ।" हीरा तमोलीने समर्थन किया । उसकी बिक्री अब एकदम खत्म हो चुकी थी । अब गदहा कौन पकड़ लाये ? परोपकार कौन करे ?

भुइलाके लिए इस निर्जीव सिनेमासे अधिक वह सजीव सिनेमा आकर्षक था । बोला, "चल रे बहुआ चल । उस खूँटीमें दो जने खड़े हैं । पकड़कर तेल डाल दें । चल उठ ।"

"देखो...देखो...वह मेला...चर्खी...मदारी...बाजा बज रहा है..." बहुआने कहा ।

"अरे बाजाके नाती, दहककर पानी बरस देगा, बस खूब मेला देखोगे... चलो । जा रे फेंकना, तेलियाके यहाँसे एक छटाँक तेल लेता आ ।"

बातकी-बातमें जवानोंने तीन-चार गदहोंको घेर-घारकर जन-समूहको ओर कर दिया । अब एक नया सिनेमा शुरू हो गया । गदहे इधर-उधर भागने लगे । पश्चिम ओर लोग खड़बड़ हो गये । शोरगुल होने लगा । किसीको पता नहीं क्या हो रहा है । भुइला और बहुआ परेशान हैं । किसी प्रकार एक गदहा कब्जेमें आया । उसके गलेमें गमछा डाल दिया गया । तबतक फेंकना तेल लेकर आ गया । अब क्या था ? बातकी-बातमें गदहेके कानमें तेल पड़ गया । भुइलाने जोरसे कहा—

“अब देखिए सिनेमा, वर्षा बन्द हो गयी ।”

गदहे भाग गये, लेकिन लोग अस्त-व्यस्त-से हो गये । लाख समझनेकी कोशिश कर रहे हैं कि पानी बन्द हो गया मगर बूँदे पड़-पड़कर ध्यान भङ्ग कर देती हैं । न घर जाते बनता है, न बैठते बनता है । साँप-छछूँ-दरकी दशा हो गयी है ।

औरतोंमें काना-फूसी चल रही है । अब बूँदा-बाँदी रुक जायेगी । गदहेके कानमें तेल पड़ गया । फेंकनीकी माई कहती है, “कवनी साइति आइल कि दूलम हो गइल ।” सोमारोकी काकी टोंकती है, “तू तो कहती थी कि सब मुड़चिरा धनिकनका जोम है, अब सुहाने लगा ?” तब फेंकनीकी माई झेंपती हुई उत्तर देती है, “हम का जानी बहिनी कि एतना अच्छा लागी ?”

घड़-घड़...घड़-घुड़म...घुड़म...ठूँ...ऊँ...ऊँ...ऊँ...

बिजलीकी चमकसे सारी परती अंजोर हो गयी । थोकके-थोक बैठे लोग एक बार चिहूँक गये । आँखें परदेपर-से हट-हटकर आसमानमें जाने लगीं । उधर परदेपर एक सुसज्जित चिकित्सालयमें कुछ लोगोंको दवाई मिल रही है...एक गरीब है...फटे हाल है...डाक्टरके पास जाते सहम रहा है...उसे कोई रोग है...लगता है जैसे क्या डाक्टर दवासे इसका रोग दूर कर सकता है ? इसके असली रोग तो हैं दूसरे-दूसरे । भोजन, वस्त्र और आवासका रोगी...

तड़-तड़....तड़-तड़क....ठाँ....आँ....आँ....आँ....

एक बार फिर सारी परती अंजोर हो गयी। अब तिवारीजी उठे।
“चलो, मास्टर, उस नीमकी छायामें, नहीं तो बीमार पड़ जायेंगे। पानी बड़ा खराब है।”

वहाँ नीमके नीचे साहब लोग कुरसियोंपर विराजमान थे। पानीने सबको हैरान कर दिया था।

“ऐसे ही कुछ देर रहा तो मशीन ठण्डी हो जायेगी। कुछ करते नहीं बनता।” सूचनाधिकारीने बड़ी व्यग्रता दिखायी।

एक सज्जनने चिन्ता प्रकट की, “अब भारी चिन्ताकी बात तो यह कि आप लोग यहीं फँस जायेंगे। जीपका निकलना अमम्भव हो जायेगा।”

“क्यों ? जिस रास्ते आये वह क्या हो जायेगा ?”

“अरे साहब ! आपको मालूम होना चाहिए कि आप गांवमें हैं। यहाँ पानी बरसनेपर जीप तो क्या, पैदल रास्ता भी नहीं रह जाता।”

“यहाँके आदमी तब आते-जाते कैसे हैं ?”

“यहाँ आदमी हैं कहाँ ?”

तब क्या ये सारे आदमी जो इकट्ठा हैं आदमी नहीं हैं ?” सूचनाधिकारीने कहा।

“कमसे-कम सरकार तो यही समझती है।”

“कैसे ?”

“जहाँ आदमी हैं वहाँकी दस वर्षमें कच्ची सड़कें पक्की हो गयीं, पक्की सड़कें पिचकी हो गयीं, पिचकी सड़कें सीमेण्टकी हो गयीं और सीमेण्टकी सड़कोंके दोनों ओर खुशबूदार फूल लग गये। यहाँ एक युगमें जीपका निकास भी नहीं बना। अजी बारह वर्षमें घूरेके दिन भी फिरते हैं, परन्तु यहाँ गाँवाँकी दशा तो अंग्रेजी राज्यसे भी बदतर हो गयी।”

“गाँवाँको उठानेके लिए ही तो यह सब हो रहा है। तमाम देशमें योजनाएँ चल रही हैं। सात दिनोंसे हम लोग उनका प्रचार कर रहे हैं।

धीरे-धीरे उन्नति होगी न ?” पंचायत इन्स्पेक्टरने कहा ।

“अब यह पानी रुक जाये तब तो आपका विकास चल गया समझेंगे, नहीं तो देखिए सब बह जायेगा । लोग अब उठने लगे ।”

“अब तो भगवान्की जैसी मरजी होगी वैसा होगा,” सूचनाधिकारीने कहा, “आप लोग घबरायें नहीं ।”

“गदहेके कानमें तेल पड़ा तब भी कुछ नहीं हुआ ।” एक ग्रामीणने कहा, जैसे उसके विश्वासपर धक्का लगा हो ।

“गदहेके कानमें तेल ? क्या माने ?”

“माने क्या ? एक तड़क है । लग गया, लग गया !”

“अच्छा ! इससे तो अच्छा होता कि आप लोग हमारे चौबेजीको गरम दूध पिलाते । ब्राह्मणका मुख भगवान्का मुख है ।”

“बस.....बस.....ठण्डकमें गरम दूध पीकर भगवान् खुश हो जायेंगे और.....”

“.....और कहीं खुश होकर और पानी न ढाह दें ।”

“अरे नहीं ! वे क्या श्रद्धालु लोगोंकी इच्छा जानते नहीं हैं ?”

“यह कौन बड़ी बात है ।”

“.....और यह मनोगंजन आगे चलकर जबतक चिन्ता-चिन्तनके उप-संहारमें परिवर्तित होकर दुःखमय रोना बन गया तबतक मभापतिका नोकर पूरा एक बाल्टी गरम दूध लेकर हाज़िर हो गया ।

नाहीं-नाहीं करते-करते भी चौबेजीको ढेर-सा दूध पी लेना पड़ा । लोग फुसफुसाये, “हवा बदल गयी !” अनेक लोग देखने दौड़े । “कोई ओझा-सोखा है” एकने कहा । किसीने अपनी जानकारी प्रकट की, “नहीं जी, ये भी कोई अफसर हैं, देखते नहीं हो पोशाक !” थोड़ी देरमें एक ओर आसमानमें एक तरई चमकी और दूसरी ओर बूँदोंका गिरना घट गया । लोग जहाँ-तहाँ बैठ गये और न जाने कैसे यह बात चारों ओर फैल गयी कि सूचनाधिकारीके साथ एक साधु आये हैं, जो गरम दूध

पीकर पानी बरसना रोक देते हैं, घी खाकर ढेर-सा अन्न उगा देते हैं, दही खाकर गरीबको धनी कर देते हैं और रबड़ी खाकर''''।

सिनेमा खत्म होते-होते जीप घेरकर खड़े हजारों आदमियोंको सूचना-धिकारी महोदय-द्वारा यह बताते और विश्वास दिलाते फ़ज़ीहत हो गयी कि चौबेजी वास्तवमें अल्पवचन योजनाके ऑर्गनाइज़र हैं ।

परिभाषाका चक्कर

पण्डितजीको पूरे दलबलके साथ खड़ाऊँ खटकाते आते देखकर मेरे पाँव-तलेकी ज़मीन खिसकने लगी। सूझ-बूझ जवाब देने लगी। पहले तो लगा कि कहीं और तैयारी है, परन्तु गली पार कर जब इधर हमारे दरवाज़ेकी ओर मार्च की तो मैं हैरान होकर देखता रह गया। या भगवान्, पूरे परिवारकी फ़ौज रेलके डब्बोंकी भाँति सरकती चली आयी है। लोटे-लुटिया खड़खड़ा रहे हैं। कच्चे-वच्चे टुघुरते चले आ रहे हैं। आगे-आगे पण्डितजी इस फ़ौजके कमाण्डरकी तरह अकड़ते चले आ रहे हैं। चौड़े चमकते ललाटपर, मोटी भुजाओंपर और गज-भरकी छातीपर उभरी चन्दनकी लकीरें, बैजकी भाँति शोभा दे रही है। किन्तु भोजनका किला है कहाँ? ये तो ऐसे बेमौके चढ़ आये कि न स्वागत करते बनता है न वापस करते बनता है। न कुछ पूछते बनता है न कुछ कहते बनता है। 'भइ गति साँप छल्लूँदरि केरी!' कभी अपनेपर कभी पण्डितजीपर तबीयत रंज हो-होकर बैठ जाती।

बात यह थी कि शनिवारको मेरे घरके सामनेवाले बबूलपर सुबह-सुबह एक गिट्ट बैठा हुआ पाया गया। महल्ले-भरमे यह खबर फैल गयी। लाठी, डण्डा और ढेला लिये लड़कोंका गोल चढ़ आया। उसे उड़ानेके लिए ढेले फेंके जाने लगे। मगर वह बैठ गया था कि उड़नेका नाम ही नहीं लेता था। औरतें कहतीं कि यह तो भारी असगुन है। बूढ़ोंकी रायमें इसका बैठना महान् अनिष्टकर था। एक बड़ी-सी लाठीसे ठेलकर किसी प्रकार उसे उड़ाया गया। मेरा अनुमान था कि यह किसी प्रकार घायल था और उड़ता हुआ पासमें कोई बड़ा ताड़ आदिका पेड़ न होनेके कारण इसी बबूलपर उतर आया।

गिद्ध उड़ गया तो चल पड़ीं अजीब-अजीब बातें। भय और आशंकाकी एक हवा-सी चल गयी और घण्टोंकी कहनी-सुननीके बाद तय हुआ कि यद्यपि गिद्ध घरकी खपरैलपर नहीं बैठा था, तथापि जिस बबूलके पेड़पर बैठा था वह घरके घेरेमे ही है, अतः दोष लगता है। इस दोष या अस-गुनका मारक है दान-दक्षिणा एवं ब्रह्मभोज। इस वर्ष फसलको चूँकि ओलेकी जीभसे दुर्दैवने चाटकर साफ़ कर दिया है, अतः इस प्रायश्चित्तमे कुछ ढील की जा सकती है। कमसे-कम एक ब्राह्मणको भोजन कराना और सपादेक मुद्रा (बीस आना) दक्षिणाकी व्यवस्था तो करनी ही होगी। साथ ही हितैषी लोगोंकी राय रही कि शुभ कार्यमे विलम्ब नहीं होना चाहिए। मैंने सोचा कि जब एक ब्राह्मणको भोजन कराना है तो क्यों न पाँड़पुरके पण्डितजीको ही भोजन कराया जाये। घर पवित्र करनेके लिए ऐसा पवित्र और तेजस्वी दूसरा कोई नहीं। कल शामको पाँड़पुर पहुँचा। हमारे यहाँसे कुछ हटकर यह गाँव है। गया तो शाम हो रही थी। पण्डितजी जनेऊ बना रहे थे। जंघेपर रगड़कर तकली नचा देते और बाँहके सहारे सूत लपेट लेते। देखते ही दूने हो गये। अभिवादनके बाद कुशल-समाचार हुआ और मैंने गिद्धकाण्डको विस्तारपूर्वक बताते हुए निवेदन किया,

“.....सो पण्डितजी, बिना ब्राह्मणका चरण घरमें धुलाये वह पवित्र नहीं होगा। कल दोपहरमें आपको.....।”

“अरे जजमान !” पण्डितजी बीचमें ही बात काटकर बोल उठे, “मैं तो योग-क्षेमके लिए सदा ही तैयार हूँ। बहुत उत्तम कार्य है। कलियुगमे धर्म-कर्मका विलोप होता जा रहा है। इसीसे देश-जातिका सुख रसातलको चला जा रहा है। दान, सेवा और श्रद्धा उठती चली जा रही है। अब तो सरकारका वश चले तो ब्राह्मणोंको कालापानी भेजवा दे और शास्त्र-पुराणको महासागरमें बोरवा दे।”

“अभी इतना खराब जमाना नहीं आया है पण्डितजी,” मैंने कहा,

“ब्राह्मण सब दिन ब्राह्मण रहेगा। लोग यथा-शक्य उसकी पूजा करते रहेंगे। यही देखिए, कितना ज़माना खराब हो गया। ओलेसे फ़सलका सर्वनाश हो गया। खलिहान लगे नहीं। अन्नका एक दाना भी घरमें नहीं जायेगा। तो भी जैसे सब कार्य होंगे, वैसे यह भी होगा। ज़रूरी कार्य कैसे रुकेगा? हाँ, थोड़ेमें कर दिया जायेगा। इमीलिए केवल आपको कहने आया हूँ।”

“बस, बस, मैं सब समझ रहा हूँ। ज़माना ज़रूर बहुत नाजुक आ गया है। तो तूल-तबीलकी ज़रूरत नहीं है। समझे?”

“जी।” मैंने कहा।

“एकदम सूक्ष्म-संक्षेपमें सब तैयारी हो।”

“जी।”

“हम कहते हैं, तैयारी क्या करना है? भैंस दूध देती है?”

“जी, हाँ।”

“बस। घरका घी, घरका दही, घरका आटा, थोड़ी-सी चीनी मँगा लीजिएगा।”

“जी।”

“और सब्ज़ीमें क्या लगेगा? दो-तीन किस्मकी काफ़ी होगी। चटनी वग़ैरह बनानेमें आपके घरकी औरतें इतनी चतुर हैं कि क्या पूछना! हाँ, मसाला वग़ैरह अपने हाथसे खरीदिएगा। बनारससे न मँगा मक़ें तो पापड़ यहाँ भी मिल जायेगा। कचौरी बनानेमें अलबत्ते थोड़ी कठिनाई होगी। यों घरकी औरतें भी काफ़ी अच्छी बना लेती होंगी, परन्तु आप अगर मिट्ठू हलवाईको बुला लें तो क्या हर्ज?”

“ठीक है।” मैंने साँस रोककर कहा।

“मैं यह सब इसलिए बता रहा हूँ कि आप मेरे जजमान हैं। पुरोहित केवल खानेके लिए नहीं होता। वह दुःख-सुखका भी साथी है। उसे हर बिगड़े-बनेका खयाल रखना चाहिए.....और देखो जजमान, मेरा

ख्याल है कि जो काम किया जाये, प्रथम श्रेणीका किया जाये। थोड़ेमे हो परन्तु उत्तम हो। क्या विचार है आपका ?”

“ठीक है, परन्तु पण्डितजी,” मैंने कहा, “चादरके अनुसार ही पैर फैलाना बुद्धिमानी है !”

“इसीलिए तो मैं आपको ऐसी तजवीज दे रहा हूँ कि हर-फिटकरी न लगे और रंग चोखा उतरे ! अब आप यह देखें कि कतरा-कलौंजी जो विविध प्रकारके बनते हैं उनमें क्या व्यय पड़ता है ? थोड़ा-सा बेसन, थोड़ी-सा तेल और थोड़ी-सी सब्जो। उधर तैयार हो गयीं ढेर-सी चटक-मटक, जायकेदार चीजें ! आप इनके लिए जरूर स्मरण रखेंगे।”

“जी।” धैर्यपूर्वक मैंने कहा।

“और जब इतनी चीजोंकी तैयारी होगी तो थोड़ी-सीके लिए क्या कफ़ायत होगी। साधारण मिष्टान्नका प्रबन्ध कर लिया जायेगा। बाज़ार न जायें तो घर भी तैयार हो सकता है। और आजकल समझदार लोग क्या करते हैं, जानते हैं ?”

“नहीं तो !” मैंने कहा और सोचा कि देखें अब कौन-सा प्रबन्ध घहराता है।

“पूरी-कचौरीके साथ मोहनभोग और पूआ भी बनवा देते हैं। अधिक लगता है क्या ? बस थोड़ा-सा घी। और क्या ?...मैं दूसरोंसे यह सब क्यों कहने जाता ?...हाँ, देखिए जल्दीमे कुछ वस्तुएँ छूट जाती हैं.....।”

अब अधिकके लिए मेरे भीतर धैर्य नहीं रहा और कान झाड़कर खड़ा होकर हाथ जोड़ते हुए बोला, “अब देर हो रही है पण्डितजी, चलो। तो कल अब थोड़ी जल्दी कीजिएगा...किसीको भोजना भी पड़ेगा ?”

“नहीं...नहीं...इसकी क्या जरूरत ? अच्छा एक बात आप बताते जायें कि ‘धरमधक्का’ रहेगा कि ‘छातीफार’ ?”

इन दो शब्दोंको सुनकर मैं चौंक उठा : धरमधक्का या छातीफार ? ये दोनों शब्द कानोंमें गूँजने लगे । मुझे आशा भी नहीं थी कि ये शब्द मेरे सामने आयेंगे । क्षण-भरमें ही कई साल पहलेकी एक घटना मेरे मस्तिष्कमें बिजलीके समान कौंध गयी जब इन शब्दोंको लेकर कई घण्टे तक टीचर्स-रूममें भारी बहस हुई थी । मुझे वह क्षण भी ठोक-ठीक स्मरण आया, जब पहले-पहले ये शब्द मेरे कानोंमें पड़े ।

वह एक बरसातका सवेरा था । रास्ता खराब होनेके कारण मैं कुछ पहले ही घरसे स्कूलके लिए प्रस्थान कर चुका था । स्कूलके लिए सीधे जानेवाले रास्तेमें पानी भर जानेके कारण उन दिनों पाँडेपुरसे घूमकर ही रास्ता जाता रहा । अब तो बाढ़-विभागकी कृपासे उस गढेवाले रास्तेपर सड़क हो गयी है और बरसातमें भी सीधे चले जाते हैं ।

पण्डितजीके दरवाजेके सामने पहुँचा त्यों ही पानी तेज हो गया । मैं उनकी बैठकमें दाखिल हुआ । संयोगसे पण्डितजी मौजूद थे । प्रणाम-आशीर्वादके बाद देश-दुनियाकी चर्चा शुरू हुई । उसी समय पण्डितजीके लिए भोजनका निमन्त्रण लेकर एक आदमी आया । उसे स्वीकार करते हुए उन्होंने उमसे पूछा कि भोजनमें 'धरमधक्का' रहेगा कि 'छातीफार' ? वह आदमी हँसने लगा और बोला कि 'छातीफार' क्यों होगा 'धरमधक्का' ही रहेगा ।

जब वह चला गया तो मैंने पण्डितजीसे इन दो विचित्र शब्दोंका अर्थ पूछा । उत्तरमें जब वे भी हँसने लगे तो मैंने ख्याल किया कि ये शब्द केवल हँसनेके लिए हैं, कोई खास बात नहीं है । तभी पण्डितजी ने कहा,

“मुफ्तमें ही शब्दोंका अर्थ जानना चाहते हो ? शब्द ही ब्रह्मा है । शब्द ही ईश्वर है । शब्दमें ही सारा संसार समाया हुआ है । जब कभी निमन्त्रण दो और पूछो तो मैं बताऊँ ! बच्चा, ब्राह्मण दो प्रकार

भोजन करता है : धरमधक्का और छातीफार ! हा.....हा.....हा.....हा !”
वे खूब हँसे ।

पण्डितजीके साथ मैं भी हँसने लगा । तबतक पानी बन्द-सा हो गया था, मैं चल पड़ा । थोड़ी दूर गया तो पुनः और जोरोंका पानी आ गया । अब लौटना उचित नहीं था । किसी प्रकार स्कूल पहुँचा । वर्षाके कारण छात्रोंकी उपस्थिति नाममात्र की रही और विद्यालय बन्द हो गया । छुट्टीसे मनोरंजक स्थिति अध्यापकके लिए दूसरी कोई नहीं होती । टीचर्स-रूम बेलाग बातों और ठहाकोंसे गूँजने लगा । उसी समय मुझे पण्डितजीके दोनों शब्द स्मरण आये और बोला,

“सज्जनो ! एक बड़ी दिलचस्प बात है ।” और इसके पश्चात् पूरी घटना सुनाकर पूछा, “क्या आप लोग बता सकते हैं कि ‘धरमधक्का’ और ‘छातीफार’ के क्या अर्थ हैं ?”

प्रमोदकुमारने कहा, “धरमधक्काका अर्थ है पक्का भोजन यानी पूरी-कचौरी और छातीफारका अर्थ है कच्चा भोजन जिसे ब्राह्मणको स्वयं बनाकर खाना पड़ता है । क्या यह बना-बनाया पा लेनेकी तुलनामें छाती-फार नहीं है ?”

“है तो जरूर,” चन्द्रबलीने कहा, “परन्तु इस परिभाषामें थोड़ी-सी त्रुटि है । अब आजकल यह रिवाज वनस्पति धीके चलनके साथ ही खत्म हो गया कि ब्राह्मणको बुलाकर उससे स्वयं रसोईका कच्चा सामान जैसे चावल-दाल आदि देकर बनवाया जाये । इसमें किफ़ायत पड़ती थी, परन्तु अब तो वनस्पतिकी पूरीमें सस्तापन और सुविधा देखते हैं । मेरे ख्यालसे धरमधक्कासे तात्पर्य है कि धार्मिक ख्यालसे प्रसन्नता-पूर्वक भोजन कराना, और छातीफारका अर्थ है केवल परम्पराके लिए, रिवाज निबाहनेके लिए मजबूरीसे, अश्रद्धासे अथवा झूठ मारकर खिलाना ।”

“बिलकुल ठीक,” शिवमंगलजीने कहा, “यही मेरी भी धारणा है । आज अनेक लोग हैं जो आदरसे अथवा मनसे उन्हें भोजन कराते हैं और

अनेक हैं कि यदि लोक-लाज न हो तो कभी उनके घर ब्राह्मणका चरण न धुले ।”

“मैं तो इसका दूसरा ही अर्थ लगाता हूँ,” कैलास रायने कहा, “धरम-धक्काका अर्थ है खूब शानदार दावत जिसमें अनेक प्रकारके सुस्वादु-सरस व्यंजनका खुलकर कचरकूट हो । जितनी भी टोम-टाम हो सबकी तैयारी हो और जिसमें भोजन करनेवाला डूब जाये । उधर छातीफारका अर्थ है कि साधारण काम-चलाऊ भोजन जिसे किसी प्रकार गलेसे उतारकर पेट भर लिया जाये ।”

भरतलाल, राजनारायण आदिने भी इसीका समर्थन किया तब संस्कृताध्यापक श्री भवभूति द्विवेदी बोल उठे, “सुनिए, सबको कूट-खानकर मैं बताता हूँ । छतियाफार वह है जो कच्चा हो, कम हो और बेमनका हो तथा धरमधक्का वह है जो पक्का हो, ठाटवाला हो और जिसमें जजमानकी पूरी श्रद्धा हो । हम ब्राह्मणोंको और चाहिए ही क्या ?”

अब उस समय जब कि पण्डितजीने भोजनकी लम्बी-चौड़ी फ़िहरिस्त मेरे सामने पेश कर दी, स्पष्ट ही मालूम हुआ कि पण्डितजी अबतक धरम-धक्काकी भूमिका बाँध रहे थे । विगत वर्षकी इन शब्दोंके सम्बन्धमें चली चर्चाएँ और परिभाषाएँ भी हमारे सामने थीं । मुझे लगा कि तैयारीकी विस्तृत प्रेरणाके बाद भी पण्डितजीको शक रहा है कि कहीं मैं किफ़ायतके मारे कामचलाऊ तैयारी ही न करा दूँ । जब एक पण्डितजीको ही खिलाना है, और स्वयं इन्होंने अपने मुँहसे सारी व्यवस्था समझा दी तो कौन कमी करने जाये ! सब पूर्ण श्रद्धासे भरपूर होना चाहिए ।

यही सब बातें सोच-समझकर पण्डितजीकी ओर मुँह करके प्रसन्नतासे बोला, “धरमधक्का ही रहेगा पण्डितजी !” और घर लौट आया ।

तैयारी हुई एक पण्डितजीके लिए, आ धमका यह उनका सारा परिवार ! क्या कहें ? सोच-विचारमें मैं डूबता-तिरता था कि दल पास आ गया । हाथ जोड़कर मैंने नमस्कार किया । चारपाइयाँ डाल दीं ।

सभी लोग बैठ गये । मैं कुछ इधर-उधर करने लगा । समझमें नहीं आता कि किस प्रकार कोई प्रसंग उठे । पण्डितजीका पंचवर्षीय पौत्र बड़ा नटखट है । पण्डितजी उससे कहते हैं कि तुम्हें भोजन नहीं मिलेगा तो वह उन्हें मुक्का दिखाकर धमकाता हुआ मेरी ओर ताकता है । जब मेरे चेहरेपर दृष्टि पड़े तो सम्भवतः मेरे चेहरेपर उड़ती हुई हवाइयोंको पण्डितजी ताड़ गये और उड़ती चिड़ियाको हल्दी लगानेवाले पण्डितजी बहुत गम्भीरता और सावधानीके स्वरमें बोले,

“क्या बात है जजमान !”

“कुछ नहीं.....यही.....” मैं अत्यन्त संकोचमें पड़ गया ।

“ऐं ! क्या बात है ?.....कुशल तो है ?”

“जी ।”

“तब ?”

“मैंने संकेतसे पण्डितजीको अलग बुलाया और बड़ी मुश्किलसे कह सका—

“तैयारी तो केवल आपकी थी ।”

“अच्छा ? अरे जजमान ! तो आपने कहा क्यों कि ‘धरमधक्का’ रहेगा ?” कहकर पण्डितजी ठहाका लगाकर हँस पड़े ।

पण्डितजीकी हँसीसे जानमें जान आयी और मैंने पूछा, “तब यह क्या हो गया है ?”

“शिव ! शिव !! इसीको तो मैं अपनी बोलीमें ‘छातीफार’ कहता हूँ । अकेले पण्डित जजमानके यहाँ छप्पन प्रकार उड़ायेँ और उधर बाल-बच्चे सोच-सोचकर सिहकें : उनके सिहकनेकी कल्पनासे पण्डितकी छाती फटे ।” पण्डितजीने कहा ।

“और क्या धरमधक्का उसे कहते हैं कि सारा परिवार पत्तलपर डट जाये ?” मैंने पूछा ।

“हाँ, बल्कि औरतोंके लिए भी बाँधकर ले जाया जाये । घरमें पूर्ण रूपसे चूल्हा न जले !” उन्होंने समझाया ।

“तब परिभाषा समझनेमें भूल हुई ।” मैंने कहा और एक बार फिर परिस्थितिकी गम्भीरताने हमें चिन्तित कर दिया ।



बड़ा साहब

मुझे आशा थी कि जब स्वयं आचार्य महोदय अन्तमें भाषणके लिए खड़े होंगे तो लड़के शान्त हो जायेंगे, परन्तु यह देखकर गहरी निराशा हुई कि छात्र और भी अशान्त हो गये । स्पष्ट था कि वे भाषण सुन नहीं रहे थे अथवा सुनना पसन्द नहीं करते थे, अथवा उसमें उनके सुनने लायक कुछ था ही नहीं । इधर बोलनेवाले वक्ता थे कि उन अस्थिर छात्रोंके ऊपर जो बैठे नहीं मानो 'बैठाये' गये थे, धारा-प्रवाह शिक्षाओंकी बौछार किये जा रहे थे ।

आचार्यजीने शुरू किया—“मित्रो और बच्चो ! प्रसन्नताकी बात है कि आजकी सभामें अनुशासनकी समस्यापर पर्याप्त गहराईके साथ वक्ताओंने अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है । सर्वप्रथम मैं आजकी सभाके प्रमुख वक्ता सत्यजीको धन्यवाद देना अपना परम पुनीत कर्तव्य समझता हूँ । आपने आकर हम लोगोंको आभारी किया । आपके साथ आप भी आये………… ।”

दूसरे 'आप'का प्रयोग मेरे लिए था । मैं तो इस अपरिचित स्थानपर अनायास-अनाहूत पहुँच गया था, मित्र सत्यजीके साथ खिंचा-खिंचा । सो यहाँकी नवीनतामे डूब गया था । विशेषकर आचार्यजीकी गम्भीरता ऐसी घटाटोप रही कि दम घुटने लगा था । न स्नेहकी बयार, न मुसकानकी विजली, न सौहार्दकी बूँदें और न आत्मीयताका प्रकाश । एक मनहूस ऊमस । एक उबानेवाली चुप्पी, एक उच्चताका अलगाव, एक अहं-प्रेरित आभिजात्य स्तर । अपने बड़प्पनका बोझ आपने मेरे सिरपर तभी लाद दिया जब मैं सत्यजीके साथ स्कूलमे पहुँचा, तभीसे ढो रहा हूँ । यह सोचकर कि जैसे डिप्टी साहब हैं, कलक्टर साहब हैं, थानेदार साहब हैं,

बड़े-बड़े कल-कारखानोंमें मैनेजर साहब हैं अथवा इस देशमें गोरा साहब थे, वैसे ही ये भी छोटे-छोटे स्कूली साहबों—मास्टर साहबों—का बड़ा साहब 'प्रिन्सिपल साहब' हैं। हैसी-ठट्टा थोड़े हैं ? रोब है, दाब है, दर्जा है, डिग्री है, कुरसी है और सबसे पृथक् व्यक्तित्व है। मैं इस महान् आदमी के आगे वैसे ही खो गया जैसे हिमालयके नीचे ऊँट। दो शब्द बोलनेका भी माहस न हुआ। परिचय तो सत्यजीने मेरा बड़ा लम्बा-चौड़ा दिया और आशा बैधी कि औपचारिक रूपमें ही सही, परन्तु एकाध कृपा-वाक्य निकलेंगे, परन्तु परिचयके साथ मेरे नमस्तेको तनिक हिले-डुले बिना ही पीकर आचार्यजीने सत्यजीके साथ कोई दूसरी चर्चा छेड़ दी तो मुझे कोई खाम विस्मय इसलिए नहीं हुआ कि मैं यह भूल नहीं गया था कि मैं एक मामूली आदमी हूँ। भला सभी ऐरे-गैरे नत्थू-खैरेसे स्कूलका यह बड़ा साहब बोलता, बात करता, फिरेगा तो क्या पोजीशन रह जायेगी ? आखिर हर आदमीका एक स्तर होता है न ? कचहरी हो, रेल हो, फ़ौज हो अथवा स्कूल हो : सब जगह दर्जे हैं। जो हाँ, स्कूलको आप अलग क्यों करते हैं ? यही तो जगह है जहाँ लड़के सीखते हैं। बड़ा बनना सीखेंगे—राष्ट्र बड़ा बन जायेगा। पोजीशन सीखेंगे। बड़प्पन सीखेंगे। मामूली आदमियों को चूहे-बिल्ली समझना सीखेंगे। अलग रहना सीखेंगे। कुलीनता एवं श्रेष्ठत्वके अहंवादी तत्त्वोंको अपने भीतर कूट-कूटकर भरना सीखेंगे। यही तो अनुशासन है। कमी भी तो इसीकी है। आज देखिए, वक्ता लोगोंने भी क्या-क्या कमालकी बातें बालकोंके सामने रखीं। मुझे भी बोलनेका मौका दिया गया था। मैं समझ नहीं पा रहा था कि जब सुननेवाला कुछ सुनना नहीं चाहता है तो बोलनेवालोंके पेटसे बातें क्यों कट-कटकर निकल-निकल पड़ती हैं। मुझे यह बिल्कुल ही नापसन्द था कि मैं बोलता जाऊँ और बालवृन्द उधर बात करता रहे अथवा डेस्क-बेंचपर ताल बजाता रहे। वास्तवमें जैसे-तैसे दो शब्द बोलकर छुट्टी चाहता था। तो क्या बोलूँ ? वर्तमान प्रसंग तो अनुशासनपर आ भिड़ा था। आज अनुशासनकी समस्याने

विकट रूप धारण कर लिया है। आजका छात्रवर्ग उद्दण्ड एवं दुर्विनीत हो गया है। उनमें शील, श्रद्धा एवं मर्यादाका अभाव हो गया है। यह राष्ट्र का कलंक है। इसके लिए समाज उत्तरदायी है। राष्ट्र या सरकार भी कम ज़िम्मेदार नहीं। इस प्रकारकी बातोंका धुँआधार सिलसिला जारी था। मैंने बिना किसी भूमिकाके भाषण शुरू करते हुए जोरदार शब्दोंमें कहा, “बालको ! तुम लोग परम पवित्र हो। पूर्ण निर्दोष हो। निष्कलंक हो। तुम कैसे अनुशासनहीन हो गये ? स्पष्ट है कि बन नहीं गये बल्कि ऐसे बना दिये गये हो। तुम लोग हो तो परम सीधे-सरल और श्रद्धालु, परन्तु कैसे उद्दण्ड कहे जाने लगे ? यह दुर्गुण कैसे तुममें आ गया ? अवश्य ही तुमने इसे सीखा नहीं है बल्कि तुम्हें सिखा दिया गया है !”

किसने तुम्हें यह सब सिखाया ? किसने तुम्हें ऐसा बनाया ? इस सबके लिए क्या वे लोग ज़िम्मेदार नहीं हैं जो तुम्हें गढ़कर नया रूप प्रदान करने के ये बड़े-बड़े कारखाने खोले हुए हैं ?”

मेरा वक्तव्य इस प्रकार झटकेके साथ खत्म हो गया। अपना वकील समझकर लड़कोंने अब ताली बजायी। अपनी जगहपर बैठकर मैंने पाया कि सत्यजी मेरी ओर ताककर मुसकरा रहे थे। बड़े साहबके चश्मेके दो काले-काले शीशे थे तो मेरी ही ओर, पर आँखोंके न दिखायी दे सकनेके कारण बता नहीं सकता कि वे मेरी ओर देख रहे थे या दूसरी ओर। इस चश्मेका यह चमत्कार विशेष रूपसे उस समय समझमें आया। लड़कोंकी साँय-फुस चालू रही। कुछ खड़बड़-खड़बड़ भी होता रहा। मेरे बाद चार भाषण और हुए। एक वक्ताने तो काफ़ी उछल-कूद दिखायी, परन्तु इससे लड़कोंकी अकारण हँसी, कानाफूसी और अटर-पटरमें वृद्धि ही हुई और यह वृद्धि उस समय एक क्षणके लिए तनिक कम हुई जब आचार्यजी खड़े हुए।

एक लड़केने धीरेसे कहा, “अब तो यह दर्शनशास्त्र ही झाड़ेगा।” दूसरेने कहा, “चलो उठकर चल दें।” तीसरेने कहा, “मत घबराओ

बस यह आखिरी है ।” एकने कहा, “घण्टों जोतेगा ।” किसीने कहा, “शाम हो जायेगी तो होरहा क्या खाक फूँकोगे ?” तबतक तीन-चार जोर-जोरसे खाँसने लगे ।

उधर आचार्यजीका भाषण गम्भीरसे गम्भीरतर होता चला जा रहा था “.....अनुशासन एक सामाजिक समस्या है । पूरे सामाजिक तत्त्वोंका संश्लेषण होगा । इसके बाद उनका विश्लेषण कर नियमोंका निर्धारण होगा । जीवनके मूलभूत तत्त्वोंको दृष्टिकोणमें रखते हुए उनके विनियोगकी पृष्ठभूमिका निर्माण होगा । उनके अनुल्लंघनीय अंशोंका विशिष्ट समाजका सदस्य किस सीमा तक अतिक्रमण कर अनुशासनका प्रश्न उद्भूत कर देता है, यह द्रष्टव्य होगा ।.....”

मैं ध्यानपूर्वक स्मरण कर रहा था कि ऐसा क्लिष्ट अंश छात्रोंकी गद्यवाली पाठ-पुस्तकमें कही है भी या नहीं ? मगर मुझे अधिक श्रम नहीं करना था । इसका स्पष्टीकरण छात्र स्वयं कर रहे थे । एक कोनेसे दो छात्र उठकर चुपकेसे खिसक गये । उन्हें रोकनेके बहाने कुछ छात्र गुल-गपाड़ा करने लगे । मैं हैरान था कि आखिर क्यों यह सब ऐसे चल रहा है ? फिर सोचा, अवश्य ही यह गड़बड़ी इसलिए हो रही है कि अध्यापक-गण और आचार्य इस समय उन्हें उस प्रकार डाँटनेमें विवश हैं जिस प्रकार डाँटनेके वे अभ्यासी हैं, क्योंकि यह अवसर दूसरा है और कुछ बाहरके लोग भी इसमें बैठे हैं । और समय होता तो पाजी, उल्लू, गदहा, गीदड़के बच्चे, हरामी, नालायक, बेईमान, सूअर, बदतमीज और बेहूदे आदि विशेषणोंके साथ उन्हें ‘ताड़न’के सहज अधिकारी मानकर तदनुसार प्रतिक्रियाएँ सम्भावित थीं ।

एक बात और रही । एक कहावत है कि हाथी चलता रहता है और कुत्ते भूँकते रहते हैं । सो, क्या हुआ जो ये चमगादड़ ऐन भाषणके मौक़ेपर पंख फड़फड़ाने लगे । ये अँधेरेके ऊधो, ये माँदके मल्लू क्या जानें इन बातों को ! ये गुल्लरके कीड़े क्या जानें आचार्यकी अमूल्य बातें !

उस समय सत्यजीके तात्कालिक भाषणका एक अंश मेरे कानोंमें गूँजे लगा । क्या सटीक बात कही थी, “समाजमें अधिकांश लोग भेंड़ है और कुछ लोग भेड़िया हैं” स्कूलोंमें भी यही बात पाते हैं” कक्षाओंमें अध्यापक भेड़िया-जैसा रहता है और लड़के भेंड़-जैसे । चारों ओर आतंक और स्वार्थका राज्य है” । सत्यजीके भाषणके इस प्रसंगमें मैं थोड़ा-सा यह जोड़ देना चाहता हूँ कि ‘एक ही व्यक्ति समयपर भेड़िया-जैसा लगता है और समयपर भेंड़ भी बन जाता है । इस प्रकार तीन श्रेणी हो गयीं : भेंड़, भेड़िया और भेड़िया-भेड़ । अध्यापक तीसरे दर्जेमें आता है, आचार्य दूसरे दर्जेमें और बालकगण पहले दर्जेमें ।’ अब हुआ करे अनुशासनपर अन्धा-धुन्ध भाषण अथवा प्रवचन ! क्या फायदा ? जहाँ प्रेम नहीं, एकत्व नहीं, सहयोग नहीं और मनोयोग नहीं, वहाँ स्वार्थ, परम्परा अथवा आतंक कहाँतक मानवीय विकासकी कड़ियोंको जोड़नेमें समर्थ होंगे । जब अन्तर को छूनेवाली वाणी नहीं तो विद्यालयीय परेडमें शिक्षाके कारण ऊपरी गति भले प्रदर्शित करा सकें भीतरी अनुशासन अथवा प्रगति अथवा मानवत्वका विकास सम्भव नहीं । जहाँ मात्र नौकरी है, पैसा है, स्वार्थ है और निजी अधिकार है वहाँ क्या शिक्षा और क्या अशिक्षा ? डण्डेके बलपर, कानूनके बलपर, पदके बलपर और रोब-दाबके सहारे, कागज़की रेतपर ठेल-ठालकर चलनेवाली शिक्षाकी नावसे किस यात्राकी आशा रखी जाये ? आज जो कुछ हमारे सामने है उससे अधिककी उम्मीद क्या की जाये ? नौकरशाही और कागज़शाहीकी मनोवृत्तिके कारण क्षयग्रस्त और उपेक्षित शिक्षा-समाजसे किस स्वस्थ और उपयोगी उपलब्धिकी आशा बाँधी जाये ? यह कोई हैरतकी बात नहीं कि अध्यापक हलवाहा बुद्धिके बँल बालकोंको पढ़ाई के हलमें घर-घरकर नाधे और वे तुड़ा-तुड़ाकर भागें तथा शिक्षाका क्षेत्रपति आजकी तरह बारी-बारीसे दोनोंको खरी-खोटी सुनाये । यह कोई अटपटी बात नहीं कि समाजके सामने, दुनियाके सामने, अखबारके कॉलमोंमें और किताबके पन्नोंमें बहुत ऊँची-ऊँची बातें कही जायें । यहाँतक कि बालकोंके

सामने उत्कृष्ट सिद्धान्तोंको जोशीले शब्दोंमें बारम्बार दुहराया जाये जब कि सामने बैठे श्रोता बोलनेवालोंकी मूर्खताके प्रति कुढ़ते रहें, उनका मज़ाक़ करते रहें, कानाफूसी, खटर-पटर करते रहें और ऊबकर सरक भी जायें ।

जैसे-जैसे जल्दीसे भाषण ख़त्म करनेकी बात मैं सोचता जाता वैसे-वैसे आचार्यजीका भाषण द्रौपदीके चीरकी भाँति बढ़ता चला जा रहा था । श्रोता छात्रोंकी अस्त-व्यस्तता उधर बारात-जैसी अनियन्त्रित हो चली और वक्ताजीका वक्तव्य विवेचनासे ललकारमें परिणत हो उठा । “..... “आज तुम लोगोंके कन्धेपर राष्ट्रका भार है । तुम्हीं लोग देशकी आधार-शिला हो । उठो कि राष्ट्र सिर उठा सके, बढ़ो कि स्वदेशके गति-शून्य पदोंमें त्वरा आये !....गाँठ बाँध लो कि राष्ट्रके साथ ही तुम्हारा भाग्य भी अनुस्यूत है । तुम्हारे अभ्युत्थानके अलंकारोंसे ही राष्ट्रकी सज्जा नियोजित है । तुम और राष्ट्र दोनों अन्योन्याश्रय हो ।.....”

किसीको रोमांच नहीं हुआ । किसीके रोयें नहीं फड़के । किसीका दिल नहीं धड़का । किसीका मन नहीं उछला । मैंने देखा सब मिलाकर छात्रोंके मुँहपर किसी भी भावका पूर्ण अभाव था । यदि कोई भाव था तो यही कि वे जितनी जल्दी हो छुट्टी पा जायें ।

एक बार पुनः बहुत ग़ौरसे आचार्यजीके चेहरेको मैंने देखा । गौरवर्ण का लगभग ५॥ फुट ऊँचा भरा-पूरा गोल चेहरा । सावधानी और लापरवाही दोनोंके संयोगसे सँवार-बनाकर पीछे घुमाये गये काले चिकने बाल । आँखोंपर कालो ऐनक । पैण्ट और बुशशर्टमें पूरी तरह निखरी हुई पर्स-नाल्टी । गहरी निराशाके साथ छात्रोंकी वेश-भूषासे समन्वय करता रहा । कहाँ राजा भोज कहाँ भोजवा तेली ! गाँव-गँवईके मामूली मनई ये माटीके लोने-से लड़के.....सचमुच भेंड़-बकरी-से.....! कहाँ हैं ये....शिक्षा, सम्भ्यता, ज्ञान, विज्ञान और नागरिकताके एवरेस्टका इन्हें पता भी नहीं, आरोहण तो दूरकी बात है । सो, चिहा-चिहाकर पहले देखते-सुनते रहे होंगे और

अब तो आदत-सी पड़ गयी है कि आचार्यजी जैसे बड़े-बड़े लोग बड़ी-बड़ी बातें जानते हैं और कहते हैं परन्तु उनसे उन्हें क्या लेना-देना है ?

उधर आचार्यजीका भाषण जारी था इधर इसी बीच उनसे मेरा वार्तालाप भी मनके भवनमें होने लगा ।

“आप छात्रोंमें अपनेको मिला नहीं पाते हैं ।”

“वाह ! तब खूब शासन होगा ? ये देहाती लोंडे मिरपर चढ़ जायेंगे । सब बैल हैं । मेरा तो इनके बीचमें दम घुटने लगता है । कोई है क्रायदेका लड़का ?”

“सिखाइएगा तब तो होंगे । आप तो इन्हें कीड़े-मकोड़े ही समझते हैं ।”

“तो और समझूँ क्या ? कुछ दिन मैं और इनके बीच रह गया तो सम्य समाजके मेरे ‘मैनर्स’ भी भूल जायेंगे और सम्भव है कि मैं भी इन्हीं जैसा हो जाऊँ ।”

“यह तो भारी खतरा है ।”

“और क्या । इसीलिए तो सबसे बात नहीं करता, आप जानते हैं ? किसी मजिस्ट्रेटसे मैं कम नहीं । कमसे-कम हाईस्कूलका अध्यापक हो तो मैं बात करने लायक मानता हूँ । प्राइमरी और मिडिल स्तरके टीचरों की गिनती भी मैं मूर्खोंमें ही करता हूँ ।”

“लेकिन यह तो कोई गौरवकी बात नहीं है ।”

“तुम क्या जानो ? अपने स्तरको क्रायम रखनेके लिए सदा सजग रहना पड़ता है । अधिक हिलने-मिलनेसे आदमी हलका पड़ जाता है । उच्च समाजके ढंग-क्रायदे गली-गली बिकते नहीं हैं ।”

“मगर अध्यापकमें, जैसा कि शिक्षण-संविधियोंमें लिखा है, यह गुण आवश्यक है कि वह सर्वसाधारणमें घुल-मिल जाये ।

“गोली मारो उन संविधियों और विधानोंको, यहाँ तो वेतनसे मतलब है महाराज ! हम नौकरी करते हैं पैसेके लिए न कि सारी दुनिया को ज्ञानी बनानेके लिए !”

“इसका मतलब कि आप दुनियाको घोखा देते हैं ?”

“कैसे ?”

“बालकोंके निर्माणका उत्तरदायित्व आप निभा नहीं पाते और अपनी इस कमीको बनावटी ‘पर्सनाल्टी’ अथवा ‘रोब’से छिपाये रहते हैं।”

“खूब कहा ! निर्माण तो मैं खुद अपना हो नहीं कर सका तो बालकोंका क्या करूँगा ? घरमें चिराग जलाकर ही मन्दिरमें जलाते हैं।... और मेरे रोबपर तुम जलते क्यों हो ? यह भगवान्‌का दिया वरदान है। सर्विसके किलेमें कूदनेकी कमन्द है।”

“मगर इससे बालकोंका लाभ क्या ?”

“लाभ क्या ? इसे तुम-जैसे मामूली आदमी समझ नहीं सकते। समझे ?”

“जी।”

मैं ध्यानसे विरत हुआ तो देखा कि सामने जहाँ लड़के बैठे थे सभी सीटें खाली थी। एकदम खाली। आचार्यजी शायद भाषण समाप्त कर बैठ चुके थे। अब सभी भद्र लोग उठनेका प्रयास कर रहे थे। सत्यजी झोला सँभाल रहे थे। आचार्यजीने टेबलपर तश्तरीमें रखे पानके अन्तिम बीड़ेको मुँहमें डालकर रूमालसे ललाटका पसीना पोंछते हुए कहा,

“काफ़ी देर तक सभा चली।”

“जी। पूरे चार घण्टे हो गये।” एक अध्यापकने कहा।

“आपने अन्तमें कमाल कर दिया,” सत्यजीने कहा। और उसी समय मुझे लगा कि अब बोलनेका समय आ गया है। जोरदार रूपमें मैंने कहा,

“क्या कहना है ! मैं तो एकदम खो गया था। क्या सुन्दर शैली पायी है आचार्यजीने भाषणकी !”

आचार्यजी मेरी ओर देखने लगे। आँखें काले शीशेकी ओटमें थीं इससे कुछ भावोंका पता नहीं लगता था परन्तु चेहरेपर खिंची लकीरोंसे पता चलने लगा कि मेरे कथनको उन्होंने सुना ज़रूर है। मैंने बातको और

आगे बढ़ाया—

“सारी समस्याएँ मूर्तिमन्त हो गयीं। सारे प्रश्न साकार हो गये। सौभाग्य था कि ऐसा प्रेरक वक्तव्य सुननेका सुयोग प्राप्त हुआ।”

आचार्यजीको ध्यानपूर्वक अपनी बातें सुनते देखकर साहस बढ़ा। कुछ अधिक निकटता प्रकट करते हुए बोला,

“आपका आजका वक्तव्य आजीवन स्मरण रहेगा।”

अब आचार्यजीका दिल रोबके दुर्भेद्य कवचके भीतरसे कुछ द्रवित हुआ और एक कलात्मक लापरवाहीके लहजेमें बोले, “क्या बताऊँ मास्टर साहब ! जोश-खरोश कम नहीं है पर सोचता हूँ कि किसके सामने भाषण करूँ ?”



रामबाबू बी०डी०ओ०से मिले

गाँवके बादशाह रामटहल राय उर्फ रामबाबूसे मुलाकात करनेके लिए मैं मन-ही-मन सोच ही रहा था कि लुधियाना जूता पैरोंमें डाले धीमी चालसे कन्धेपर रखी चादर एक हाथसे सँभालते हुए वे आ गये। गाढ़ेका पुराने काटका धुला हुआ कुरता बहुत जँच रहा था। साधारण गृहस्थोंके समान हजामत बढ़ाये नहीं रहते हैं। सच तो यह है कि इन्हे अधूरी पोशाक या अटपटे रूपमें कहीं बाहर निकलते किसीने देखा नहीं। न विलायत गये हैं, न दर्जा दोसे अधिक पढ़े हैं और न किसी साहबनुमा आदमीकी संगतिमें कुछ वर्ष बिताये हैं; पर रहन-रियासत अथवा तौर-तरोका इतने ऊँचे दर्जेका सुलझा हुआ एवं नियमित है कि किसानोंके इस बेढंगे देशमें उनके द्वारा निभा ले जानेपर लोगोंको ताज्जुब होता है। उमर पचाससे अधिक हुई परन्तु मुसकराते हैं तो मधुरता बरसने लगती है। गँवार-जैसा लगनेवाला यह गाँवका रईस जब बोलने लगता है तो उसका जोहर खुलता है और बड़े-बड़े क्राबिलियतके अजोर्णवाले लोगोंके छूट जाते हैं।

आज सवेरेसे ही जिसके मुँहपर देखो, बस एक ही बात है। जिस गलीसे निकलो, बस वही चर्चा सुनायी पड़ती है। बालकसे लेकर बूढ़े तक क्या स्त्री और क्या पुरुष सबमें यह बात अजब ढंगसे फैल गयी है। लोग हँस-हँसकर कहते हैं, कहते-कहते हँसते हैं, हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। मुख्य विषय था कि रामबाबू आज बी० डी० ओ०से मिलने गये थे। अब कैसे मिले, कैसे बातचीत हुई एवं किस प्रकार उपसंहार हुआ, कुछ मूल रूपमें, कुछ नमक-मिर्चके साथ, कुछ क्षेपकके रूपमें इस मुँहसे उस मुँह करके बात खूब फैल चुकी थी। इस प्रकारकी कोई

दिलचस्प बात जब गाँववालोंको मिल जाती है तो मानो उन्हें ऐसा गड़ा खजाना मिल जाता है जिसे हफ्तों तक खूब लुटाते हैं और खुश होते हैं।

सुन-सुनकर आकर्षण बढ़ता जाता था और सीधे रामबाबूके मुँहसे पूरी बात सुननेके लिए अधीरता बढ़ती जाती थी। इसीलिए उन्हें आते देखकर अपार हर्ष हुआ। अभी पिछले सप्ताहकी बात, जब कि रामबाबूके लड़केके तिलकहरू लोग बहुत जोमके साथ आये थे, बासी नहीं पड़ी थी कि यह एक नया शगल खड़ा हो गया। लगता है, रामबाबू गाँवकी शान हैं, जान हैं। गाँववालोंको उनपर पूरा गुमान है। कहते हैं, भगवान् रामबाबू-जैसे मालिकको जुग-जुग जिलाये। जब ये नहीं रहेंगे तो गाँव उजड़ जायेगा। सुनसान हो जायेगा। मर्दने क्या ठाटका जवाब दिया उन लोगोंको ! बोलती बन्द हो गयी। गाँव-भर इकट्ठा था देखनेके लिए कि रामबाबूके लड़केको शादी कैसे तय होती है। बहुत ज़िद की उन लोगोंने कि आप तिलक माँगिए। ये बराबर कहते रहे कि लड़के-लड़कीकी खरीद-बिक्रीवाला यह जंगली रिवाज खत्म होना चाहिए, परन्तु सारा कथन पहाड़का पानी हो गया। मजबूर होकर रामबाबूने कहा, “जब आप वही चाहते हैं कि मैं आपसे रुपया माँगूँ ही तो आप २० हजार रुपया दीजिए।”

पूरे मजमेमें सन्नाटा छा गया। तिलकहरू लोग एक-दूसरेका मुँह देखने लगे। मानो आँखों-आँखोंमें ही कुछ बातें करने लगे। अन्तमें एक सज्जन, जो कुछ अधिक चालाकीसे बातें करते आ रहे थे, खोंख-खोंखारकर बोले,

“बात तो आपने सोलह आना जायज कह दी है। व्यवहारमें स्पष्ट कथन कल्पवृक्ष-सा सदा सुखदायक होता है। अब हम लोगोंको क्या कहना है ? हाँ, एक बात समझमें नहीं आती है कि इतना रुपया आपने किस वस्तुके लिए माँगा है ? समाजमें तिलकका रिवाज आमतौरसे कुछ

खास बातोंपर निर्भर करता है। पहले जमीनपर तिलक चलता था। जमीनके प्रत्यक्ष मापदण्ड बेल हैं। यदि दरवाजेपर १० बेल हैं तो ५ हजार तिलक हुआ। फिर तिलक पोजीशनका होता है। सामान्य प्रतिष्ठित और सम्पन्न व्यक्तिको १ हजार घरके लिए, २ हजार लड़केकी उत्तमताके लिए, १ हजार इज्जत-आबरूके लिए, और एक हजार सम्पत्तिके लिए। अब जिसका जो पोजीशन हो। तीसरे आजकल तिलक लड़केकी शिक्षापर चलता है। किसी रईसका लड़का यदि हाईस्कूल पास हो तो २ हजार, इण्टर हो तो ४ हजार, बी० ए० हो तो ८ हजार तक और एम० ए० पास हो तो इससे भी अधिक। किसी भी ओरसे देखनेपर ५-६ हजारसे अधिक आपके सुपुत्रका तिलक नहीं आता है। पुराने ढंगसे देखिए तो आपके पास ८ ही बेल हैं। अतः ४ हजार तिलक हुआ। घर-द्वार आपका भव्य है, अतः दो-एक हजार और बढ़ सकता है। नये ढंगसे देखिए तो आपके पुत्रकी शिक्षा इण्टरसे अधिक नहीं है। अब आपकी प्रतिष्ठाको इसमें जोड़ दिया जाये तो तिलक वही ५-६ हजार तक पहुँचता है। आप क्षमा करें और हम लोगोंको कृपापूर्वक बतायें कि आपने जो २० हजारकी माँग की है उसका आधार क्या है ?”

तिलकहरू लोगोंने समझा कि बातें उधियाकर मैदान मार लिया, परन्तु इधर रामबाबू भी एक काइयाँ निकले। एक वाक्यमें ही सारे तर्कोंको हवा कर दिया। बोले, “तिलक मैंने माँगा नहीं है बल्कि आप लोगोंने मँगवाया है। न तो मैंने अपनी पोजीशनका ध्यान रखा है, न सम्पत्तिका और न अन्य किसी बातका। मैंने तिलक आपकी पोजीशन और आपकी पसन्दका माँगा है।”

“.....मगर हम लोग तो इस परिस्थितिमें एकदम नहीं हैं कि बीस हजार दे सकें। तब पसन्द किस काम आयेगी? आपके यहाँ सम्बन्ध कैसे सम्भव हो सकता है !” एक दूसरे सज्जनने कहा।

रामबाबू हँसने लगे। बोले, “तब आप तिलककी चर्चा क्यों कर

रहे हैं ? तब तो सम्बन्धकी ही चर्चा कीजिए । सम्बन्ध लड़के और लड़कीका होना है । मेरे लड़केको आप देख ही रहे हैं । अपनी कन्याको यदि आप योग्य समझते हैं और यह बात यदि मेरे मनमें बैठ जाये तो फिर बीचमें यह रुपया-पैसा क्या बाधक हो सकता है ?”

अब कन्यापक्षके मालिक बोले, जैसे अनेक बन्धनोंमें जकड़े हुऐके हाथ-पैर खुल गये हों, “बस-बस यह बात पक्की रही । देखिए मेरा परिवार बहुत सीमित है । एक लड़का’ और एक लड़की । दोनोंका रूप-रंग, शील-स्वभाव और रहन-रियासत सब मिलता-जुलता है । लड़केको बी० ए० पास करा दिया और पढ़नेकी सुविधा न होनेके कारण लड़की प्राइमरीसे आगे नहीं पढ़ सकी । पढ़-लिखकर लड़का विकास-खण्ड सवरहामें बी० डी० ओ० हो गया है और लड़कीकी इस वर्ष शादी करनेवाला हूँ ।”

“सवरहामें ? वह तो यहाँसे निकट ही है और हमारा गाँव भी तो उसीमें पड़ता है ।” रामबाबू बोले ।

“हाँ, तभी तो आप मज़ेमे उसे देखकर समझ सकते हैं कि हमारा परिवार कितना मुशील है !”

शादी तय होनेसे पहले कन्याके बारेमें जानना था । रामबाबूको लोगोंने सलाह दी कि सबसे पहले एक दिन बी० डी० ओ० के यहाँ किसी बहाने जायें । यों तो गाँववालों और स्वयं रामबाबूका यह विश्वास था कि यह विकासका मायाजाल पूरा दिखावटी है । इसी बहाने कुछ लोग चाँदी काट रहे हैं । उनका उद्देश्य किसानोंका विकास नहीं, अपितु अपना विकास है । यही कारण रहा कि रामबाबू अबतक विकासखण्ड और उसके सारे कार्योंके प्रति उदासीन रहे । अब जब उनका एक भावी रिश्तेदार ही अफसर है तो थोड़ा आकर्षण हुआ । गाँव-भर उत्सुक था कि रामबाबू बी० डी० ओ० साहबके यहाँ किस दिन जाते हैं । क्या-क्या बातें लाते हैं । लोगोंको यह भी जानना था कि वास्तवमें सचमुच विकास

हो रहा है अथवा उनकी समझमें ही नहीं आ रहा है। रामबाबूके जानेसे इसका भी रहस्य खुलनेवाला था। आज जब कि रामबाबू बी० डी० ओ०के यहाँसे लौटकर आये हैं और ताजे-ताजे, सनसनीदार समाचार-जैसे मुलाकातके हाल-चाल लाये हैं, सारे गाँवमें यही चर्चा है। लोग बिवाहवाली चर्चाके साथ इसकी तुक भिड़ाते हैं। सब मिलाकर यह प्रसंग मनोरंजक रहा कि मैं शीघ्र रामबाबूका दर्शन करना चाहता था। संयोगसे वे आ गये।

“आइए, आइए रामबाबू ! आपने दर्शन दिया कि मैं नया हो गया और आपकी आयु बढ़ गयी। आपका ही स्मरण कर रहा था। कहिए विकास-खण्डमें कौन-सा नया गुल खिला आये है ?” मैंने कहा।

रामबाबूका नियम है कि जल्दी-जल्दी नहीं बोलते हैं। बड़े ही संयमित ढंगसे तौल-तौलकर शब्द मुँहसे निकालते हैं। चारपाईपर बैठते हुए बोले, “मैं तो सिर्फ़ महक आया हूँ मास्टर, गुल तो सरकार खिला रही है ! एक क्रिस्सा है कि एक भेंड़ जब अपने बाल कटवानेमें बहुत कूद-फाँद करने लगी तो गड़रियेने उसे तरह-तरहके सब्ज बाग़ दिखाना शुरू किया। बोला, ‘देखो भेंड़, तुम इस समय हमे अपने बालोंको नोचने दो, मैं तुम्हे जाड़ेमें कम्बल बनाकर दूँगा। जानती हो जाड़ेमें कितनी ठण्डक पड़ती है ? यह तुम्हारी ज़िन्दगीका सवाल है।’ भेंड़ने कहा, ‘महाराज, मेरे ऊपर यदि आप इस प्रकार मेहरबान हैं तो मुझे यों ही छोड़ दीजिए। मुझे कम्बलोंकी आवश्यकता नहीं है।’ लेकिन वह गड़रिया कब माननेवाला था ? यह कहते हुए कि तुम्हारी हिफाजतके लिए मुझे तुम्हारे बाल नोचने ही होंगे, भेंड़को दे पटका और बाँध-छानकर बाल नोचने लगा। सो मास्टर, यहाँ सब गड़रिये जनता-रूपी भेंड़ोंके लिए कम्बलोंका प्रबन्ध करनेके लिए सरकार-द्वारा तैनात किये गये हैं !...तुम तो जानते ही हो कि मैं अफ़सर नामधारी जीवोंसे कितना घबराता हूँ। उनकी शानकी सींगोंसे मैं कितना बचकर रहता हूँ। उनके घने अहंभाव और तने चेहरे

देखकर मुझे भारी घृणा होती है। सोचकर भी नहीं सोच पाता हूँ कि आदमीकी शक्लमेंये क्या हैं !....

“सन् १९४७ के बाद सुना कि तमाम अफ़सर अब जनताके सेवक हो गये। इस सुहावने शब्दके नशेमें वर्षों तक रहा परन्तु जैसे-जैसे अनुभवके क्रदम बढ़ते गये इस नतीजेपर पहुँचता गया कि अफ़सर और बढ़कर आला अफ़सर हो गये। जनता और उनके बीच सेवा नामकी किसी भावनाका क़तई अस्तित्व नहीं है। जो भाव अँग्रेज़ोंका हिन्दुस्तानियोंके प्रति था उसी भाव की और अधिक निकृष्ट अनुकृति इस जनताकी सरकारके अफ़सरोंमें सर्व-साधारण जनताके प्रति दिखायी पड़ती है। बड़े अफ़सरोंमें इसकी मात्रा यदि कम है तो छोटे अफ़सर मानो अपनी अफ़सरीमें चूर रहते हैं।....यही देखो एक बी० डी० ओ० आये हैं। जनताके सेवक हैं, उसके शुभचिन्तक हैं। इस ऊसर क्षेत्रमें विकास बोलने आये हैं मगर कितना पानी उनमें है आज इसे देख आया हूँ।....अब सोचता हूँ कि मैं यदि नहीं गया होता तो कितना अच्छा होता !”

“कभी नहीं !” मैंने कहा, “आपका जाना प्रत्येक प्रकारसे लाभदायक रहा। हाँ, यह बताइए कि आप तो लड़कीके बारेमें अनुमान लगानेके लिए उसका भाई देखने गये थे न ?”

“हाँ, मगर वहाँ जाकर देखा कि न तो वह आदमी है, न लड़कीका भाई, न कोई जनताका सेवक ही बल्कि एक अफ़सर है।....एकदम खाँटी अफ़सर ! आसमानमें आलू उगानेवाला ! जीपपर फर्-फर् उड़नेवाला ! मेरी ओर तो आँख उठाकर देखा भी नहीं।”

“अच्छा ! तो क्या आप यों ही गये और चले आये ?”

“नहीं।”

रामबाबू क्षण-भरके लिए चुप हो गये। बातके बीचमें जब वे इस प्रकार चुप हो जाते हैं तो लोग समझ लेते हैं कि अब कोई महत्वपूर्ण बात कहनेवाले हैं। ऐसी चुप्पीके बाद जब वे बोलने लगते हैं तब श्रोताओंकी

हाँ हूँ कहनेकी भी जरूरत नहीं रहती। वे पूरी बात सिलसिलेवार कहे जाते हैं। उनकी इस शैलीसे मैं परिचित था अतः चुपचाप अगले प्रसंगकी प्रतीक्षा करने लगा।

“आजकल सवेरे कुछ ठण्डक-सी लगती है,” रामबाबूने शुरू किया, “इसीसे छाता घरपर ही भूल गया। आधी दूर गया तो धूप बहुत तीखी लगने लगी। भोजन कर चुका था परन्तु प्यासका अनुभव होने लगा था। चादर सिरपर रख ली। कालपुरके बगीचेमें पहुँचा। चारों ओर देखने लगा। पासमें एक कुँआ था परन्तु पानी खींचनेका साधन नहीं था। यहाँ मनमें विचार किया कि गरमीके दिनोंमें बिना लोटा-डोर लिये बाहर निकलना भारी भूल है। मजबूर होकर आगे बढ़ा। बहेरी गाँवके पासवाले खलिहानसे होकर रास्ता जाता था। वहाँ पानी मिलनेकी पूर्ण आशा थी। एक कुएँपर एक आदमी अपना पीतलका बड़ा-सा लोटा रस्सीके सहारे कुएँमें लटका रहा था। कुआँ ज़मीनके बराबर था। ईंटें इधर-उधर बिखरी थीं। पानी पीनेसे पहले पिलानेवालेकी जाति गाँवोंमें पूछी जाती है परन्तु इस समय चूँकि मुझे अत्यधिक प्यास थी अतः यह पूछना जरूरी नहीं समझा। माँगकर पानी पी लिया। पानी क्या था एकदम सड़ी हुई पत्तियोंका अर्क था ! किसी प्रकार दस घूँट गलेके नीचे उतार लीं। प्यास एकदम नहीं बुझी। गाँवमें-से होकर चलनेका विचार किया ताकि कहीं पानी मिल जाये। एक गली पकड़कर चला। गाँवमें भारी सुनसान था। रास्तेमें कोई कुआँ या किसीका दरवाज़ा दिखायी नहीं पड़ता था। गली पार करते ही खण्डहरोंका एक लम्बा सिलसिला पड़ा। कुछ बदबू-सी आने लगी। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया, यह दुर्गन्ध और बढ़ती गयी। रास्तेमें गन्दगी, अगल-बगल गन्दगी, दूर तक गन्दगी ! मैले चिथड़े, गन्दे मिट्टीके बर्तन, धूर और खपड़े-सिकड़ेके बीचसे इस विकट रास्तेने लिये-लिये गाँवके एक किनारे हमें कर दिया। नाक रूमालसे बन्द किये मैं बहुत तेज़ीसे चलने लगा था। भारी कष्टकी बात रही। यह गाँव है जहाँ ठीक गाँवके

बीचमें औरतें खुले रूपमें शौच-क्रियाके लिए बैठती हैं। कोई बहुत बड़ी आबादीवाला गाँव नहीं है। मुश्किलसे डेढ़-दो हजार आदमी होंगे। अजब लोग हैं ! इनका दोष भी क्या है ? जिस गाँवके इतिहासमें कभी पाठशाला या स्कूल होनेका सबूत नहीं है और जहाँकी दशा स्वराज्यके बाद दस-बारह वर्षोंमें भी ज्योंकी-त्यों रही, वहाँके लोगोंसे क्या आशा की जाये ? यहाँ विकासके लिए लाखोंकी चर्चा है, परन्तु सब कहाँ किस हवामें उड़ जाता है कि घरतीमें सटता ही नहीं ? तभी याद आया कि विकासवाले तो मोटरमें चलते हैं, जो ऐसी गन्दगीवाले रास्तेमें क्यों भटकने लगे ?

“इन सब अनेक तरहकी बातोंने इस प्रकार उलझाया कि गाँवसे एकदम बाहर चला आया और प्यासकी समस्या अन्ततः बनी ही रही। सामने घाममें विकासखण्ड सवरहाके बड़े-बड़े डब्बेके समान-से क्वार्टर चमकने लगे। अब मालूम होने लगा कि विकासका विहान हो गया है। अबतक तो अँधेरेमें-से आ रहा था। अब वहीं चलकर पानी पीनेका निश्चय किया।

“पूछते-पता लगाते जिस समय मैं बी० डी० ओ० साहबके यहाँ पहुँचा उस समय वे रंग-बिरंगके परदे लटकते दरवाजोंवाले एक बँगलेके सामने पाकड़की घनी छायामें मेज़के पास कुरसीपर बैठकर सामनेकी कुरसीपर बैठे एक टोपीवाले व्यक्तिसे बातें कर रहे थे। मेज़पर नीले रंगका एक खूब-सूरत मेज़पोश पड़ा था, जिसपर सिगरेटका डब्बा, दियासलाई, राख झाड़नेका बर्तन, धूपका चश्मा और कुछ कागज़-पत्र पड़े थे। मुझे उम्मीद थी कि पास जाते-जाते मुझसे सवाल होगा कि आप कौन हैं और किस कार्यसे आये हैं तथा एक कुरसी बैठनेके लिए मँगा दी जायेगी। मैं इन सवालोंका जवाब तैयार करते-करते पास पहुँच गया।

“अब मास्टर, मैं क्या बताऊँ, उस अफ़सरने ऐसा ढंग बनाया कि मुझे देखता ही नहीं है ! मैं खड़ा-खड़ा उसकी ओर, ठीक उसकी आँखोंकी ओर देख रहा था और वह सामनेवाले व्यक्तिसे इस प्रकार बातें किये जा

रहा था कि मेरे अस्तित्वका जैसे उसे पता ही नहीं था । कुछ ऐसा लगा कि यहाँ ऐसे-ऐसे ऐरे-गैरे तो क्षण-क्षणपर आते रहते हैं, अफसरको कहाँ फुरसत है कि किसीकी ओर देखे ! मुझे यह भी भ्रम हुआ कि शायद उसने हमें अपना चपरासी तो नहीं समझ लिया जिसका इस प्रकार उपेक्षित रूपमें खड़ा रहना जन्मसिद्ध अधिकार है !”

रामबाबूने आगे कहा, “रास्तेकी थकावट, धूपकी परेशानी, प्यासकी तीव्रता और ऊपरसे यह रोबकी ठोकर—मैं तो एक क्षणके लिए बेचैन हो उठा और उसी हड़बड़ीमें दोनों व्यक्तियोंको नमस्ते कर बैठा । दूसरे व्यक्तिये उत्तरमें थोड़ा सिर झुका दिया परन्तु अफसरके ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । ठीक पहले-जैसी मुद्रामें वह धीमे, आँखें तिरछे झुकाये, मुँहको गोल बना-बनाकर शब्दोंके लड्डू निकाल-निकालकर सामनेवाले व्यक्तिको खिलाता रहा और मैं प्यासा-हारा उसके सम्मानके दरवाजेपर हतबुद्धि खड़ा रहा । मेरा ख्याल है दोनोंमें जो बातें चल रही थीं वे किसी गम्भीर प्रश्नपर या समस्यापर या कार्यपर नहीं आधारित थीं । वे शुद्ध व्यक्तिगत और शायद यों ही समय बितानेके लिए थीं । ज्यों ही मेरा ध्यान उन बातोंकी ओर जाता था त्यों ही अपनी अपमानजनक स्थितिका बोध मनको उखाड़कर विमन, उत्तेजित और विह्वल कर देता था ।”

रामबाबू क्षण-भरके लिए पुनः चुप हो गये । मैंने कहा, “मैं होता तो खूब फटकारता । वास्तवमें अन्धे हो जाते हैं ऐसी अधकचरी बुद्धिवाले व्यक्ति अफसर होकर । ये आदमी नहीं पहचानते हैं । पैसा पहचानते-पहचानते इनकी बुद्धि एकदम भोंड़ी हो जाती है । खूब सुशीलताका दर्शन किया आपने अपने सम्भावित पुत्र-वधूके भाईके स्वभावमें !”

“वास्तवमें मास्टर,” रामबाबूने कहा, “वह उस समय आदमी नहीं था, अफसरके रूपमें बैठा था । रोएँ-रोएँसे रोब टपक रहा था । बेचारेका क्या दोष ? वह अपने वशमें नहीं था, अपनी अफसरसे अनुप्रेरित था जो यह सिखाती है कि तुम ऊँचे दर्जेके व्यक्ति हो । कलक्टर-डिप्टीके साथ

उठने-बैठनेवाले हो । सर्वसाधारणसे बोलो मत । ये कुरता-मिर्जई पहनने-वाले, गमछा-चादरे लेकर घूमनेवाले सब बैल हैं, गँवार हैं । मैंने मन-ही-मन निश्चय किया कि इस अफसरजीको कुछ सिखाकर जाना होगा । कुछ गँवारू हाथको कला इन्हें दिखानी होगी ।”

“अरे.....रे.....रे.....तो क्या आप उन्हें मारने-पीटनेकी बात सोचने लगे थे ?” मैंने बीचमें ही टोका ।

रामबाबू मुसकराने लगे । उनका मुसकराना हमें बहुत भला मालूम होता है । बोले, “अजी क्या तुमने भी निपट गँवार हो समझ लिया है ? वह तो एकदम अन्तिम कला है । जो गुड़ देनेसे मर जाता है उसे विष देनेसे क्या फ़ायदा ? प्यासा क्या चाहता है ? बस पानी । सो, मैं उनसे पानी माँगनेके उद्देश्यसे बोला, “क्या.....भाई साहब, आप लोग क्या आदमी हैं !”

मालूम हुआ कि बम गिर गया । अफसरकी हाथीकी आँखों-जैसी छोटी-छोटी लगनेवाली आँखें बैलकी आँखों-जैसी बड़ी-बड़ी हो गयीं । कुछ तन भी गयीं और ऊपर उठकर मुझे ऊपरसे नोचे तक निहारने लगीं । मैंने फिर एक तीर छोड़ा—

“मेरी शादी हो चुकी है । दूसरी करनेका विचार नहीं है । उमर काफ़ी हुई । अब क्या देख रहे हैं ? ओः ! आपकी बहनकी शादी तो कहीं तय हो गयी होनी चाहिए.....परन्तु.....गड़बड़ कर दिया आपने !.....”

“आप जानते हैं किसके सामने बात कर रहे हैं ?” अफसरने एकदम रोबमें फूलकर और कुरसीपर तनकर मेज़पर हाथ पटकते हुए कहा ।

“जी, ज्ञात है, अपने एक ऐसे असम्य सेवकसे बात कर रहा हूँ जो प्यासके मारे मरते हुए अपने स्वामीकी बीस मिनिटसे अवहेलना कर रहा है ।.....घबराइए मत.....आपमें और आपके चपरासीमें वह शक्ति नहीं कि हमें यहाँसे बाहर कर दे.....अतः आप शान्तिसे कुरसीपर बैठे रहें और अगर कुछ करना ही चाहते हैं तो एक लोटा साफ़ पानी मँगा दें । शायद

आप ही एकदम नहीं जानते हैं कि आप किसके सामने बात कर रहे हैं ?”

बी० डी० ओ० साहब फिर कुछ कहना चाहते थे कि दूसरे आदमीने उन्हें रोक दिया और बोला, “बिना बताये हम लोग क्या जानते हैं कि सरकार कौन हैं ? कृपा करके.....।”

“तो सुनो,....लेकिन पहले पानी और एक कुरसी मंगाओ ।”

मैंने रामबाबूकी बड़ी प्रशंसा की कि खूब झाड़ बाँधा । उन्होंने आगे बताया कि पानी मँगाया गया । कुरसी आयी । पान आया । बी० डी० ओ० साहब यद्यपि अभी भी एकदम खिंचे हुए-से थे, परन्तु थोड़ा कुतूहल-सा उत्पन्न हो गया था अतः दबे-दबे-से थे । मैंने कहा, “देखिए बी० डी० ओ० साहब ! दुनियामें बहुत-सी बातें हैं कि लोग उनको नहीं मानते हैं लेकिन इतनेसे ही वे बातें झूठी नहीं कही जा सकती ।.....मैं जबसे आया हूँ आपको पढ़ रहा हूँ । आपके चेहरेकी एक-एक रेखाको पढ़ रहा हूँ ।.....अहा हा, क्या कुदरतका खेल है !.....जो बात मैं देख रहा हूँ, समझ रहा हूँ, वह आपसे न देखी जा सकती है और न समझी जा सकती है । क्या विश्वास करेंगे आप मेरे कथनपर ?”

रामबाबूने बताया कि उनके इतना कहते-कहते वे दोनों सज्जन एक प्रकारसे प्रभावित हो गये और बोले, “क्यों नहीं, आप कहिए तो । आप तो एकदम गोलमोल न जाने क्या-क्या कह रहे हैं ।”

“घबराइए नहीं । मैं यहाँ आया था तो कुछ दूसरी बात करनेके लिए परन्तु यह नयी चीज़ सामने आ गयी । अब मैं और कुछ न कहकर बी० डी० ओ० साहबके पूर्व जन्मकी कहानी बताऊँगा ।”

रामबाबूका उक्त कथन सुनकर मैं हँस पड़ा, “आप ज्योतिषी कबसे हो गये ? वाह खूब पढ़ाया उन लोगोंको ! फिर क्या बताया ?”

रामबाबूने कहा, “मैंने एक कहानी सुनायी । आजसे तीस-चालीस वर्ष पूर्व काशी-स्थित अस्सी घाटपर एक महात्मा थे । उन्हें अनेक सिद्धियाँ प्राप्त थीं । भूत, भविष्य और वर्तमान सब उनके लिए हस्तामलकवत् था ।

वे प्रातःकाल उठकर किनारे-किनारे बहुत दूर तक चले जाते थे । एक दिन वे टहल रहे थे तो अचानक उनकी दृष्टि एक गदहेपर गयी जो अरहरके खेतमें चर रहा था । उसकी तीन टाँगें बँधी हुई थीं । फुर्र.....फुर्र.....करता गरदन झुकाये वह खेतमें घास-फूस और तिनके चर रहा था । अरहरकी पत्तियों और फलियोंको वह सूँघता भी नहीं था । वह दूर नहीं जा सकता था । एक सीमित क्षेत्रमें ही चर सकता था क्योंकि तीनों टाँगें बँधी हुई थीं । इससे धोबीको बहुत लाभ होता था, । जब चाहता उसे पकड़ ले जाता । उसे बहुत ढूँढना नहीं पड़ता ।

“ऋषिने गदहेकी दिनचर्याको दिव्य दृष्टिसे देखा । धोबीके घरसे घाट तक जाने कितनी बार लादी लाद-लादकर ले जाता है । जितना भी लाद दो कुछ बोलनेका नहीं । खट्टर...खट्टर...खट्टर...लिये चला जाता है । अगर बदमाशी करता है तो डण्डे भी खूब खाता है । कितना सहिष्णु है ! न मारका असर, न बोझका !

“सारा कार्य करके तीन टाँग बाँधकर छोड़ दिया । न चारा देना है, न घरमें बाँधनेकी चिन्ता है । रास्तेमें, पेड़के नीचे, झाड़ीमें जहाँ कहीं भी गदहा पड़ रहता । उसके लिए न रातकी परेशानी, न दिनकी । न जाड़ेकी न गरमीकी ।

“ऋषिका इसके साथ ही उसकी मस्तीपर ध्यान गया । ऐसा सर्वहारा, शोषित, सन्तोषी बेचारा और गरीब होते हुए भी कितना उत्साह है इसके भीतर ! बोलता है तो अनहद नाद उठता-सा प्रतीत होने लगता है । चौकड़ी लगाता है तो शास्त्रार्थके तर्क फीके हो जाते हैं ।

“ऋषिको उसपर बड़ी दया आयी, उन्होंने मन-ही-मन कहा, ‘ओ जीव, मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हुआ । जाओ, अगले जन्ममें तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो जायेंगे ! तुम लादी ढोते-ढोते मर गये : तब तुम्हें स्वयं ढोनेके लिए उत्तमोत्तम वाहन मिलेंगे । चक्के-खानेके लिए मुक्त क्षेत्र होगा । तुमने मानवताकी बड़ी सेवा की, अब जाओ मेवा चखो !’ यह कहकर ऋषिने

एक चुल्लू गंगाजल लेकर उस जीवपर छिड़क दिया और.....।

“इतना सुनते ही बी० डी० ओ० साहब भड़क उठे, ‘खबरदार जो आगे एक शब्द भी निकाला ! मैं गदहा हूँ ?’”

रामबाबूने कहा कि मैं वैसे ही शान्त रहा और बोला, “जी नहीं । आप तो अब पूरे साढ़े-तीन हाथके विशाल आदमी हैं । मैं तो सिर्फ़ यही कह रहा था कि पूर्वजन्ममें आप क्या थे और, क्षमा करेंगे, उसके कुछ-कुछ संस्कार अब भी मौजूद हैं ।”

मैं अब जोरसे हँस पड़ा और रामबाबूने भी मेरी हँसीमें योग दिया । यह जानकर और प्रसन्नता हुई कि पहली अप्रैल है ।



नयी कथा

कल रातकी बात है ।

“एक राजा था....”

“हूँ ।”

“उसकी एक रानी थी....”

“हूँ ।”

“एक समय ऐसा आया कि....”

“बस करो । हमने ऐसी कहानियाँ बहुत-सी सुनी हैं । कोई नये ज़मानेकी नयी कहानी हमें तुम आज सुनाओ बाबा !”

झूमकलालका चौदहवर्षीय पुत्र मनोहर मचल उठा ।

खा-पीकर सब लोग सोनेकी तैयारी कर रहे थे । मैं अपने दरवाजेपर लेटे-लेटे बाप-बेटेके कथा-प्रसंगका सदाकी भाँति आज भी रसास्वादन कर रहा था ।

“अच्छा, तो नये ज़मानेकी कहानी सुनोगे ?”

“हाँ, नयी कथा ।”

“मगर लम्बी है ।”

“तो इससे क्या, रातभर जागूँगा ।”

“अच्छा तो सुनो—”

हुँकारो चलती रही और झूमकलालने कहानी सुनायी—

“बस पौ बारह है ?”

मणि बाबू उछल पड़े ।

“.....और पीजिए, और पीजिए । यह ‘स्पेशल ऑरेंज’ की बोतल भला देहातमें कहाँ दर्शनको मिले ? बड़ी मेहनतसे मँगाया है । हाँ, तो

क्या सचमुच हमारे विरोधी हताश होते जा रहे हैं ?”

“और क्या ? मालिक, नाम बड़ा है। वह चक्र-सुदर्शनकी भाँति आगे-आगे चलता है। हम लोग तो पिछड़ जाते हैं। हँ हँ हँ हँ.....।”

“वाह ! वाह !! यह तो खूब बताया भाई ! खैर, उत्तरका नक्शा क्या है ?”

हँसीमें सहयोग देते हुए रत्नमुमेर मणिने कहा। पीनेवाला तन्मय होकर फोंकीसे उस लाल रंगकी वस्तुको गटागट गलेसे उतार रहा था। मणिजीकी बातें अनसुनी-सी रह गयीं।

“बड़ी बेहतरनी चीज है ! एक बोतल और,....मगर खोलकर। ऐसा अमृत तो मैंने कभी देखा भी नहीं था। जीवनमें। धन्य है मणिजी, यह आपका ही प्रसाद है !”

उसने हाथ जोड़कर दाँत निपोर दिये।

ये रत्नमुमेर मणि सरायदेईके प्रमुख व्यक्ति है। कानपुरमें कोठी है। चमड़ेका कारबार होता है। युद्धकालमें करोड़ों रुपये पैदा किये हैं। कुछ दिनोंसे देहातके गन्दे वातावरणसे ऊबकर शहरमें अड्डा जमाया था, पर ज्यों-ज्यों एलेक्शन निकट आता जा रहा है उसी गन्दगीपर सदलबल मक्खियोंकी भाँति भिनभिनाने लगे हैं। प्रजातन्त्रके चौराहेपर भीड़-भाड़ देखकर इनके मुँहमें भी पानी भर आया और इस बहते दरियामें हाथ साफ़ करनेका संकल्प कर लिया। जबसे गाँवमें पदार्पण हुआ है, रंग आ गया है। दरियादिल आदमी हैं। रुपये-पैसेको हाथका मैल समझते हैं। गाँवके भलेमानुस मँडराते रहते हैं। ऐसे दुमदार आदमीके पीछे लोग लगे रहते हैं, यह अचरजकी बात नहीं। दिन-भर रेडियो खुला रहता है। खाझा मार्का टोपीवाले कुछ आते हैं, कुछ जाते हैं। भीतर कहीं तर माल कट रहा है। कहीं दूधिया छन रही है। कहीं लम्बे घुँए-का गड्डा है। कहीं ताश-चौसरका रंग है। कथावार्ता भी है और गुप्त बातें भी हैं। चौपालकी बायीं ओर पत्थरकी मोटी पटियापर आसन जमा

कर शाम-सवेरे पण्डितजी ऊर्ध्वमुख दृष्टिगोचर होते हैं। एक पूरी प्रदर्शनी ही सजी है भीतर। इन सबके पीछे लगा है बोटका भूत। ये सब मकड़जाल है, बुझानेके लिए—भोली-भाली जनताके लिए। यह सब लासा है, किसी प्रकार एक बार उल्लू फँसा लेने-भरके लिए। सुनते हैं, हज़ारोंपर पानी फिर गया, कानपुरसे लखनऊकी धूल छानते और काँग्रेस-टिकट मिलनेकी मधुर आशामें। देश-सेवाकी भावना ही तो ठहरी ! टिकट न मिला तो क्या ? स्वतन्त्र उम्मीदवारकी हैसियतसे खड़े हुए। आखिर पार्टी ही सुयोग्य व्यक्तियोंकी कसौटी तो है नहीं ! बल्कि उसमें तो स्वतन्त्र विचारका गला घोट देना पड़ता है। क्रदम-क्रदमपर पार्टीके दृष्टिकोणका ध्यान रखना पड़ता है। जीती मक्खी निगल जाना पड़ता है। न्यायका दिवाला निकल जाता है। गलत आदमियोंका समर्थन करना पड़ता है। अनेकों अवगुण हैं पार्टीमें। न मिला किसी पार्टीका टिकट तो कौन अयोध्या सूनी हो गयी ! स्वतन्त्र युगमें स्वतन्त्र व्यक्ति ही सम्मान्य हैं। वे सबकी आलोचना कर सकते हैं। सत्यासत्यका विचार कर सकते हैं। हंसकी भाँति दूधका दूध और पानीका पानी कर सकते हैं। ये विचार मणिजीको बड़ी शान्ति देते हैं।

यह आदमी जो मणिजीके पास बैठकर लम्बी-चौड़ी हाँक रहा है और 'स्पेशल ऑरेंज'की बोटलपर-बोटल खाली कर रहा है, उनके सराय-देईके पाँच यारोंमें-से एक सुक्खू है। इसके बाप दिलराम और मणिके पिता ज्योतिनिर्मलप्रसाद एक साथ कलकत्ताकी मटियाबुर्ज स्थित केशवराम काँटन मिलमें काम करनेके लिए गाँवकी एक विधवा हलवाईसे बलात् रूपया ँँठकर भागे थे। योग्य पिताके सुयोग्य पुत्रोंने पुरतनी दोस्तीमें कोई कोर-कसर न आने दी। मगर मणिकी अबाध रूपसे बढ़ती हुई सम्पत्ति और सुक्खूके सिरसे उठते हुए लक्ष्मीके सायेने उन्हें विवश कर दिया अलगावके लिए। इधर जबसे एलेक्शन आया है पुराना प्रेम जाग उठा है। मालिककी ड्योढ़ीपर कई सलामी दिनमें वह

दागता है। उसे करना क्या है? कोई काम नहीं। सबेरेसे काफ़ी दिन चढ़े तक कउड़पर गप हाँकना। दोपहर तक नहाना, खाना और इसके पश्चात् गाँवमें फेरी लगाना और मवेशी बझाना। केशवराम काँटन मिलकी जबतक कमायी थी, चैनकी वंशी बजी। पिताकी मृत्युके बाद जब नमक-तेल सहेजना पड़ा तब कुछ मनुसाई करनेकी ठानी। हर्-फिटकरी बिना रंग चोखा आये कैसे? बस, एकदम 'ओझा' ही हो गये। किसी स्त्रीकी गोद सूनी है, बस बायें हाथका खेल है। छू-मन्तरमें आँचल खुल गया और दूध-पूतका सुख मिला। किसीकी दिन-दशा बिगड़ गयी है, किसीके घर भूत-प्रेतकी लीलाएँ होती हैं, या और ऐसे हो अन्यान्य विकट काम जब आते हैं, लोग सुक्खू महाराजको याद करने लगे हैं, यों दिन-भर ये मटरगश्ती करते हैं, रातमें इनका व्यवसाय सर-गरमीके साथ चलता है। बड़े-बड़े गढ़ फतह किये। दुर्निवार भूत उतारे। अब मणि महोदयके वोटवाले भूतको फाँसनेके लिए राई-कइयाँ लेकर कमर कस कूद पड़े हैं।

दूसरे मित्र हैं लहरी साहब। इनका पूरा नाम कम लोग जानते हैं। उक्त नाम ही विख्यात है। सरायदेईके पश्चिमवाली पानकी दूकानपर दिनभर बैठे सड़कसे आने-जानेवालोंका समाचार पूछा करते हैं अथवा वंशो बजाया करते हैं। पान बेचनेवाली स्त्री भी मुक्तहस्त परिचित राहगीरों एवं ग्राहकोंको 'जियो-जागो बाबूजी!' का आशीर्वाद बाँटा करती है। इस स्त्रीका नाम 'सुराजी' है। सरायदेईमें जिस दिन गाँधीजी आये थे, इसका जन्म हुआ। इसीलिए इसका 'सुराजी' नाम रखा गया। यह गाँवपर ही रह गयी। बड़ी बदनाम स्त्री है। गालियोंमें इसकी दूकानका उल्लेख किया जाता है। इसका रंग गोरा है पर बहुत ही अस्वाभाविक लगता है। मालूम होता है, ऊपरसे पोत दिया गया है।

लहरीका घर गाँवमें है। वह अपनेको जातिका राजपूत बताता है। उसकी जीविकाका साधन क्या है, यह ठीक बताया नहीं जा सकता।

मणिबाबूके लिए दो महीने तक दूकान सूनी कर देनेके लिए इसने भी बात दे दी है ।

मणिबाबूके मित्रोंमें आनन्द बाबू बड़े ही मस्त और रगीन तबीयतके जीव हैं । लीजिए, इनका परिचय । पूरा नाम है कृष्णानन्द । साक्षात् आनन्दकी मूर्ति ही है । साथ रहनेपर दुःख-दरिद्र पास नहीं फटकता । गाँवके रईस अपर्णेशदत्त सिनहाके एकलौते पुत्र हैं । ठाट-बाटसे सजे-सजाये रहते हैं । घर-गृहस्थीसे मतलब नहीं । दिनभर हारमोनियमका स्वर खुला रहता है । रागिनी थिरकती रहती है । लुब्ध भ्रमरकी भाँति संगीत पर मँडराया करते हैं । नामी आदमी है । इधर-उधर चार यार लगे रहते हैं । मणिजीसे दाँत काटी रोटी खाते हैं ।

अन्य मित्रोंके संक्षिप्त परिचय बिना कहानी अधूरी हो जानेका डर है । मिस्टर शेर अली जागिरा एक पेन्शनयाप्तता लेफ़्टिनेण्ट हैं । बसरा, बसादाद, रंगून, जावा, न्यूजीलैण्ड और फ्रांस सब हो आये हैं । कहते हैं, विक्टोरिया क्रास इन्हें मिलते-मिलते नहीं मिला । बड़ी आज़ाद तबीयतके आदमी है । ताश-शतरंजके तो मास्टर ही समझिए । अभी भी फ़ौजी पोशाकमे रहते हैं । लम्बे-चौड़े रोबदार, ऐसे आदमीकी गाँवमे आवभगत होती है । नशाका शौक है और कुछ नये शिष्य भी सूँघनेके फ़िराकमे घेरे रहते हैं । मणिजीके साथ एलेक्शनमें नया रंग आ गया ।

अब बचा बनइला । इसका परिचय क्या ! हाथी तक पचा डाले और डकार न ले । देहातका शनीचर कहा जाता है । जिसपर दृष्टि पड़ जाये, सर्वनाश निश्चित समझा जाता है । लोग थर-थर काँपते हैं । पूरा दल है । हाथी-सा शरीर, भूरी आँखें और उलझी-एँठी सफ़ेद मूँछें । दोनों समय धूल लगाता है । उसके लिए भगवान्को पा जानेके अतिरिक्त कुछ भी असम्भव नहीं है । उसका भी आसन बड़ी कोठीमें आ गया है ।

गाँवके मुखिया श्री हरसुखनारायण चौधरी हैं । इनसे मणिजीका पुस्तैनी रिश्ता है । कहते हैं कि बदमलीमें गोरखपुरकी ओरसे भागकर

मणिजीके पुरखे आय ता इनके डीहपर उन्हें शरण मिली । इतना ही नहीं, जीत्रिकाके लिए दस बीघे भूमि भी दी चौधरीने । तबसे राजा-प्रजाकी भाँति रिश्ता चला आता है । अब तो रत्नसुमेर मणिके अच्छे दिन हैं । माटी छू देते हैं तो सोना हो जाती है । पिछला इतिहास कुछ अच्छा नहीं है । स्वयं ज्योतिनिर्मलप्रसाद दाने-दानेको मुहताज थे । गाँजा-भाँगमें दो बीघा फूँक चुके थे । किसी प्रकार गरीबीसे लड़ न सके तो दिलरामके साथ कलकत्ता भाग गये । वहाँ भाग्यका सितारा चमका और चार पैसे पैदा किये । बड़ा साहब काफ़ी मानता था । वहीं मणिका जन्म भी हुआ । मणि साहबकी स्त्रीसे काफ़ी हिलमिल गया । उसे वह अपने बच्चेकी भाँति मानने लगी । बड़े होनेपर मणिसे साहबको एक मात्र पुत्री ऊषासे प्रेम हो गया और दोनों एक दिन सारो सम्पत्ति लेकर चम्पत हो गये । शोकमें ज्योतिनिर्मलप्रसादने अपनी इहलीला समाप्त कर दी । इधर मणि-दम्पतीने आकर कानपुरमें आसन जमाया । वहीं छोटे-मोटे व्यापारसे उन्नति करते-करते पूरे कारबारी हो गये । लक्ष्मी घरमें पैर तोड़कर बैठ गयी । इतनेपर भी हरसुखनारायण चौधरीका काफ़ी सम्मान करते हैं और सालमें एक जोड़ा अपने फ़र्मका जूता रेशमी रूमालमें लपेटकर भेंट करते हैं । एलेक्शन का मैदान मारनेके लिए चौधरीका भी शुभाशीर्वाद प्राप्त है ।

पहले मणिजीका विचार था कि कानपुरके ही किसी क्षेत्रसे चुनावमें उतरूँ, परन्तु सन् १९४२ के पश्चात् जिस गतिसे कालेबाज़ारकी कृपासे उनका कोष बढ़ा उसी गतिसे जनतामें उनके कुकृत्योंके प्रति अपवाद, असन्तोष और तीव्र घृणाकी लहर बढ़ी । इसे सोचकर मणिजीका कलेजा सहम गया और दामन समेटकर देहातकी ओर लपके । देहाती उल्लू क्या जानते हैं ? उलटा-सीधा जो बताया, सब सही । पूरा दल, कार, टैक्सी, जीप, लाउडस्पीकर, रेडियो, तड़क-भड़कका पूरा ठाट कोठीमें आकर ठट गया । सजावट और फ़र्नीचरके मनोमुग्धकारी जालमें ग्रामीणोंका मन फँसने लगा । एक दिन सुखू, लहरी, आनन्द, जागिरा, बनइला, हरसुख-

नारायण चौधरो, सुराजी और ऊषाकी एक स्पेशल मीटिंग हुई और एलेक्शन फ़तह करनेके लिए सुदृढ़ व्यूहके निर्माणपर विचार-विमर्श हुआ। हरे मुरेठे, नीली ऐनक, काली अचकन और सफ़ेद चूड़ीदार पाजामेमें सजे रत्नसुमेर मणि रत्नोंके बीच सुमेरकी भाँति विद्यमान थे। घनी दाढ़ी, लाल आँखें, चारखानेदार कम्बलमें लिपटा सारा शरीर—सुकू सचमुच भूतोंका सरदार ज्ञात होता। पानकी अत्यधिक लालिमा कालिमामें परिवर्तित होकर दाँतोंपर विराजमान, उलझे लम्बे बाल, बटन-खुली कमीज, हाथमें वंशी : लहरी साहब कभी सुराजीकी ओर देखते हैं कभी ऊषाकी ओर। नीला तहमद, माघमें मलमलका कुरता, इतमीनानसे सँवारे गये बाल आनन्दको पूरा लखनौआ बना देते हैं। अपने खाकी ज़ोनके फुल सूटमें डटा, तना हुआ जागिरा आज सचमुच लेफ़्टिनेण्ट-सा लगता है। मोटेका धूलि-धूसरित पंजाबी कुरता पहने मोटे-मोटे हाथ-पैरवाला बनइला अपनी शान्तिसे यह प्रकट करता है कि उसमें दम और पानी है। चौधरी साहब छड़ी लिये, रेशमी शॉलमें लिपटे ओठधे हुए कभी-कभी खाँसकर अपनी बुजुर्गीका विज्ञापन कर देते हैं। सुराजी और ऊषाकी जोड़ी पास होकर भी दूर-दूर है।

सबने अपने-अपने कार्यक्रमकी विस्तृत रिपोर्ट दी। अपने प्रभावकी व्याख्या की। अपने कार्यक्षेत्रका निर्धारण किया। किसके लिए क्या-क्या चाहिए, उस दिन विस्तारपूर्वक सोचा-विचारा गया। ऐसे सुदृढ़ घेरेके निर्माणकी योजना बनी कि एक वोट भी बहककर विरोधीके बक्समें न पड़े। सुकूको कौन नहीं जानता है? किससे उसका साबिक़ा नहीं है? औरतोंकी तो एक पूरी भीड़ उसके पीछे-पीछे चलनेको तैयार है। उसका कहना कौन नहीं मानेगा? दस भूत हाँक दे तो बड़ों-बड़ोंकी अकड़ चाट जाये। लहरीके छिपे मित्र क्या उसका कहना टाल देंगे? देहात छान डालेगा। हवा बना देगा। आनन्द बाबूका स्वर मनुष्य तो क्या पत्थरके हृदयको भी छू दे तो वह गलकर बह उठे। वोट तो क्या लोग प्राण देनेके

लिए भी प्रस्तुत हो जायेंगे। जागिरा मुसलमानोंमें और सुराजी स्त्रियोंमें अपने प्रभावका विस्तार कर कामयाबीको आसमानमें-से खींच लायेगी। सरदारी और भाई-चारेसे वोट माँगनेके लिए चौधरी हैं। राजनीतिकी बातें स्वयं मणिजी सँभालेंगे। कोई किसी प्रकार नहीं माना तो आखिरी हथियार बनइला है। उसे छोड़ दिया जाये तो २४ घण्टेमें दिग्विजय करके रख दे। अन्तमें मणिजीने सबका स्वागत किया। सुनहरे लिफाफेमें सबको नक़द भेंट दी। सबने जान लड़ा देनेकी प्रतिज्ञा की और यह राजनैतिक महफ़िल बरखास्त हुई।

दूसरे दिन ५ ताँगे गाँवके विविध मार्गोंपर निकलते देखे गये। मणिजी की उदारता, देश-भक्ति, वीरता, विद्वत्ता और दानशीलताकी कहानियाँ लोगोंकी जबानोंपर चढ़ीं पुनः तेज़ीसे हवामें उड़ने लगीं।

इतनी कथा सुनाकर झूमकलालने कहा कि “बेटा, है न यह नयी कथा?”

“हाँ पिताजी, मगर आगे क्या हुआ?”

“देखो, रात अधिक हो गयी। अब कल कहेंगे। क्या हर्ज है?”

“नहीं पिताजी, आज ही कहिए। बड़ी अच्छी कहानी है।”

“अच्छा, तो एक चिलम तमाखू पिलाओ।”

मनोहरने फुरतीसे उठकर चिलम चढ़ायी। बूढ़े झूमकलालने चारपाई-पर बैठकर बड़े इतमीनानसे हुक्केको हाथमें लिया।

पुड़.....पुड़.....पुड़.....पुड़.....

“.....तो आगेकी कहानी सुनोगे?”

“हाँ, बाबा।”

“मगर पीछेकी कहानी ठीकसे सुने हो?”

“हाँ बाबा।”

“कहीं बीचमें झपकी तो नहीं आयी?”

“विश्वास न हो तो पूछ लो बाबा।”

“अच्छा बताओ कहानीका ‘मुख पात’ कौन है ?”

“कहानीका ‘मुख पात’ सरायदेईका बाशिन्दा, कानपुरका पूँजीपति रत्नसुमेर मणि है ।”

“ठीक ।.....उसकी क्या इच्छा है ?”

“वह किसी प्रकार गाँवको उल्लू फँसाकर वोटमें जीतना चाहता है और इसके लिए पानीकी तरह रुपया बहा रहा है ।”

“शाबाश !.....उसके कैसे-कैसे साथी हैं ?”

“सब चोर, लफंगे और आवारे उसके सहायक हैं । सुखुआ ‘भूतधरवा’ है । लहरी आवारा है । सुराजो बदनाम औरत है । आनन्दबाबू गवैया है । जागिरा एक बेकार पेन्शनयाफ्रता है । बनइला चोर और हरसुख-नारायण चौधरी पुराने ढंगके सरदार हैं ।”

“बहुत ठीक, बहुत ठीक । अच्छा हमारी कथाका पिछला भाग कहाँतक पहुँचा है ?”

“अभी तो बाबा, सबकी मीटिंग हुई है और सबने अपना-अपना गुन प्रकट किया है । जीतनेका नक्शा बना है । यारोंकी थैली गरम हुई है और सभी इधर-उधर ताँगेपर मणिजीका जय-जयकार करते प्रचारके लिए निकले हैं ।”

“अच्छा, तो अब आगेकी कथा सुनो ।”

“हूँ ।”

झूमकलालने हुक्केको चारपाईके पायेसे टिका दिया और लेटते हुए कथाको आगे बढ़ाया ।

देहात-भरमें हल्ला हो गया कि सरायदेईके रईस रत्नसुमेर मणि वोटमें उठे हैं । जिसके कानमें जो बात पड़ती है वह उसे ही ले दौड़ता है । कोई कहता है कि यह तो लखपती हैं । सिर्फ़ जनताकी भलाईके लिए वोट माँगकर लड़ाई करता है । कारबार इतना बड़ा है कि इस वोट लड़नेमें लाखों-करोड़ोंका घाटा लगेगा । कलयुगमें भला कौन जनताकी भलाईके

लिए त्याग करेगा ?

दूसरा कहता, “अरे यारो, यह सब बड़े भेदकी बात है। लखपती है तो जरूर मगर उससे भी कोई भारी लाभ है तभी इतना जोर लगा रहा है और रुपया फूँक रहा है। सजग ! सजग ! !”

जितने मुँह उतनी बातें।

कान खड़े और आँखें विस्फारित।

दूसरे दिन सुक्खू शामकी मिला। मणिजीने लपककर हाथ मिलाया और कुरसी सामने खिसका दी।

“अरे कोई है ?”

मणिजीने आवाज़ लगायी। नौकर इस पुकारका आशय समझता है। टेबलपर बोतल आ गयी। फस्स् ! खोलकर मणिजीने एक गिलासमे ढालकर बढ़ा दिया। सुखुआ पुरानी रीतिसे गटकने लगा। गिलास सेकण्डोंमें खाली हो गया और वह गला साफ़ करके बोला,

“उत्तरका नक्शा क्या पूछना है, सरकार ! बनइलाने सब ठीक कर दिया है। रात-भर मेहनत करता है। सब लोग आपको वोट देंगे। बस एक बार तकलीफ़ करनेकी जरूरत है। लोग आँखें जुड़ाना चाहते हैं। सच कहते हैं मालिक, लोग कृतार्थ हो जायेंगे। कोई कितना हू विरोधी क्यों न हो, एक बार हाथ फेरा नहीं कि चेला हुआ। काँग्रेसियोंको तो लोग दूरसे ही सलाम करते हैं। आपको स्वतन्त्र खड़ा हुआ सुनकर लोग फूले नहीं समाते हैं। उन्हें मुँह-माँगी मुराद मिल गयी है। बस, उनके नेता आप हैं और उनके वोट आपके हैं।”

“अरे भाई, कुछ ठोस बातें बताओ। क्या-क्या हो रहा है ? और रही मेरे चलनेकी बात, सो थोड़ा और हवा बन लेने दो तब चला जायेगा। समझे ?”

“काफ़ी हवा बन गयी है सरकार !”

“कैसे ? कुछ बतलाओ भी ?”

“बतायें क्या सरकार ! हवा आखिर हवा ही तो है, दिखायी नहीं पड़ती । मगर इतनी बात तो मैं रेखा खींचकर कह रहा हूँ कि अबकी यह बोट आपके पल्ले रहा । आज आठ दिनसे हम लोग बोटरोँके घरकी खाक छान रहे हैं । दीन-दुनिया समझा रहे हैं । संगी-साथियोंको ठोक-बजाकर ठीक कर रहे हैं । गत वर्ष एक स्त्रीको एक भूतके चक्करमें नाकों चना चबाना पड़ा था । बेचारीको नींद हराम थी । उधर वह पूरा बावन वीर शैतान था । किसी तरह मुठ्ठीमें किया । उस स्त्रीने काफ़ी मेरा हाथ मजबूत किया है । स्त्रियोंमें तो उसकी बातें प्रमाण मानी जाती हैं । पोलिंग स्टेशनपर रंग देखिएगा । गाँव-गाँवमें ऐसे मेरे दलके-दल बिखरे हैं । ऐसे ही और भी संगी हवा बनानेमें एड़ीका पसीना चोटी कर रहे हैं । आज सब आयें तो चलनेके बारेमें तय कर लें ।”

अपने प्रचारकोंका बढ़ावा पाकर मणिने गाँवोंकी ओर चलनेकी ठानी । उन्हें आत्मसम्मानका नशा विभोर करने लगा । कानपुरके जीवन-ने उन्हें समाजसे दूर, ऐकान्तिक और अपने प्रति अविश्वासी बना दिया था । अपने कलंक और काले कारनामे जनतामें जानेसे उन्हें भयभीत करते थे । मित्रोंको बातें सुनकर दिलको ठण्डक मिली और शुभ मुहूर्तमें अपने चुनाव-प्रचारका श्रीगणेश करनेके लिए कोठीके बाहर पाँव रखा ।

आगे-आगे बैण्ड बाजा उसके पीछे दस हाथी, जिनपर बने-ठने सवार । गलेमें सुगन्धित फूलोंका गजरा डाले आनन्द एक हाथीपर अकेले । एक बड़ी टैक्सीमें बालकोंका एक विशाल झुण्ड मणिजीका जय-जयकार करता । जीपमें लेफ्टिनेण्ट जागिरा, बनइला और कुछ और मुस्टण्डे जवान । पीछे दो चमचमाती कारें । एकमें चौधरी और उनके साथी । एकमें ऊषा तथा मणि महोदय । उनके पीछे १५ तांगे जिनपर बैठनेके लिए हम-तुम करती एक भीड़ । इनके पीछे २० बैलगाड़ियाँ आदमियोंसे भरी, हल्ले-गुल्लेसे मुखरित । बीचकी जीपसे ध्वनि-विस्तारक यन्त्रपर निकलती हुई मधुर संगीतकी लहरी, दिशाओंमें जुलूसकी शान बिखेरती हुई । सबसे

पीछे कुतूहलमें डूबा हुआ जन-समूह जिसने ऐसा दृश्य स्वप्नमेंभी कभी नहीं देखा ।

गोसाईगंज जाकर यह जुलूस सभा बन गया । भाषण करते समय मणिजीने अनुभव किया कि लोग एक हलकी तीखी मुसकराहटमें उन्हें देखते हैं, साथियोंको खुदकाते हैं और आँखों-आँखोंमें ही कुछ मौन वार्ता भी हो जाती है । मणिजीसे छिपा न रहा कि उनके भाषणका प्रभाव ठीक नहीं पड़ रहा है । उन्हें जनतापर ही क्रोध आ गया । क्या समझते हैं ये चार पैसेके कमीने आदमी उनको ? अभी चाहें तो इन्हें बाज़ारमें खड़ा करा करके खरीद लें । और उसी जोशमें बोले,

“सज्जनो, जो यह समझते हैं कि हम पदलोलुप हैं वे गलतीपर हैं । कांग्रेस बेईमान तो खुद है, ब्लैकमार्केट तो स्वयं कराती है और दूसरोंपर दोष लगाती है । उसे मज़ा चखाना है । उसने मेरे ऊपर लांछन लगाया कि यह ब्लैकमार्केट करता है और टिकट नहीं दिया । (तालीकी गड़गड़ाहट) मुझे उसे दिखा देना है कि तुमने टिकट नहीं दिया तो क्या, हम तुम्हारे बगलगीर होनेकी ताकत रखते हैं । बस, जवाहरलालकी बगलमें एक दिन बैठकर सलाम करेंगे और दूसरे दिन इस्तीफ़ा । अब आप लोग समझ गये होंगे कि हम पदलोलुप नहीं हैं । (खूब-खूबकी ध्वनि)”

एक व्यक्तिले खड़े होकर प्रश्न किया, “जब आप सेवाकी भावनासे न जाकर केवल कांग्रेसको अपना ज़ोम दिखाने और जवाहरलालकी बगलमें बैठने-भरके लिए जाना चाहते हैं तो आपको वोट देकर कौन अपने पैरमें कुल्हाड़ी मारेगा ? इससे तो बेहतर होगा कि अपना वोट कुएँमें फेंक दें ।”

मणिजी ओठ चबाने और दाँत पीसने लगे । मुसाहिब लोग बगलें झाँकने लगे । किसीसे कुछ कहते नहीं बना । ‘प्रथमग्रासे मक्षिकापातः !’ मणिका जोश ठण्डा पड़ गया । दूसरे दिन बाहर निकलनेकी हिम्मत न पड़ी । साथियोंने समझाया कि वह कोई सिरफिरा मनचला लौंडा रहा, उसे ठीक कर दिया जायेगा । आपका नक्शआ सोलह आना दुस्त है ।

दूसरे दिन एक पढ़े-लिखे युवकसे नोकझोंक हो गयी। मणिजीने बड़े उत्साहसे कहा कि—

“कांग्रेस भ्रष्ट हो गयी। उसके वादे गलत निकले।”

इसपर युवकने मणिजीका चुनाव-घोषणापत्र मांगा। अब ये बगलें झाँकने लगे और बोले, “हम तो स्वतन्त्र खड़े हैं। हमारा कैसा चुनाव-घोषणापत्र?”

“तो आपका क्या विश्वास? उसने तो वादा किया और वह किसी कारणवश पूरा नहीं हुआ। यह हमें ज्ञात है। आपका क्या विश्वास? आप तो कुछ कहते ही नहीं? आपका तो कोई वादा ही नहीं! आपके काम करने, वादा पूर्ण करने और न करनेका क्या प्रमाण और मापदण्ड होगा? आप तो जनताको सरासर धोखा दे रहे हैं?” युवकने कहा।

मणिजीकी सिट्टी-पिट्टी भूल गयी। वे ओठ चाटने लगे। बनइला जल-भुन रहा था। उसने गरजकर कहा, “हम पत्तर-सत्तर कुछ नहीं जानते। आप लोग बाबू साहबको वोट दें। इसीमें कल्याण है। हम कहते हैं। कोई लाख कोससे आग बुझाने नहीं आयेगा! कुछ नहीं तो घर-पड़ोसके हैं। फिर आदमीको भी देखना है तो!”

“हाँ, भाई हाँ! कितना हूँ तो अपना है। घरमे दिया जलाकर मसजिद में जलाते हैं।” चौधरी हरसुखनारायणने कहा।

“दूसरी बात यह है कि और कोई उम्मीदवार आपकी भलाई नहीं कर सकता है। वोट लेकर लोग लखनऊको राह लेंगे। जलसा करेंगे। जश्न करनेमें परजाको भूल जायेंगे। ये भागकर कहाँ जायेंगे! इनका तो यहीं घर है। अरे भाई मेरे, जीतकी खुशीमें कहिए न किस पोखरेकी मरम्मत हो जाये, कौन कुआँ बन जाये, कौन स्कूल बन जाये। पैसा न है! ख्याली बात नहीं है।” लहरीने कहा।

“.....और मेरी मानो तो खुदा पाककी कसम, ऐसा नेकदिल इनसान मैंने ख्वाबमें भी नहीं देखा। हम तो मुसलमानोंसे कहेंगे कि ऐसे बेमिसाल

मौक्केको हाथसे न जाने दें । मणि बाबूके नाववाले निशानमें वोट डालें । उनका भी बेड़ा पार हो जायेगा । फिर खुदा हाफ़िज़ है ।” जागिराके मुँहसे निकला ।

इसके बाद बड़ी देर तक ठण्डी-ठण्डी बतकही चली । अन्तमें सबने एक स्वरसे मणिजीको वोट देनेका निश्चित वादा किया ।

एक दिन कानपुरसे मणिजीके कई मित्र अपनी-अपनी कार लेकर आये । कोठी एकदम अमला-फइला लोगोंसे भर गयी ।

“ओ माई डियर ‘मोनी’ ! एलेक्शनका क्या रंग है ?”

“सब ठोक है ।”

“...और मणिजी आवभगतमें एकदम एड़ीका पसीना चोटी करने लगे । मणिजीके मित्रोंने भी दौड़-धूप शुरू की । कोई गाँवमें दही खोजने दौड़ा, कोई भीतर पानी छिड़कवा रहा है, कोई टेबल-कुरसी साफ़ करा रहा है । बनइला यह पूछ रहा है कि साहब लोगोंका काम एक बकरेसे चल जायेगा या नहीं !

“हम लोग आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ? निःसंकोच कहिए । तीन दिनका समय हमारे पास है । अब आप जैसा प्रोग्राम बनायें ।” आगन्तु-कोंकी ओरसे कहा गया ।

“देखिए बन्धुओ ! यह देहात है । शहर और इस जगहमें काफ़ी अन्तर है । यहाँ आदमी नहीं मल्लू है ।....”

कहनेको तो मणिजी कह गये पर तुरत ही यह सोचकर कि उनके कई ग्रामीण सहायक जैसे सुखू, बनइला आदि मौजूद हैं, बहुत पछताये और पुनः उन लोगोंकी ओर देखकर सुधारके तौरपर बोले,

“यह तो हमारे इन मर्द मित्रोंकी दया है कि मैं इस जगह टिका हूँ, नहीं तो कभीका चुनावको सलाम कर चल दिया होता ।”

मणिजीके शहरी मित्रोंने इस विशेष स्थितिपर ध्यान नहीं दिया और एक धूप-चश्मेवाले सज्जन बोले,

“देखो मोनी, गँवारोंको अपनी ओर करनेका क्या तरीका है ? नम्बर एक—उन्हें इस प्रकार डाँटो कि सिट्टी-पिट्टी भूल जाये । जहाँ उनके मगजमें घुसा कि तुम हाकिमानी जातिके हो बस काम फ़तह ! नम्बर दो—यह कि धेली-रुपया सुँघाते जाओ । मल्लुओंको फाँसनेके लिए मुट्टी-भर चना काफ़ी होता है ।”

अपने देहातियोंकी यह हीन चित्रावली शायद बनइलाको नहीं रुची । अपनी जातिका अपमान बहुत दुस्सह होतू है । बोला,

“बाबूजी, माफ़ करबि । बात अपनेका दुरुस्त कहलीं । हमरोसे बक्सर टीसनपर एगो हाकिमानी मनई मिललन । सुबह क बखत रहे । कुली ना मिलत रहे । पासेमें हम सुत्तल रहलीं । मइल लुग्गा देखिके डपटलन, ‘अबे, कौन है ? उठ ! उठा ये बक्स । अभी साहबको रेल धरा ।’ हम उठ लीं । नीचेसे ऊपर ले देख लीं । माथा खउले लागल । बोललीं, ‘हम तोहार गरदनि मिमोरि देइबि । सोहदा कहींका ! एक मूकमें त दिनही तरई लउके लागी आ चलल बाड़न अरबी छाँटे ।’ बस अबका ? साहेब-राम अपनहीं बक्सा ठिठिरवले सरकलन । सेही हालि बा बाबूजी गँवारके निछाने घासि-भूसा बुझले गाड़ी आगा न सरकी ।”

मणिजीने देखा कि बात बिगड़ना चाहती है । अतः पुनः सँभालने और बातकी धाराको दूसरी ओर मोड़नेके लिए बोले,

“बस, बस । मेरे मुँहकी बात आपने छीन ली । अरे भाइयो ! ज़माना बदल गया । देहातमें भी काफ़ी रोशनी आ गयी । लोग समझदार हो गये । यही देखिए, यहाँ गाँवके मेरे सहायक कितने सच्चे नागरिक हैं । ओह ! अभी तो आप लोग सबका पूरा परिचय भी नहीं पाये हैं । आओ भाई ! आज सबको बुलाओ ।”

अन्तिम वाक्य आदेश था अपने आदमियोंके लिए । रातमें जमकर दावत हुई । पानीमेंसे केवड़ेकी गन्ध आती । कोठीके भीतरसे गुलाबकी गन्ध आती और आसमानसे जो चाँदनी झरकर आती वह अमृत भर-

कर लाती ।

“अच्छा, तो आपका नाम सुराजी है ?”

“जी ।”

“आप मोनी बाबूके एलेक्शनमें प्राण हैं ।”

मणिजीने और तारीफ़ की । बोले, “आपका कार्य स्त्रियोंमें काफ़ी प्रभावशाली ढंगसे हुआ है । आप अपना पूरा समय देती हैं ?”

काले चश्मेवाले युवकने हाथ मिलाया । “ओ ! आपका काम तो स्त्रियोंसे अधिक पुरुषोंमें प्रभावशाली ढंगसे हो सकता है । चलिए, कल मैं आपको अपनी कारमें ले चलूँगा ।”

गाँवमें रंग आ गया ।

पों.....पों.....पों.....पों.....

“मटर आइल । मटर आइल । रे....रे....!”

घूलके बादल उठे । कौतूहलकी आँधी आयी । कितने आदमियों और औरतों-बच्चोंने मोटर नहीं देखी थी । चीलका जन्म छूट गया ।.....और ऐसे-ऐसे भारी-भारी, देवताकी तरह सुन्दर-सुन्दर आदमी भी उन्होंने कहाँ देखें—

“अरे सरकार, वोट का ! माँगीं तऽप्राण हाजिर बा । चरनसे दुआर पबीत्तर भइल ।”

सक्सेना साहबने हैट उतारकर बालोंपर हाथ फेरते हुए कहा, “तुम मोनी बाबूको अपना वोट दो । तुम लोगोंका दिन फिर जायेगा । गाँव स्वर्ग हो जायेगा । सब लोग सुखी हो जाओगे ।”

“बाबूजी,” एक ग्रामीण वृद्धने कहा, “सुख-दुःख तो अपने-अपने करम-कमाईपर निर्भर है । हाँ वोट जिसको कहें, दे दिया जायेगा ।”

सक्सेना साहब और दूसरे लोगोंने गाँवोंके रास्तोंको अपनी मूल्यवान् कारोंकी लीकें खींच-खींचकर उपकृत किया ।

चौथे दिन गाँवमें फिर चर्चाओंका बाज़ार गरम हो गया । कुछ लोग

कहते, “देखा, मनी बाबू कैसा वीर है ! लाखोंका कारबार छोड़कर लोग पीछे घाममें सली हो रहे हैं ।”

कुछ लोग कहते, “देखा ! निखालिस शहरी लोफ़र थे । सुराजीको मोटरपर बैठाकर चकल्लसबाजी करते फिरे । ऐसे ही भडुओंको वोट दिया गया तो मरजाद क्या रहेगी ?”

“बाबा ! वोटकी लड़ाई अभी देरमें होगी ?” मनोहरने कहा ।

झूमकलाल हँस पड़े । बोले, “यही, लड़ाई है बच्चा ! देख रहे हो जीतनेके लिए ज़मीन-आसमान एक किया जा रहा है ।...अच्छा, देखो अब रात अधिक हो गयी । अब शेष कहानी कल कहूँगा । अब सो जाओ ।”

वास्तवमें मैं भी यही चाहता था । यह सोचते हुए कि मणि बेचारे-का श्रम सफल होगा भी या नहीं, मुझे नींद आ गयी ।

अगले दिन शाम होते-होते झूमकलालकी नयी कथा मेरे मनमें घुमड़ने लगी । सवेरे ही खा-पीकर द्वारपर पश्चिम ओर जहाँसे कथा अच्छी तरह सुनी जा सके चारपाई डालकर पड़ रहा । चाँदनी बँसवारीसे छन-छनकर पूरे आँगनको चकमक-चकमक कर रही थी । थोड़ी देरमें ‘अवधनाथ हो ! अवधनाथ हो !’ करते झूमकलाल खड़ाऊँ खटखटाते आ गये ।

“बाबा ! आज खूब मजा आयेगा । मणि पण्डितको जिता दो बाबा !” मनोहरने चारपाईपर सोकर कहा । “यह हमारे वशकी बात है ? जिताने-हरानेका काम तो जनता करती है, क्योंकि वोट उसीके हाथमें है । मैं तो सिर्फ़ तुम्हें कहानी सुना रहा हूँ ।” झूमकलालने कहा ।

“अच्छा ठीक है । आगेकी कहानी सुनाओ बाबा !”

“देखो, खाकर आया हूँ ; थोड़ी देर शान्तिपूर्वक लेट लेने दो । उस दिनका बताया नियम भूल गये ?”

श्री रत्नसुमेर मणिकी कहानी यह ‘नयी कथा’ हमारे सामने नाचने लगी । गाँवमें पैदा होकर शहरमें यह लखपती हुआ । वोट आया

तो बहते दरियामें हाथ धोने गाँवकी ओर दौड़ा। चोर-चाई और आवारा रईसोंकी एक सेना बनायी कि बस मानो गद्दी पैरोंके नीचे आ गयी, एम०एल०ए० !.....

इसी बीच कहानी शुरू हो गयी।

चुनावकी तिथि एक सप्ताह शेष रही। गली-गली राजनीति बहने लगी। तरह-तरहकी बातें कानोंमें आने लगीं। उम्मीदवारोंके निशानोंपर गाने बने। तानें बनीं और तुक जोड़कर बुद्धिका कौतुक खड़ा किया गया। कोई कहता—‘बैल’ जातिसे है कल्याण। कोई कहता—‘अच्छैवट’के नीचे आओ : उद्धार होगा, शान्ति मिलेगी। कोई कहता—आज हमें महल नहीं, ‘झोंपड़ी’ चाहिए। कोई कहता—रामका ‘धनुष-बाण’ मिले तब रामराज होगा। कोई धर्मकी ओर बुलाता। कोई सस्कृतिकी याद दिलाता। इसी प्रकार कोई कुछ, कोई कुछ। मणिजीके प्रचारक नारा लगाते—

‘गरीबीकी बाढ़में बूड़ो मत।

मणिसे लदी ‘नाव’ भूलो मत ॥’

गलियाँ रँग गयीं। पर्चों और पोस्टरोंकी भीड़ प्रत्येक द्वारपर सिनेमा-गृहका भ्रम उत्पन्न कर देती। मणिजीने एक चिकने मोटे कागजपर अपना पूरा चित्र छापकर नीचे अपने सद्ग्यवहारकी घोषणा की। यह पर्चा घर-घर प्रभूत मात्रामें पहुँच गया।

एक दिन आनन्दने रिपोर्ट पेश की कि वास्तवमें लोग ‘वोट’ देनेकी बात न कर या तो मजाक करते हैं या सब्जबाग दिखाते हैं। उसने बताया “मैं कि एक दिन एक ऐसी जगह जा पहुँचा जहाँ लोग मुझे पहचानते न थे। मेरी उपस्थितिमें ही वहाँ दो दलके लोग आ धमके। एक दल वोट माँगकर गया, तबतक दूसरा दल आया। दोनों दलोंको जनताने मूर्ख बनाया। दोनों दलोंकी मुँहदेखी बातें हुई। ‘अरे आप ? भला कहें ? आप हमारे पड़ोसी ठहरे, फिर भाई ! आपके हमारे खेत

सटे हैं। अपने घरसे पुकारें तो आप सुन लेंगे। फिर भी दरवाजा पवित्र हुआ जो दर्शन दिये। यह भी कोई बात है? आपको वोट नहीं दिया जायेगा तो किमको दिया जायेगा? शील है, मरउअत है और खानदानो रिश्ता है। हम लोग भूले थोड़े हैं? आप जाइए, पैर पसारकर सोइए। हम लोग नीति-वीति कुछ नहीं जानते। बस आप मेरे दरवाजेपर आ गये, आपकी खातिर करनी है।' इस प्रकार लोगोंने उनसे कहा। बादमे जब मैं पहुँचा और, अपना प्रस्ताव रखा तो लोग उछल पड़े। अरे वाह! आप ही हैं आनन्द बाबू? बड़े भाग्य जो दर्शन हुआ आपका! आप गाते क्या हैं, जादू कर देते हैं। नाम तो आपका बच्च-बच्चा जानता है। हम लोग मणिजीको वोट देनेके लिए तो कमर कमकर तैयार हैं। फिर आप आ गये। देखा नहीं दो और आये थे, दरका दिया। किसका मन छोटा करें? किसका दिल दुखायें? वोट जिसे देना होगा देंगे ही। आपके मणिजी सचमुच मणि है। आदमी नहीं देवता है।...."

और-और भी इस प्रकारकी बातें हुईं। सच तो यह था कि यह सारा कीर्तिगान रात-भर मुफ़्तमे गाना सुननेकी चालका पैतरा था। यह छिपा न रहा कि वोटके नामपर लोग उसे बना रहे हैं। उसी समय उसे उस ब्रिषाक्त हवाके कुछ झोंके लगे थे जो मणिजीके काले कारनामोंसे झकझोरित होकर कानपुरसे बहते-बहते देहातमे आ गये थे। उसने मणिजीसे यह भी बता दिया कि खुल्लमखुल्ला यह जानना कि किसका वोट किसे मिलेगा, बड़ा मुश्किलका काम है। अन्तमें आनन्दने यह भी छिपा नहीं छोड़ा कि जनता मणिजीके साथ नहीं है।

मणि रात-भर जागता रहा। उसकी नींद हराम हो गयी। चित्त दावाग्निसे घिरा मृग हो गया। जनताकी भावना ठीक-ठीक वह कैसे जाने? हार तो मरण होगी। लोग हँसेंगे। ताने कसेंगे। चुल्लू-भर पानी डूबनेके लिए नहीं मिलेगा। वह दुःख कैसे सहेंगे जब सारी शेखी

धूलमें मिल जायेगी। अब यह अच्छे जालमें फँसे ! 'भइ गति सांप-छछूंदर केरी।' सभी साथी निकम्मे हैं। झूठे हैं। उल्लूके पट्टे हमें उल्लू बनाते हैं या खुद बने हुए हैं। अब क्या करें ? कुछ तो करना ही होगा। किसी घाट नैया लगानी ही है।

गहरे सोच-विचार और मानसिक उद्वेगके बाद वे एक नतीजेके सिरेपर पहुँचे थे और दूसरे दिन यह बताकर कि आवश्यक कार्यवश दो दिनके लिए कानपुर जा रहे हैं, मोटर लेकर निकल पड़े।

मणिजीके आकस्मिक पलायनसे लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। काना-फूसी प्रारम्भ हुई। कितने लोग परिणामके पेटमें पहुँचकर कुछ निकाल लाये और सुना गया कि पराजयके भयसे चम्पत हो गये। लेकिन चौथे दिन सही-सलामत हॉर्न बजाते मणिजी बँगलेमें दाखिल हुए और पहलेकी अपेक्षा चेहरा खुशियोंकी फुहारसे खिला हुआ दिखायी पड़ा तो लोगोंको और भी अचरज हुआ। हितैषियोंने कार घेर ली। सेवकने दरवाजा खोल दिया और हाथ जोड़े मुसकराते हुए मणिजी उतर पड़े। मणिजी सीधे अन्तःपुरमें पहुँचे। ऊषाको गलेसे लगाकर उन्होंने हर्षातिरेकमें कहा, "श्री एम०एल०ए० की रानी, लो अब बेचारी सफलता मुट्ठी बाँधे दरवाजेपर खड़ी है ! बस बन्दरोंको मुट्ठी-भर चना फेंकने दो।" ऊषा हैरतमें पड़ गयी।

"यह क्या पहेली है ? समझाइएगा भी ? आप चले गये क्या हम लोग तो भँवरमें ही अटक गये थे।"

"सुनो, मैं जनताकी मनोभावना पढ़ना चाहता था। इन बीते दिनोंमें मैंने रूप बदलकर यही किया है। यों लोग मुझे पहचानते कम हैं, फिर वेश भी खूब बनाया था। सच कहता हूँ, तुम भी देखकर नहीं पहचान पातीं। खैर, छोड़ो यह बात। कामकी बात यह है कि लोग मुझे वोट नहीं देंगे।"

"है ! क्यों ?"

“सुनो तो पूरा पहले । बात यह है कि लोग मुझे काफ़ी पैसावाला समझते हैं । वे रुपया चाहते हैं । मैं तो कहता हूँ, लो न रुपया भाई, कितना लोगे ? कमी क्या है ? यह आखिरी हथियार है । लड़ाईमें हारके वक़्त भिड़ाया जाता है । जानती हो, आदमी रुपयेका गुलाम है । खेलवाड़ नहीं है । अब देखो रंग आता है । जो जीवन-भरमें नहीं जाना वह पाठ इन तीन दिनोंमें पढ़ लिया । एलेक्शन कैसे जीता जाता है, कोई मुझसे जान ले । गाँववाले भी क्या, बछियाके ताऊ हैं । इनकी नाक जिधर चाहो मोड़ दो । वह रिपुदहन सिंह क्या है, पूरा सियार-वाहन समझो । कालेश्वरने एक ही दिन पाँच रुपये सुँघा दिये, अपनी पुश्तैनी अदावतपर परदा डालकर पूरा अन्धभक्त बन गया । उसकी थाह मिल गयी । यदि उसे दसका मुँह दिखा दें तो शायद नंगा नाच नाचनेके लिए तैयार हो जाये । फूलपुरको तो जानती हो ?”

“नहीं तो !”

“अरे वही तुम्हारी सलीमा चच्चीका गाँव है । निकट ही तो है । अच्छा एलेक्शन बाद जीतका सेहरा सिरपर बाँधे एक दिन चलेंगे । बड़ा गुल खिलेगा । जब सुबरनसिंहको उनके दरवाज़ेपर साधु-वेशमें रात-भर रहना सुनाऊँगा तो वे भी हक्का-बक्का हो जायेंगे ।”

“ये सुबरनसिंह कौन हैं ? कालेश्वरका पट्टीदार ? तब तो वह ज़रूर तुम्हारी ओर हो जायेगा । सुना कि कालेश्वरसे उसकी पटती नहीं । वह काँग्रेसी है । अतः विरोध स्वाभाविक है ।”

“बस, बस, यही बात है । उसे जालमें फँसा ही समझो । धर्म-कर्मके फेरमें पड़ा था । बगुलाभक्त है । परिषद्वालोंने बहका दिया था । लेकिन साक्षात् लक्ष्मीको द्वार आये देखकर वह ठोकर लगानेमें समर्थ न था । वह तो काँग्रेसी, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट सबको एक स्वरमें गाली देता है । मुझसे पूछा, ‘साधूजी, आप वोटर हैं कि नहीं ?’ जब मैंने हाँ कहा तो पूछा कि आप किसे वोट देंगे । मैंने बताया कि सभी

पार्टीवाले मक्कार और स्वार्थी हैं। सब बहते दरियामें हाथ धोनेवाले हैं। मैं तो स्वतन्त्र उम्मीदवारोंको वोट देना बेहतर समझता हूँ।”

“वस, बस, मेरे मुँहकी बात छीन लो, स्वामीजी आपने ! मैंने भी यही विचार किया था परन्तु महन्तजीको क्या कहे ? कहते हैं कि सूरज छापमें वोट नहीं पड़ा तो मेरी नाक कट जायेगी। पुरखे पूज आये हैं। अब मुश्किल है कि नाहीं कैसे करें ?”

“हा ! हा ! हा ! यही बात है ? अरे एलेक्शन बाद दो रुपया पूजा चढा देना। देवता सीधे हो जायेंगे। यह तो राजनीति है बच्चा। खेल नहीं। सोच-समझकर वोट देना। ऐसा नहीं कि धर्म भी जाये, तुम्बा भी फूट जाये। क्या तुम्हारी ओर कोई स्वतन्त्र उम्मीदवार खड़ा नहीं है ?”

“है क्यों नहीं ? यह रत्न सुमेरमणि क्या है, पूरा व्यापारी है। लखनऊ जाकर परमिट और कण्ट्रोलके फेरमें पड़ेगा कि हमारी भलाई करेगा। यदि वह सचमुच हमदर्द होता तो हमारे गाँवके स्कूलकी यह दुर्दशा होती ! दो वर्ष हुए जब वह गंगा माईके पेटमें समा गया तब बच्चे इस दरवाजे, उस दरवाजे, पेड़ तले, मैदानमें पढ़ते क्या हैं मारे-मारे फिरते हैं। हजार-दो-हजारका तो उसके सैर-सपाटेमें वारान्यारा हो जाता होगा। यदि वह चाहता तो यह स्कूलकी नैया किसी घाट लग गयी होती।”

“तो क्या तुम लोगोंने उससे कहा है ? सुनो, तुम्हारे कहनेसे यह जाहिर हो गया कि वह बड़ा आदमी है। जानते हो ? बड़े लोगोंकी आँखें नहीं काम करतीं, कान काम करते हैं। अवश्य तुम्हारे गाँवके स्कूलके दिन लौट आये।”

इसी प्रकार एक रात एक जगह एक झगड़ेमें बीच-बचाव करना पड़ा। एक मुझे गाली दे रहा था। दूसरा मेरा समर्थन कर रहा था। ठण्डी बातचीत गरम होकर गाली-गलौज तक ही पहुँचकर नहीं रुक गयी,

हाथ भी छुट गये। अन्तमे मैंने सब रफ़ा-दफ़ा किया। मेरे समर्थकको ताने मिल रहे थे—‘अकोर चाटकर अकड़ रहा है।’ ‘मणियाने सुँघा दिया है।’ ‘उस ब्लैक-मार्केटियरने इसे खरीद लिया है।’ आदि-आदि। मैंने जान लिया कि रुपया टूँसकर ऐसी आवाजोंको बन्द किया जा सकता है। दूसरी तरफ़ अपनी तरफ़दारीकी आवाजोंको भी खाद-पानी चाहिए।

“ये सब बातें हैं और बड़ी-बड़ी बातें हैं। एक जगह तो खुल्लम-खुल्ला बात मैदानमें आ गयी। एकने कहा—‘कोउ नृप होहि हमें का हानी, चेरि छाँड़ि ना होउबि रानी।’

“एकने उत्तर दिया, ‘तब कहो जी, क्या तुम भी मन्थराकी तरह दहेजमे आये हो क्या, जो ऐसे कह रहे हो?’

“‘नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है भाई! किसीको वोट दो, कोई अपना नहीं। कोई किसीकी खरची नहीं चलायेगा। सब वोटके बाद भूल जायेंगे। काम हो गया : दुःख बिसर गया। कहो?’

“‘तो क्या खरची चलानेवालेको ही वोट दिया जायेगा?’

“‘इसमे क्या पूछना है? सुर नर मुनि सबकी यह रीति, स्वारथ लागि करहि सब प्रीति।’ देखते नहीं हो मणिने आनन्द, लहरी, बनइला, जागिरा, सुखी चौधरी तथा उस सुराजी रण्डीकी थैली गरम कर दी है। कैसे गली-गली जै-जैकार करते फिरते हैं।’

“‘अच्छा यार, कहो तो तुम्हें भी कुछ दिला दें। वह तो झोली खोले बैठा है।’

“‘सच? तब हर्ज ही क्या है, देंगे वोट। जिसका खायेंगे उसका गायेंगे, कोई एक पैसा देगा नहीं। घरमें एक दिन नमक नहीं रहता है तो दो पैसेके लिए दाँत चियारना पड़ता है। औरोंको क्या मालूम! जानती है चिलम जिसपर चढ़ती है अंगारी, हुक्काको क्या पता। हम रेज पाई तो सोलह आनेकें भरोसे जोते हो?’

“इस प्रकार मैं जहाँ गया, अपने धनी होनेकी शिकायत सर्वत्र सुनी।

कहीं स्कूल, कहीं अस्पताल, कहीं कुआँ, और कहीं कुछ, बनवाने और वोट पानेकी चर्चाएँ सुनीं। यही नहीं, मैं तो समझता हूँ कि प्रत्येक गाँवमें दो ही एक लोग हैं जिनके पीछे-पीछे भेड़, बकरीकी भाँति गाँववाले चलते हैं। बस इनकी नकेल अपने हाथमें ले लेनी है। किसी मुखियाको साइकिल, किसी चौधरीको घोड़ा : बस फ़तह समझो। कमसे-कम प्रत्येक वोटपर रुपया तो फूँकना ही है। तिकड़मका हाथ सब लोग क्या जानें ? दो-चार हाथ मारा नहीं कि गोटी लाल और मैदान साफ़।”

दूसरे दिन मणिजीकी जी-हुजूरीमें मुसाहिबोंका कारवाँ एक सजे कमरे में दाखिल हुआ। सावधानी और सतर्कतासे बातें हुई। घातें बनीं और गाते-बजाते एलेक्शन फ़तह करनेकी नयी-नयी तजवीज़ें हुई। मणिजीके चातुर्यकी सबने बेहद बड़ाई की।

वोटका एक दिन रह गया तभी मणिजीकी समस्त इच्छित योजनाएँ पूर्ण हो गयीं। दिशा-दिशामें सफलताका ध्रुवतारा दिखायी पड़ा। भला लक्ष्मीकी रूपशिखापर कौन आकृष्ट नहीं होगा ? कौन है जो उस चंचलाके एक मारक कटाक्षपर नंगा नाच नाचनेके लिए प्रस्तुत न हो जाये ? मणि हर्षमें फूल-फूल जाते। विजयका नशा उनसे अधिक उनके मित्रोंकी आँखों को शरबती बना रहा था। भावी जीतकी आह्लादकारिणी तरंगोंमें झूलते हुए उनका हज़ूम नव-नव पुष्कल परिधानमें समलंकृत होकर पोलिंग स्टेशनोंपर छाती फुला-फुलाकर अपने वोटरोंकी अभ्यर्थना तथा स्वागत-सत्कार करता हुआ दिखायी पड़ता था। पानीकी तरह रुपया बहाया जा रहा था। बहती गंगामें डुबकी लगानेवाले झुण्डके-झुण्ड मणिके भक्त आते और खुशी-खुशी वोट दे जाते। बड़े-बड़े धीरधारियोंने भी अपनी लुटिया डुबो दी।

“जीत गये मणिजी !” चर्चाएँ होने लगीं। “हर जगह काफ़ी वोट पड़ा है, भाग्यवान् है” सुना गया। “दो-दो बक्से भर गये, कई-कई बार खोदना पड़ा।” एकने कहा, “एलेक्शनका नतीजा जाहिर है, मणिके सामने टिकना

मुश्किल है।” विरोधी दलके एक जिम्मेदार आदमीके मुँहसे सुना मणिजीने, और छाती गज-भरकी हो गयी जैसे जीका काँटा निकल गया।

“अरे यह इन्द्रका अखाड़ा, मय उर्वशी और मेनकाके कहाँसे उतर आया?” आँखें उठ गयीं। निकट आनेपर जाना गया। यह ऊषा और मुराजीका दल है। स्त्रियोंके एक भारी दलने भी वोट दिया। समय समाप्त होनेको था कि एकाएक ऊषाको कुछ याद पड़ा। उसने मणिसे कहा, “मैं तो औरोंके ही फेरमें रह गयी और अपना वोट दिया ही नहीं! जाऊँ?”

मणिजी अट्टहास कर उठे, “तुम भी क्या भोली हो! गोजराकी एक टाँग टूट जानेसे क्या होता है, जाओ घर मौज लूटो! ईश्वरकी कृपा है, जो इतने वोट पड़े कि स्वप्नमें भी कभी नहीं आये होंगे। देखती नहीं विरोधियोंके मुँहपर सियाही पुत गयी है।”

निर्वाचन समाप्त हुआ। फल भी सामने आया। पर सहसा यह विश्वास करना कठिन था कि मणिजी एक वोटसे हार गये।

इतनी कथा सुनाकर झूमकलालने कहा, “बेटा! तुम्हारे मणि पण्डित तो हार गये।”

“हाँ बाबा!.....मगर जीत किसकी हुई? कांग्रेसी ठाकुर महिधर सिंह या सोशलिस्ट अब्बा साहब या जनसंघी वकील साहब या.....?”

“इनमें-से कोई नहीं।” झूमकलालने कहा।

“तब कौन विजयी हुआ?”

“जनता! उम्मीदवारका तो केवल नाम-भर रहा।”

“जरा समझाइए बाबा इसे।”

“बेटा, इसे स्वयं समझो और जैसे-जैसे समझनेका प्रयत्न करोगे कहानीका आनन्द बढ़ता जायेगा।”

झूमकलालका अन्तिम परामर्श न केवल मनोहरके लिए था अपितु एक श्रोता होनेके कारण मेरे लिए भी था।



मुखिया साहब

आज बड़ा तमाशा हुआ । सोच-सोचकर हँसी आती है और रुलाई भी । वाह रे हमारे गाँव !

जिस बरातमें हम लोग गये थे, एक खानदानी रईसकी थी । विदा-विदाईमें खूब नाटक हुआ और होते-होते दस बज गये । बिना ठीकसे सोचे कि कहाँ जाना है, छुट्टी पाते ही हम लोग साइकिलकी सीटपर बैठ गये ।

ऊपर दहकता सूरज, नीचे तेज, उजली और चमचमाती धूप । पछिवहीं लूचिकी आँच । आज मालूम हुआ कि ऐसी खड़खड़िया दोपहरीमें भी चला जा सकता है ।

सबनई गाँव तक आते-आते १२ बज गया । अब आगे एक कदम भी नहीं । तब ? पानी पीकर ठण्डे हुए तो भूखने जोर मारा । थकावटसे चूर । यह थकावट तब और बढ़ जाती जब रातका खाना-सोना याद पड़ता ।

कुसमयमें किसके यहाँ जायें ? पूछकर गाँवके मुखियाके दरवाजेकी ओर बढ़े । पहुँच गये । पर यह क्या ? पचीस-तीस हाथ लम्बी बैठकमें दर्जनों चारपाइयोंपर बहुत-से लोग बैठे थे । कुछ लोग नीचे भी बैठे । सभी खामोश । जैसे बैठाये गये हों । अपराधी जैसे चुप । माजरा क्या है ? सामने जाकर लौटना भी अनुचित था । बैठकके पास पहुँचे । संयोगसे उन बैठे लोगोंमें मेरे एक पहचानी मित्र निकले । साइकिल खम्भेसे टिका दी गयीं । मित्रने इशारा किया और उन्हींके पास हम लोग भी चारपाईपर धँस गये । खरबूजेको देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है । हम लोग भी मौन हो गये । इतनेमें बाजा बजानेवालोंका एक दल आया । वे भी कोनेमें चुपचाप बैठ गये । चुप्पा लोगोंकी संख्या बढ़ती जा रही थी ।

धीरेसे आँख चारों ओर दौड़ायी । वह पीली धोती और लाल कुरता पहने कौन ? उमर पन्द्रह-सोलहकी । आँखमें हलका काजल और पैरमें महावर । यह तो दूल्हेका बाना है ! इधर साफ़-सुथरा पहरे लोग । उधर कुछ बूढ़े बाबा । तमाखू चढ़ाकर आया । एक बाबा पीने लगे । गोरे, लम्बे, उजली और बड़ी-बड़ी मूँछें, एकहरा शरीर, आयु ६० के लगभग, चेहरा खिंचा हुआ, आँखें चढ़ी हुई ।

तबतक एक डोली आयी । फाल बढ़ाते, हूँ-हूँ-हूँ करते-करते, एक हाथमें सोंटा थामे कहार । आँखें उधर खिंचीं । तबतक बम फूट गया ।

“खबरदार ! रख दो वहीं ।”

देखा, बूढ़े बाबा थे । हुक्का चारपाईके पायेसे टिका दिया और खड़े हो गये ।

“देखें कौन माईका लाल घरमें ले जाता है ? बड़े विदा कराने-वाले हुए ।”

एक आदमीने धीरे-से हाथ पकड़कर बैठाया । कहार रुक गये । डोली रख दी गयी : ठीक बैठकके सामने जहाँ धूपकी उजली आग जमीन और आममानके बीचमें कस गयी थी ।

कुछ लोग उधरसे आये । शायद गाँवके ही हैं । पट्टीदार होंगे । बूढ़े बाबाके पास बैठ गये । एकने मुर्ती निकाली । बनाते-बनाते कहा,

“लड़कीको घरमें जाने दें । इसने क्या अपराध किया है ? बेचारी धूपमें डोलीके भीतर भूख-प्यास और गरमीसे मर जायेगी ?”

“मर जायेगी तो मर जाये,” बूढ़े बाबा बोले, “इसे ले जाकर वापस कर आओ । कुछ खाने-पीनेके लिए डोलीके भीतर रख दो ।”

“यह ठीक नहीं होगा ।”

“यह ठीक होगा ।”

अब कई आदमी बोलने लगे । चुप्पी खत्म हुई । मेरे मित्रने संक्षेपमें बताया कि ये बूढ़े बाबा गाँवके मुखिया हैं । इनके लड़केकी शादी थी ।

बरात करनपुर गयी थी। आज सबेरे विदा-विदाईके समय दहेजमें कुछ कमी होनेके कारण ये नाराज होकर चले आये। वहाँ बेटीवालेकी दशापर तरस खाकर हम लोग, इनके सारे रिश्तेदारोंने सारी शेष रस्म पूरी करा दीं और लड़कीको विदा करा लाये। अब ये एकदम आपसे बाहर हो गये हैं।

अब यह लिख देना जरूरी है कि हम लोगोंकी भूख-प्यास और थकावट न-जाने कहाँ चली गयी।

एक मजेदार बात। कुछ लोग उधरसे मुसकराते हुए आते हैं। बैठकमें आकर गम्भीर हो जाते हैं। मुखियाको समझाते हैं। चार बात इधर और चार बात उधर। फिर उठकर वैसे ही मजेमें चले जाते हैं।

ये मजा लेनेवाले हैं। आग लगानेवाले हैं। पट्टीदार लोग हैं। बना खेल बिगाड़नेवाले हैं।

ज्यों-ज्यों देर होती थी, मामला और गम्भीर होता चला जा रहा था। मान-मनौवल, बहस-मुबाहिसा और कहा-सुनी सब बेकार। बस मुखिया रट रहे थे, “बाप रे बाप ! पगड़ी उतार दी, नाक कटा दी और सारी इज़्जत धूलमें मिला दी। ये हमारे रिश्तेदार नहीं दुश्मन हैं। इन्हें देखकर आग लग जाती है। कहाँ गये सब कहार ! जल्दी डोली हमारी आँखसे दूर करो।”

अब मुझसे नहीं रहा गया। “आपके घरकी लक्ष्मी है। इस प्रकार क्यों दुत्कार रहे हैं।” मेरे मुँहसे निकल गया।

मुखिया साहब गला फाड़कर फट पड़े। “कौन साला दुत्कारता है ? कौन कहता है कि हमारे घरकी लक्ष्मी नहीं है ?” इस समय खैरियत इसीमें है कि पहुँचा दो।”

“तो इसे अब नहीं लायेंगे ?”

“जब वक्त आयेगा तो लाऊँगा।”

“जाने दीजिए, जो हुआ सो.....।”

“खूब बात करनेवाले हो !” ओठ काटकर और सिर तोड़कर उन्होंने कहा, “राजाका धन मुसहर बाँटे ? मेरा लड़का है, मैंने खर्च किया। मैं मालिक हूँ और बीचमें दूसरा कूद पड़े ? मेरी इज्जत बरबाद कर मालिक बन बैठे ?”

“दूसरा कौन गैर है। आपके रिश्तेदार लोग हैं ?”

“रिश्तेदार है तो रिश्तेदारी करे कि छुरी पेटमें भोंक देगा ! ऐसे रिश्तेदारको दूरसे सलाम है।”

मेरे मित्रने मेरा हाथ दबा दिया। सोचा : ‘पत्थरपरका मारना चोखो तोर नसाय।’ फिर वही दमघोंट चुप्पी। बाहर मैदानमें बिजलीकी पॉलिश-सी चमकती धूपके बीच लाल ओहारसे ढँकी डोली। और डोलीमें ? ओफ् ! इसमें गृहलक्ष्मी है। ग्रामलक्ष्मी है। आँसुओंमें नहायी। बिसूरती हुई। तपनमें घुटती हुई। सिमटो, मरी-सो, डरी-सी और मूर्च्छित-सी ! दुनियाके उलटे व्यवहारकी वेदीपर बलिके लिए बलात् घसीट दी गयी हमारी भारतलक्ष्मी ! क्या इन्हींके लिए कहा गया है कि जहाँ ये पूजित होती हैं वहाँ देवताओंका वास होता है ? घोर अपमान ! भारी पाखण्ड ! दहेजका माटी-सा घन और कहाँ यह सोने-सी, हीरे-सी, मोती-सी, चाँद-सी सजीव कुलवधू ! पुरजन, परिजन और सगे-सम्बन्धियोंके सामने धूपमें बैठायी गयी थी। भावनाओंकी धारामें बहता गया मैं और एक झपकी आ गयी बैठे-बैठे ही।

“कौन विदा करा लाया ? चलो हमारे सामने।” मुखियाके शब्दोंसे झटका लगा। सामने आँखके वही मजमा। घड़ीकी ओर देखा, तीन बज गये थे। रिश्तेदार लोग एक-दूसरेको देखने लगे। मेरे मित्र क्रुरता-टोपी ठीककर अब मुखियाके सामने हाथ जोड़कर खड़े थे। दूसरे भी पहुँचे। लाइन लग गयी। एक सच्चा नाटक।

“कौन विदा करा लाया ?” मुखियाने पूछा।

“मैं,” मेरे मित्रने थोड़ा सिर झुका लिया।

“क्यों विदा करा लाये ?”

“गलती हो गयी !”

“क्यों गलती हो गयी ?”

पुनः सन्नाटा । सिर झुकाये रिश्तेदारोंकी कतार, सिर झुकाये चार-पाइयोंपर लदे लोग-बाग, सिर उठा है केवल मुखियाका । शायद अपने सवालका जवाब पानेके लिए ।

“इसका जवाब मेरे पास है ।” बैठे लोगोंमें-से एक आदमी उठा । सिरपर गमछा बँधा, लम्बा कुरता, अघेड़ उम्र, घुटने तक धोती, नाटा कद, दोहरा हाड़-काठ । मेरे मित्रके आगे आ गया वह व्यक्ति । सामने थे मुखिया । दाहिने हाथकी तर्जनीसे हवामें लाइन बनाता हुआ बोला,

“देखिए, ये मुखिया हैं । हमारे बड़े भाई हैं । अबतक मैं शील-संकोचके कारण नहीं बोलता था । अब हद हो गयी ।” एक सेकण्डके लिए रुका । फिर पीछे घूम गया । अब सामने रिश्तेदार लोग थे । “तुम लोग रिश्तेदार हो कि बेहया हो । जहाँ तृनके बराबर भी तुम्हारा मान नहीं है, जहाँ तुम लोगोंको कोई फूटी आँखों नहीं देखना चाहता है, जहाँ बातपर लात मिलती है वहाँ क्यों कुत्तोंकी तरह पड़े हुए हो ? भागो यहाँसे । सब लोग अभी भागो ।”

अब पुनः वह मुखियाकी ओर घूमा । “मैं लड़कीको घरमें ले जाता हूँ । घरमें हमारा भी हिस्सा है ।”

“तब पहले बाँट-बखरा हो जाये ।”

“हाँ-हाँ जो होता हो सब हो जाये ।” मुखियाके भाईने कहा । दोनों भाई सोंटा लेकर मैदानमें छरकने लगे । “हाँ-हाँ-हाँ” कर अनेक लोग धरहर करने लगे । शोर-गुल अजब हो उठा ।

इधर रिश्तेदार लोग सामान समेटने लगे । छड़ी उठा ली गयी, झोला सँभाल लिया गया । साइकिलें खड़खड़ाने लगीं, हम लोग भी उठ पड़े । कुछ गाँववाले रोकने-मनाने लगे । सब अस्त-व्यस्त हो गया ।

चारपाईका सब छोड़ चुके थे। मैंने देखा, एक चारपाईपर बैठा वह पोली धोतीवाला ढूल्हा चौरहरणके बाद यह महाभारत देखकर सिसक रहा था—कुछ और लोगोंकी नज़र उसपर गयी और उसे समझाने-बुझाने लगे, “भैया तुम काहेको रोते हो। चुप रहो, चुप रहो।”

उसी समय एक मजेदार बात हुई। मौका पाकर औरतें डोली टाँस ले गयीं और दरवाज़ेपर लगाकर बहू उतार ली गयी। हवेली मधुर-मधुर मंगल-गीतसे गूँज उठी। उस समय तक अभी दोनों भाइयोंमें उछल-कूद जारी थी। गाली-गलौज और ललकार-फुफकारके बीच जब गीतकी ध्वनि कानमें पड़ी तब मुखियाका सारा ताव जैसे एकदम उतर गया। घरमें आग लगनेका शाप देते गाँवके बाहर हो गये।

चार बजे भोजन मिला। एक घण्टा आराम कर हम लोग चले। रास्तेमें स्टेशनपर कुछ लोग मुखियाकी मनावन कर रहे थे। इनमें नाच, बाजा, तम्बू और बत्तीवाले भी थे क्योंकि इनका सट्टा बाक़ी था। कुछ मज़ा लेनेवाले पट्टीदार भी थे। कुछ और लोग भी जा रहे थे। झटकेसे एक बात सुनी, “.....पक्के उस्ताद हैं, सट्टेवालोंको लूटनेके लिए कैसा पाखण्ड रचा !” और इनकी इस खोजपर इनाम दे देना चाहा।



गरदनका दर्द

किनारे पहुँचते-पहुँचते नाव छूट गयी। पुकार लगायी, ओ भाई मल्लाह लेते चलो, जरूरी काम है, किन्तु कौन सुनता है ? वह बेचारा मल्लाह सुने भी कैसे ? नावपर बादशाह लोग बैठे हैं। सारी रियासत खाँचियोंमें भरी है। हरी-हरी, ताजी-ताजी और फुलकी-सी। गंगाका विस्तृत दियारा इनका राज-पाट है। हाथमें राजदण्ड ये नहीं धारण करते बल्कि उसकी जगह तेज धारवाले चौड़े मुँहके खुरपे हैं। झुण्डके-झुण्ड चलते हैं। सुबहके गये दोपहरमें लौटे हैं। घर पहुँचते-पहुँचते तीमरा पहर हो जायेगा। अब नाचीज मल्लाहकी क्या बिसात कि नावको एक मिनटके लिए रोके। दूसरी बार पुकारनेकी हिम्मत नहीं हुई। यही नहीं, इस अकल्पित स्थितिके सम्मुख होते ही मेरी गरदन दर्द करने लगी। उसे कुछ हो गया। अपने इस गरदनके दर्दका अनुभव कर मुझे अपने एक पड़ोसी सज्जनकी याद आ रही है। कुछ खास चीजोंका सामना होते ही उनकी कमर दुखने लगती है। मसलन जेठमें पुरवा हवा चलती हो और किसीके खेतमें बकरियाँ पड़ गयी हों। लोग कहते हैं कि इसी एक जेठमें झगड़ा हुआ। झगड़ेका कारण इनकी नयी वाटिकामें एक बकरीका घूस जाना था। लाठियाँ चलीं और चोटें आयीं। मेरे पड़ोसीकी कमरमें गहरी चोट आयी। वह चोट आज भी उक्त दृश्यके सामने आते ही उभर आती है।

तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि गंगा-तटपर घसियारोंसे भरी नाव देखकर मेरी भी गरदन पिराने लगती है ? आजका अनुभव तो यही बताता है। मेरी गरदनपर कभी न लाठी बरसी, न पेड़ टूटकर गिरा, न अखाड़े में किसीका रन्दा लगा और न कभी सिरपर कसा हुआ बोरा ही उठानेका

मौका आया कि यह मोच खाये । मैं बताऊँ, यह दुःख अपना नहीं एक मित्रका है जो मेरी गरदनमें उतर आया है । मैं अपने मित्रोंको बहुत भारी स्थान देता हूँ । उनका दुःख मेरा दुःख है । लिखा भी है, 'जे न मित्र दुख होंहि दुखारी, तिनहि बिलोकत पातक भारी ।' सो भी सुरेश-जैसा मित्र—अन्यमनस्क रहता है तो भी लगता है जैसे हमारी भारी भलाईमें डूबा है और प्रसन्न रहता है तब क्या पूछना है ? विचित्र-विचित्र यात्राओं के लिए प्रेरित करता है । जिस दिन वह गरदन-तोड़ काण्ड घटित हुआ उस दिन भी, हमें जहाँतक याद है, सुरेश बहुत प्रसन्न था । अन्यथा बाढ़से फँकाये नदी-नालोंवाले इस क्षेत्रमें लम्बी चढ़ाईके लिए भला किसका मन उत्सुक होगा ? जिन दिनोंकी यह बात है, भारत अभी स्वाधीन नहीं था । हाँ, स्वाधीनताके लिए प्रयत्न जोर-शोरसे हो रहा था । सन् '४२ की क्रान्ति में जब सभी काँग्रेसीजन जेलोंमें बन्द हो गये तो अज्ञात-नाम युवकोंने उस आन्दोलनको सँभाला । वह एक पूरा जोश और रहस्यका समय था जिसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती । यही नहीं, जिन-जिन लोगोंने आगे बढ़कर खतरा मोल लिया उन्हें आज मुश्किलसे लोग काँग्रेस-कर्मि मानते हैं । ऐसे ही लोगोंमें मेरा वह मित्र है और कुछ इसी तरहका वह एक गुप्त अभियान था । उस समय बिना तर्क और बहसके काम होता था, अतः जब सुरेशने कहा कि "चलो" तब हमें यह पूछनेका भी साहस नहीं था कि कहाँ और क्यों ? हाँ कल्पनामें कतिपय बातें आयीं । मीलों विस्तृत मूँजका जंगल होगा । अँधेरेमे चुपचाप कुछ लोग बैठे होंगे । नाना प्रकारके वेशमें इधर-उधरसे लोग आयेंगे । कुछ बातें तय होंगी । सबको सब पहचानते भी नहीं । पहचानसे क्या काम ? बस कामसे काम है । सो भी देशका काम ! किसीके परिवारको आर्थिक सहायता पहुँचानी होगी, किसी जगह पोस्टर लगाना होगा, कहीं झण्डा फहराना होगा, कहीं जनताको क्रान्तिके लिए तैयार करनेका कार्यक्रम होगा.....आदि-आदि ।

नदीका पानी तालमें फैल गया था । पार करना एक भारी समस्या

थी। सो भी ठीक पता नहीं, कहाँ कितना पानी है। अब हम लोग दोनों स्थितियोंके लिए तैयार थे। नाकके बराबर तक पानी मिलता जायेगा तबतक हेलते जायेंगे और यदि ऊपर हुआ तो तैरकर पार करेंगे। इसीलिए सारा सामान सिरपर मजबूतीसे बाँधकर हाथ खाली कर लिया गया।

छप्प्.....छप्प्.....छप्प्.....छिप्.....छप् पानी।

हड़बड़.....हड़बड़.....हड़बड़.....घुटने तक पानी, और फिर क्या था पानी बढ़ने लगा। कमर तक पानी, छाती तक पानी, गरदन तक पानी और अन्तमें नाक छू गयी। अब मेरे मित्र रुक गये। स्वभावतः मेरी दृष्टि चारों ओर गयी। मोलों तक विस्तृत जल-राशिके अतिरिक्त कहीं किसी आदमीका पता नहीं। सूरजकी किरनोंमें चमचमाता जल और गहरा सन्नाटा। एक अज्ञात भयसे सारा शरीर सनसना गया। क्या जाने जल-समाधि लेनेके लिए ही तो नहीं बढ़े चले जा रहे हैं? मेरा भय तब दूर हुआ जब 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय'से प्रारम्भ करके आत्माकी अमरतावाले तीन गीतके श्लोक क्रमसे पढ़ते हुए मेरे मित्र आगे बढ़े और फिर रहस्यमय प्रेरणासे एक ही साथ जब 'हमारी चाल तूफ़ानी न इसको रोकता पानी' वाला तराना दोनों के कण्ठोंको फोड़ निकला तो तैराकी भी आनन्दमय हो गयी। चार हाथमें ज़मीन मिल गयी। एक सिन्धु तर गये। तभी एक ऐसे व्यक्तिपर दृष्टि गयी जो चिहूँक-चिहूँककर हम लोगोकी ओर देख रहा था। उसे मैंने यों ही पुकारा परन्तु पुकार सुनकर तो जैसे उसके पैर ही उखड़ गये। सिरपर पैर रखकर भागा। मामला कुछ समझमें नहीं आया। हम दोनोंको यह जानकर थोड़ा मनोरंजनके साथ भारी खेद हुआ कि यह व्यक्ति मेरे मित्रके सिरपर बँधे लाल लंगोटको लाल पगड़ी समझ रहा है। सुरेन्द्रने कहा,

“देखा ? यह है भारत ! लाल पगड़ी देखते ही दुम दबाकर भागता है। ऐसे डरपोक कुत्तोंको फ़ौलादी बनाना है।”

“बनके रहेंगे !” कुछ ऐसे तेज लहजेमें मेरे मुँहसे निकला कि मेरे मित्रका दाहिना हाथ आगे बढ़ आया । वेगसे हाथ मिले मानो संघर्ष और स्वतन्त्रता मिल गयी । वह स्वर्गीय उल्लास जिसका साक्षी अनन्त स्फीत जीवन-राशिके साथ उस निर्जनमें आकाशपर चमकता सवेरेका सूरज था !

उस दिन गंगाके किनारे पहुँचे तो सूरज सिरपर आ गया था । घास गड़कर लानेवालोंको लेकर जाते-जाते एक नाव छूट गयी । बड़ी रोबीली आवाज़में मेरे मित्रने मल्लाहको डाँट-फटकार बताया, पर ऐसा लगा कि उसपर ध्यान देनेवाला कोई नहीं था । करते क्या ? मजबूरी थी । तटपर बैठ गये । क्षण-मात्रमें घसियारोंका एक दल पुनः जमा हो गया । पसीनेसे तरबतर शरीरकी गठन और विचित्र गन्ध दोनोंमें आकर्षण था । संयोग-वश उस पारसे एक नाव आ रही थी और उसके तटपर लगते ही सर्व-प्रथम हम लोग जाकर सवार हो गये । मल्लाहसे जल्दी चलनेके लिए कहा गया, परन्तु वह जैसे कानमें रुई लगाकर बैठ गया था । उधर घसियारे जल्दी नहीं कर रहे थे । शायद उन्हें किसीकी प्रतीक्षा थी । यों बराबर इधर-उधरसे बोझ ले-लेकर एक्के-दुक्के आते-जाते थे । धीरे-धीरे नाव भरने लगी । ज्यों-ज्यों विलम्ब होता था, मेरे मित्रका पारा गरम होता जा रहा था । भला ऐसे मामूली बनिहारोंके लिए इतने महत्त्वपूर्ण कामवाले व्यक्तिको रोकना चाहिए ? यह मल्लाह निश्चय ही आदमी नहीं पहचानता है । भारी जंगली है । कहाँका है ? ये सब बातके आदमी हैं, बातसे नहीं मानते । मुझे याद है कि मेरे मित्रका इस प्रकार बढ़ना मुझे नापसन्द था । फिर भी चुप था । मुझे यह देखकर भारी आश्चर्य होता था कि इनका रोब गालिब करना, झल्लाना, चीखना-चिल्लाना और ठकुराई प्रदर्शित करना सब नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज़ हुई चली जा रही थी । मल्लाह चुपचाप बीड़ी पी रहा था और चरवाहे रंग-बिरंगी चर्चाओंमें डूबे हुए थे । उनकी एक दुनिया थी । उसकी निराली चर्चा थी ।

उसमें सब बातें साफ थीं। कहीं दुराव, लगाव या अलगाव नहीं था। जैसे वे एक डालकी पत्तियोंसे अनुकूल वायु पाकर स्वयं ही हरहराते थे। उन्हें न किसीको रिझाना था और न किसीसे रीझना था। उन्हें पता नहीं कि कौन क्या बक-बक कर रहा है। उनके सामने मैं तो अपनेको बहुत हीन समझने लगा। सारे बड़प्पनके व्यक्तीकरणके बावजूद मेरे मित्र देखते-देखते बहुत हलके पड़ने लगे। उनकी मस्तीकी आँधीमें वे तिनकेके समान उड़ने लगे। उनकी स्वच्छन्दताके पर्वतके सामने वे ऊँटके समान लगने लगे। हमारी ओर देखकर उन्होंने विचित्र-सा मुँह बनाया जिसका अर्थ मैंने लगाया कि कह रहे हैं कि ये हमें क्या समझते हैं? वैसे ही आँखों-आँखोंमें मैंने भी उत्तर दे दिया कि ये आपको इससे अधिक कुछ नहीं समझ रहे हैं कि कहींका कोई घमण्डी ज़मींदारका बेटा है जो व्यर्थ ही कुत्ते-सा खौंखिया रहा है।

ठीक इसी समय एक घटना घट गयी। नाव खुलकर किनारेसे १० गज़ गयी कि 'हो.....ओ.....ओ.....ओ.....' रोकके नाव.....'व.....व.....' तटपर-से एक तेज़ आवाज़ आयी। देखा कि हाका-प्यासा एक बड़ी-सी खाँचीमे घास लिये एक जवान फाल कसे हुए किनारेकी ओर इस तरह लपका चला आ रहा है जैसे उसे पक्का विश्वास है कि हमें छोड़कर नाव नहीं जा सकती। सुनते ही मल्लाहने आगे लम्पी फेंक दी। मेरे मित्र बिगड़ उठे। वाह, क्या अन्धेर है! तुम लोग आदमी हो कि जानवर?.....मगर तबतक नाव किनारेसे सट गयी।

धम्म, मेरे मित्रके आगे खाँची गिरी और नावमें बैठ गयी। वे रोकते ही रह गये। वह व्यक्ति भी नावपर चढ़ आया। नाव खुल गयी।

"चढ़े चले आ रहे हो, खाँची किसीके सिरपर रख दोगे? अन्धे हो? दिखायी नहीं पड़ता?" मेरे मित्र बोले। "..... और उसने क्या किया? सचमुच दोनों हाथसे खाँची उठाकर मेरे मित्रके सिरपर रख दी और इधर-उधर होनेके पूर्व ही वे उसके असह्य बोझके नीचे पिसान

बनने लगे ।

“अब काटो मज्जा, बहुत आँखवाले हो !” उसने खाँची पकड़े हुए कहा ।

“चलने दो बीचमें, सालेको धारमें फेंक दिया जाये । देरसे माहुर उगल रहा है ।” एक दूसरेने कहा । “और सब पूर्ववत् अपनी विविध चर्चाओंमें मशगूल हो गये । नाव चल रही थी और शायद मेरे मित्रकी साँस भी । मैं तो एक-दम सिपट ही गया था । चश्मा उतारकर पॉकिटके हवाले किया । न जाने क्या गति हो । देखता हूँ तो वह वैसे ही भूत-सा निर्विकार भावसे खाँची पकड़े खड़ा है । इधर उसके बोझसे मेरे मित्रकी गरदनकी दशा कैसी हुई जा रही थी, यह लिखनेसे परे है । मैं कुछ बोल नहीं रहा था कि बिगड़कर कहीं मेरे सिरपर न रख दे । एक मिनट बीता । दो मिनट, तीन मिनट, और यहाँतक कि १५ मिनट बीत गये तो मेरा मित्र-धर्म जाग उठा । पहले अनुनयन ही उचित समझा,

“अरे पहलवान, लाशपर-की घास तुम्हारा चौआ सूँघेगा भी नहीं । हटाओ, हटाओ खाँची, जान छोड़ दो ।”

मेरा विश्वास था कि यह ‘पहलवान’ शब्दकी करामात थी कि मेरे मित्रको उस मारक चक्रसे मुक्ति मिली । अब यहाँ यह लिखना बहुत आवश्यक है कि महीनों कीमती औषधियोंकी मालिशके बाद गरदनकी पीड़ा और मोच ठीक हुई । मुझे यह जानकर अपनी लज्जासे छुटकारा मिला कि इस घटनासे मेरे मित्र लज्जित नहीं थे, बल्कि बातों-बातोंमें उन्होंने सुन्दर-सा निष्कर्ष निकाला जो हमें आज तक याद है । “किसीको छोटा समझकर बड़प्पन न जताओ, विशेषकर अपढ़-गँवार ग्रामीणोंको ।” तबसे तो मैं छोटा समझना तो क्या, उन्हें परम प्रणम्य मानता आया हूँ ।

“और इसीलिए मैंने लिखा न कि बादशाह लोग बैठे हैं, जिन्हें लेकर नाव चली जा रही है, चली जा रही है । उस दिन भी इसी प्रकार

चली गयी । अन्तर यह है कि उस दिन मैं अकेला नहीं था । ठोक उसी दिनकी भाँति आज भी इधर-उधरसे दीयरके बादशाह आ-आकर जमा होने लगे हैं । सोचता हूँ कि बादशाही तो बदल गयी, पर ये बादशाह लोग जैसे तब थे वैसे ही अब भी हैं ।



अफ्रीमकी बत्ती

आजकी एक साधारण घटनाने ग्रामीण रुचिके बारेमें नये मिरेसे सोचनेके लिए झकझोर दिया । वैसे कोई खास बात नहीं हुई । नित्यकी भाँति स्कूलके कारखानेसे दिन-भर खटकर निकला तो मन भारी हो गया था । घर तककी ५ मीलकी दूरी तो तय करनी ही थी । मैदानकी खुली हवा बरसाती बादलोंसे टकराकर आयी तो तबीयत फुरफुरा उठी । मुझे धीरे-धीरे निश्चिन्त चलनेका शौक है, मगर स्कूल और घरकी दूरीके बीचमें स्थित इस चलती-फिरती दूकानपर आता हूँ तो बरबस बहुत-सी बातें चिन्ता बनकर मनपर छा जाते हैं । आज सोच रहा था कि जहाँ चरागाह था, वहाँ खेत बन गया, जहाँ डोह या परती थी वहाँ घर बन गया तथा जहाँ कुछ नहीं था वहाँ इस सुनसान सरेहिके चौराहेपर एक पीपलका सुन्दर पेड़ ही नहीं खड़ा हो गया, बल्कि यह एक छोटी-सी दूकान भी जम गयी । छोटी-छोटी हाँड़ियोंमें दाना, सत्तू, नमक, गुड़लाई, बीड़ी, सलाई, सुर्ती, भेली, और कुछ ऐसे ही कपड़ेसे ढँका-ढँका रखा है । लोटा-डोरके साथ एक छोटा-सा डण्डा पासमें रखे अघेड़ उमरके साहुजी दिन-भर सौदा बेचनेके साथ-साथ पानी पिलाकर परलोक भी कमाते हैं । परलोक बने चाहे बिगड़े, पर यह छोटी-सी दूकान उनका यह लोक तो जरूर आगे सरकाती चलती है, क्योंकि उन्हींके शब्दोंमें “अधेली-रूपया रोज़का निकास हो जाता है ।”

मैं पहुँचा तो साहुजी दूकान उठा रहे थे । बोले, “अनरसा खाइएगा ?” अनरसा ! बचपनकी प्रिय मिठाई !! किसने इसका नाम अन + रसा रखा ? रस तो इसके कण-कणमें भरा है जो दाँत लगाते ही पोर-पोरमें उतर जाता है । नाम सुनते ही जीभपर पानी आ गया । चखने बैठा

तो ललचाये बादल भी रोएँ फहराकर पुरवाकी लहरोंपर उतर आये । पास ही खेतोंकी निराई करते हुए किसीने कजरीकी लयमें कुछ छेड़ दिया । छहर-छहर खेतोंमें मोती छिटाने लगी । थोड़ी दूरपर आते पथिकने अपना छाता खोल लिया मगर अबतक हम लोग निश्चिन्त थे पीपलकी छतनार छायाकी गोदमें ! अवश्य ही यह मामूली पेड़ नहीं 'वासुदेवजी' हैं । अपनी सारी दूकान एक बड़ी-सी दउरीमें रखकर और ऊपरसे एक मोटा चट्टु लगाकर जबतक साहुजी निश्चिन्त हुए तबतक मैं भी हथेलीके बराबर लाल-लाल, लुच-लुच उस अनरसेकी ४ टिकरियाँ खाकर पानी पी चुका था । साहुजी गुनगुनाये, 'गरजे-बरसे रे बदरवा' 'पिया बिना मोहें नां सहाय' । पीपलके पत्ते ताल देने लगे । हवा थिरक-थिरककर कमाल करने लगी । बादल भीन गये । हमने भी अपना छाता खोल लिया । बड़ी-बड़ी बूँदें उसपर पेड़की डालोंपरसे बिछलकर धब्ब'...धब्ब'...धब्ब'...गिरने लगीं । सारा वातावरण एक अनिर्वचनीय संगीत-धारामें डूब गया । दूर जो छाता लगाये पथिक आता दिखायी पड़ा था वह अब निकट आ गया । बरखा-मंगल दिलमें लबालब भरकर कण्ठमें छलक आया । उसने उच्च स्वरमें मलार उठायी—

‘यह ऋतु रूठ रहनकी नाहीं !

प्यासी नदियाँ, प्रेमरस मातीं,

सिन्धु मिलन कहें जाहीं !’

उसका गीत मुझे बहुत भला लगा । एकान्त पाकर छातेकी आड़में किस तन्मयतासे गा रहा है ! मैं भी जब-तब रास्तेमें यह समझकर कि कोई सुननेवाला नहीं है, इसी प्रकार भरे गलेसे गाता हूँ । खेतकी निराई छोड़कर उसमें जमे हुए पानीको निकालनेके लिए रास्ता बनाते हुए जवान किसानको शायद वह मलार बहुत भायो और उसने उसी मस्तीमें संगीतके उसी लहजेमें, उसी उच्च स्वरमें आवाज़ लगायी—

‘ओ... हो... हो... हो... ओ...
 ‘अरे बाह रे अफ्रीमकी बत्ती !’

गीत तुरन्त रुक गया। मानो चलते संगीतके बीच रेडियोका मीटर हट गया। छाता ऊँचाकर पथिकने एक बार इधर देखा। उसे क्या पता था कि उसकी अलभ्य संगीत-लहरीका रस लेनेवाले तीन-तीन व्यक्ति हैं। छाता उठानेपर उस व्यक्तिकी रूपरेखा सामने आयी। कोई ढलती उम्र का खुशहाल किसान प्रतीत हुआ। मुझे भारी शर्म-सी लगी कि ऐसे व्यक्तिके लिए इस मूर्खने ऐसी भद्दी आवाज कस दी। बेचारा पेड़के नीचे आया तो चेहरा सुर्ख हो गया था। मालूम होता था कि कहींसे पिटकर आ रहा है। जरूर उसे बहुत बुरा लगा था। बहुत गौरसे खेतमें पानी बराते जवानकी ओर एक बार उसने देखा। वह भी चुप था अब। शायद समझता था कि मैंने गलती कर दी। साहुकी गुनगुनाहट भी बन्द हो गयी थी। एक क्षणमें ही एक विचित्र विरसता छा गयी। कोई कुछ बोल नहीं रहा है। दो मिनट बाद साहुने पूछा कि कुछ लीजिएगा ? उसने दो पैसेकी बीड़ी ली। एक मुझे भी दी। साहुने भी एक जलायी। दो-चार फूँक पीनेके बाद आगन्तुकने वर्षा होनेपर बड़ी खुशी प्रकट की और कहा कि प्रजाके भागसे यह पानी पड़ रहा है।

जब वह चला गया तो मेरे मनमें ‘अफ्रीमकी बत्ती’ शब्द चक्कर काटने लगा। इस वाक्यको, ऐसा लगा, कि कहीं सुना है। इन चन्द शब्दोंमें क्या है जो करेण्टकी तरह छू गया ? वह कौन-सा विशेष रस रहा जिसकी वेगवती धारामें यह बरबस उस जवानके मुँहसे ढलक आया ? यदि वह जानता कि यह तान एक बूढ़े रईस किसान-द्वारा छेड़ी गयी है तो क्या वह इस प्रकार आवाज कसता ? क्यों नहीं कसता ? क्या गीतके मर्मने उसे विह्वल कर दिया ? यदि नहीं तो क्या वह कोरे स्वरपर रीझ गया ? ‘...परन्तु यह अफ्रीमकी बत्ती कहाँसे आयी ? क्या अर्थ है इसका ? क्या मर्म है इसमें ? क्यों प्रयोग है इसका ? सबसे बड़ी बात कि मुझे भी

यह क्यों नहीं अच्छा लगता है ? कानाको कुछ अलून-सा क्यों लग रहा है ? कौन-सा विशेष संस्कार उस पदके पीछे जुड़ा है ? ये सब प्रश्न स्मृतिको जब कुरेदने लगे तो धण-भरके बाद ही एक बरातका चित्र अन्तश्चक्षुओंके सामने उभरने लगा । कुछ ही वर्ष पूर्व उस बरातमें सम्मिलित होनेका मौका मिला था । साधारण बरात थी । थोड़ेसे लोग थे । मुझे उसकी स्मृति कुछ इस प्रकार है—

एक बगोचा । धुँधले अँधेरेमें बिछौनेपर कुछ लोग बैठे हैं । बगलमें कुछ हटकर दो-तीन आदमी बत्ती जलानेका प्रयत्न कर रहे हैं । आते-जाते और बात करते लोगोमें भारी अव्यवस्था है । द्वारपूजा हो चुकी है । बाजावाले बिछौना माँग रहे हैं । कुछ प्यासे लोग पानी खोजते-फिरते हैं । मालिक पाजामेमें बाहर हो रहे हैं । कभी बत्तीवालेको गाली देते हैं, कभी नाचवालोंको । इज्जत धूलमें मिल गयी । यह बरात क्या, गड़रोकी सभा हो गयी । कभी वे बेटीवालेपर विगड़ते हैं । पानी पीनेका भी प्रबन्ध नहीं । खिलायेगा क्या ? किसी प्रकार बत्ती ठीक हुई तो उन्हें थोड़ी राहत मिली । बोले, “अच्छा ! अब जरा ठीकसे आप लोग बैठ जायें, आज्ञा माँगनेका वक़्त हो गया ।” उसी बीच किसीने कह दिया, “नाचवाले अब तक नहीं आये ?” और फिर क्या था ? एक बार फिर मालिक भड़क उठे, “साले आते हैं तो पेटमें उलटा लटकाकर कोड़े लगाता हूँ । क्या समझ लिया है ?” उसी समय गाँवके कोनेपर लालटेन आगे किये कुछ लोग आते दिखायी पड़ते हैं । बराती ठीकसे बैठने लगते हैं । धण-भरमें ‘कबीजी’का सामन्तयुगीन तार स्वर मुखरित हो उठता है : ‘राजाराम ब्याहनको श्रायोरी.....!’ आज्ञा माँगनेवाले अब बैठ गये । सामान देखा जाने लगा । इत्र, गुलाब और पान आदिके पात्र सँभाले जाने लगे । तभी न जाने किधरमें अभागे नाचवाले बेहाल मूरत बनाये आ धमके । उन्हें देखते ही मालिक दहाड़ उठे, “भाग जाओ यहाँसे, नहीं तो खैरियत नहीं है । हरामी.....लुच्चे.....कमीने.....पाजी.....!” मालिकके इन शब्दोंपर ध्यान न

देकर वे दो हाथ जगह बनाकर बैठ जाते हैं। इस समयकी उनकी स्फूर्ति बिजलीको भी मारते कर रही है। पलक मारते ही अपने घूलि-धूसरित पैरोंमें एकने घुँघरू बाँध लिया और चट एक अधमेली केलेकी साड़ी लपेटकर खड़ा हो जाता है। बाल बिखरेके-बिखरे रह गये। उनपर जमी धूल वैसे ही बिराजती रही। प्यासके मारे ओठ सूख गये हैं। थकानके मारे चेहरा सूख गया है। पसीनेमें शराबोर कमीज उतारनेका मौक़ा कहाँ रहा ! बेचारेको बरातका पहला मौक़ा सँभालना है। कहीं सट्टेमें वट्टा न लग जाये। फिर मालिकका उग्र रुख। क्या हुआ जो वे लम्बी मंजिल तय कर भारी मुसीबतसे आये। उन्हें तैयार होना था। तैयार हो भी गये। यह नर्तक है। कलाकार है। महफ़िलमें कला और संगीतकी धारा बहाने वाला है। घुँघरू छमक उठे। सारंगी रिंग-रिंग कर उठी। तबला भी ठनकने लगा। एक क्षणमें यह सब हो गया। हाय पैसा ! और घुँघरूकी पहली छमकके साथ तुलसीके विनयका पद 'ऐसो को उदार जग माहीं' मुखरित हो उठता है। रही-सही कसर पूर्ण। यानी कला-संगीतके साथ साहित्यका योग। सुर्ती, बीड़ी, तम्बाकू, घड़ा, चारा और अन्य सामानकी कमी-बेशीकी रक-झक चल रही है। बातें भी होती हैं। प्रबन्ध चल रहा है और इधर साहित्य-संगीत-कलाकी त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। यह हल्ला-गुल्ला आज्ञा माँगनेवाले लोगोंके चले जानेके उपरान्त भी चलता रहता है। पानी पीनेवाले मिठाई ले रहे हैं। पानीपर भारी चोंथ है और इन सबका कोई प्रभाव नृत्य-मण्डलीपर मानो नहीं है। लोग आते हैं, जाते हैं, उठते हैं, बैठते हैं। एक गाना खत्म होता है, दूसरा उठता है। धीरे-धीरे लोग स्थिर होने लगे हैं। एक दल आया। भरपूर पान चबाते एक सज्जन हुक्म देते हैं, 'का यह सब भजन-मजन चोंकरता है ? कवनो मरखाह (चुभती) तरजके चीज उठाओ।' और तुरन्त मीटर बदल जाता है। 'हम ना पहिरबि हो झूलनिया लोगवा...'। झूम उठते हैं वे और परमानन्दमें विह्वल होकर गरदनसे बल खाते हुए उछवसित

होकर बोल उठते हैं—

‘ओ...हो...हो...हो.....’

अरे बाहू रे अफ़ीमकी बत्ती ।’

तो यही मेरा उक्त पदसे पहला परिचय है और पुनः आज इसे
मुनकर अनेक विचारणीय प्रश्न मेरे मनको मथ रहे हैं ।



गाँधीजी और कालीमाई

‘अखिल भारतीय गाँधी-शिक्षा संघ’के मन्त्री श्री प्रेमशंकर सेवक आज ग्राम-भ्रमणके सिलसिलेमें आये। बड़े भले आदमी हैं। सादा और पवित्र जीवन है। तीन-चार घण्टेके परिषयमें ही हृदयमें घर कर गये हैं। इनको देखकर लगता है जैसे आदमीका हृदय खुल जाये तो फूलसे अधिक सौरभ उसमें है। प्रत्येक क्रिया नपी-तुली और प्रेरक है। मुझे कोई ‘शिक्षा’ जैसी चीज़ उन्होंने नहीं दी परन्तु प्रत्येक क्षणमें मैंने नयी-नयी प्रेरणा पायी है। सत्संग भी क्या पारस है ! यह सोचकर ग्लानि हो रही है कि जिस युगमें गाँधी-जैसा महामानव पैदा हुआ उस युगका आदमी कैसे हीनका-हीन ही रह गया। भारतमें स्वराज्य होते ही उनकी सारी शिक्षाएँ भुलाकर लोग स्वार्थके मांसपर गिद्धकी भाँति टूट पड़े। आज तो गाँधी बस जै बोलनेके लिए रह गये हैं। आचार, व्यवहार, रीति और नीति सबपर-से गाँधीकी छाया जैसे हटती चली जा रही है। सेवकजी कहते हैं, “आज गाँधीजी जैसे किताबोंमें बन्द होते चले जा रहे हैं। दस वर्षोंमें ही जैसे वे सैकड़ों वर्ष पुराने हो गये। गाँवोंमें तो जैसे उनका कुछ भी नहीं रह गया।”

“और क्या जनाब !” मैंने कहा, “यही देखिए कई वर्ष हुए स्वराज्यके साथ गाँधी-भक्तिकी एक सरकारी लहर आयी और हर गाँवमें गाँधी-चबूतरे बने। आज उनकी क्या हालत है ? अधिकांश गाँवोंमें तो उनका नाम-निशान तक भी नहीं है।”

सेवकजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। बोले, “अच्छा ! क्या सचमुच गाँधीजीके नामपर बना चबूतरा गाँवोंमें उखाड़ फेंका गया ? मास्टरजी, मैं देखना चाहता हूँ। क्या आप कष्ट करेंगे ?”

“क्यों नहीं” मैंने कहा, “चलिए आज ही आपको चार-पाँच गाँवोंमें घुमा दें। रविवारका दिन है। हमें भी आनन्द रहेगा। मगर.....”

“हाँ-हाँ, मैं पैदल चल सकूँगा। अच्छी तरह मालूम है कि हमारे गाँवोंमें सवारी तो क्या पैदल चलने लायक भी रास्ता कठिनाईसे होता है। परन्तु इसका रोना भी क्या है?” सेवकजीने कहा।

भोजनके बाद थोड़ी देर आराम करनेके उपरान्त हम लोग चल दिये। सेवकजीकी राय हुई कि एक क्रमसे गाँवोंको देखा जाये और शामको स्टेशनपर पहुँच जाया जाये।

यह करलाडीह गाँव है। सजबकी बात है, किसीने नहीं बताया कि गाँधी-चवूतरा कहाँ है? ग्राम-सभापतिके यहाँ पहुँचे तो उन्होंने वह स्थान दिखाया जहाँ गाँधी-चवूतरा बना था। गाँवके बाहर एक गड़ही है। उसके किनारे बँववारीके पाम थोड़ी ऊँची ज़मीन है जिसपर घाम-फूम उग आयी है। बिना नाकपर रुमाल लगाये एक मिनट ठहरना कठिन है। हम लोग हट आये। सेवकजीके यह पूछनेपर कि क्या गाँधी-चवूतरा किसी बढिया स्थानपर नहीं बनाया जा सकता था, ग्राम-सभापतिने बताया कि कोई आदमी ज़मीन देनेपर तैयार न था। मजबूर होकर इस स्थानपर बनाया गया। उस दिन गाँववालोंने मिलकर इसकी सफ़ाई की। हवन हुआ, कीर्तन हुआ और मिठाई बाँटी। इसी जगह तिरगा झण्डा गाड़ दिया गया। वह महीनों तक उड़ता रहा। हवासे फटकर जब वह एकदम उड़ गया तो उसका बाँस पटवारीके घर खटियाकी पाटी बनानेके लिए चला गया। तबसे न झण्डा गाड़ा गया और न किसीका उधर ध्यान गया।

सेवकजीने पूछा, “तो क्या आप लोग गाँधी-जयन्ती और पन्द्रह अगस्तका उत्सव आदि नहीं मनाते हैं?”

“स्कूलपर मास्टर लोग मनाते हैं।” सभापतिने कहा।

“और आप लोगोंने गाँधीजीको भुला दिया?”

“सुनिए साहब ! गाँधीजी जिन लोगोंको सुराज दे गये हैं वे लोग मनाते हैं । वे लोग उनका माला जपते हैं । हम लोग किस खेतकी मूली हैं ? सरकारका जैसा हुकुम हुआ बजा दिया । बस छुट्टी ।”

सेवकजीने डायरी निकाली, बहुत-सी बातें नोट कीं और हम लोग आगे बढ़े ।

यह गोबिनपुर है । गाँवके चारों ओर पानी है । एक ओरसे किसी प्रकार हेलकर गाँवमें घुसनेका रास्ता है । राम-राम करते बैतरनी पार हुए । एक लड़का गाँधीका ‘चउतरा’ दिखानेके लिए ले चला । गाँवकी खोरीसे ४-५ फुट ऊँचाईपर बने एक बैठकखानेकी ओर इशारा करके उसने कहा कि यही है । हम लोग ऊपर चढ़ गये और लड़का एक ओर चला गया । बैठकमें एक बूढ़ा किसान मिला । शायद आँखोंसे कम दिखायी पड़ता है । पहुँचते ही उसने बड़बड़ाना शुरू किया, “सुराज काल हो गया रे भाई ! कह दिया कि हाथ खाली है । चुल्हे-चौकेका सौहड़ नहीं बैठता । इधर अमीन लोग मालगुजारीके लिए छातीपर सवार । बताओ भैया करेजा फाड़कर लगे ?”

“मालगुजारीवाले हम लोग नहीं हैं बाबा । हम लोग सिर्फ गाँधी-चबूतरा देखने आये हैं । यही गाँधी-चबूतरा है ?” सेवकजीने पूछा ।

“हाँ यही है । क्या हुकुम है ?”

“कुछ नहीं, यहाँ कुछ पूजा-पाठ या जलसा होता है ?”

“हाँ भैया, रोज रामायन होता था । अब गाँवमें ऐसी गोलबन्दी हो गयी है कि कोई किसीके दरवाजेपर नहीं जाता । तब भी छठें-छमासे कुछ हो जाता है ।”

“गाँधीजीके बारेमें कुछ नहीं होता ?”

“अब गाँधी क्या करे ? आँखोंसे कुछ दिखायी नहीं पड़ता । एक वक्त था कि जब रामायनपर पंचम लगाता था तो बड़े-बड़े नवहा लोग उखड़ जाते थे ।”

“आप यह क्या कह रहे हैं ?”

“सही कह रहा हूँ । जमाना बदल गया । यह उस समयकी खा-पीकर बनायी गयी देह है । जो खाया-पीया गया वह आजके लोगोंको सपनेमें भी नहीं दिखायी पड़ेगा । एक रुपयेका चार सेर घी मिलता था, २० सेर चावल और ३० सेर गेहूँ.....”

सेवकजीने धीरेसे मेरे कानमें कहा कि यह पागल तो नहीं है ? मैंने उस किसानसे पूछा, “आपका नाम क्या है बाबा ?”

“नाम तो हमारा असली टीमलसिंह है परन्तु लोग हमें गाँधी-गाँधी कहने लगे ।”

अब बात समझमें आयी । गाँधी-चबूतरा पूछनेपर लड़केने समझा कि ‘गाँधीका दरवाजा’ पूछ रहे है और यह दिखा गया । बड़ी हँसी हुई । दो-चार आदमी और आ गये । जंगलमें भूले रास्तेको खोजनेमें जो परेशानी होती है वैसी ही परेशानी गाँवमें गाँधी-चबूतराका पता लगानेमें हुई । गड़हीके तीरपर-से गाँधी-चबूतरा दिखाया गया परन्तु वहाँ उसका कोई चिह्न नहीं था । वहाँ तो दूर-दूर तक पानी फैला था । मालूम हुआ कि यह पानी बाढ़के कारण भर गया है । जिस समय वह चबूतरा बना ज़मीन खाली थी । परतीमें एक दिन स्कूलके लड़कोंने एक जगह थोड़ी मिट्टी फेंक दी और सभापतिने एक झण्डा गाड़ दिया जिसे रातों-रात कोई चुरा ले गया । अब अधिकांश मिट्टी बह गयी है और स्थान ज़मीन-सा चौरस हो गया है । जिस साल बना उस साल ऊँचा था और रामलीलामें ननकू तमोलीने उसीपर पानकी दूकान लगायी थी ।

“बाढ़का पानी निकल जानेपर आप लोग इसकी फिर मरम्मत करेंगे ?” सेवकजीने पूछा ।

“मरम्मत किस चीज़को होगी ? वह तो सुराजकी तरह ढह गया । हर साल ऐसी काँप्रेसी बाढ़ आती है कि बह गया । अब क्या मरम्मत होगी ?” एक आदमीने कहा ।

“सरकार इतना पैसा बाँध और नहर बनानेमें खर्च करती है, क्यों नहीं गाँव-गाँवमें पक्का गाँधी-चबूतरा बनवा देती है ?” एक दूसरेने कहा ।

सेवकजीने नोट किया और आगे बढ़े । रास्तेमें उन्होंने कहा कि गाँववाले इतने अशिक्षित हैं, यह बात कल्पनामें भी नहीं आती ।

मैंने कहा, “अजी गाँवोंमें आदमी कहाँ है ? ये तो शकल-सूरत-भरसे आदमी हैं । शिक्षाके अभावने इन्हे पूरा बानर बना दिया है ।”

“मैं यदि भारतका प्रधान मन्त्री होता तो सारी पंचवर्षीय योजनाओंको तोड़-ताड़कर पहले गाँववालोंके पढ़ने-लिखनेकी ठोस व्यवस्था करता । इसी कच्चे धागेके पुलपर-से प्रजातन्त्रका हाथी पास होगा ?” सेवकजीने बड़े दुःखके साथ कहा और हम लोग अब एक छोटे-से टोलेके पास आ गये ।

यहाँ बहुत पता लगानेपर भी गाँवों-चबूतरा नहीं मिला तो आगे बढ़े और सेवकजीने अपनी डायरीमें नोट किया,

“पड़रवा गाँवमें लोग कहते हैं कि हम लोग गाँधीमाईका चौरा नहीं बनाये हैं । यहाँ कोई इस नयी भवानोको नहीं खेलता है । उनकी सवारी किसी आदमीपर नहीं आती । समय माताका आसन एक आदमीपर आता है और वही सुरजही भवानीको गुहराता है । इन लोगोंकी बातें हमारी समझके बाहरकी हैं ।”

दुरजनपुरमें पहुँचकर जब सेवकजीने बीस हाथ लम्बा, आठ हाथ चौड़ा और तीन हाथ ऊँचा पक्का गाँधी-चबूतरा देखा तो उनका चेहरा खिल उठा । बोले, “गाँवमें अभी भी जान है । देखो कैसा विशाल चबूतरा बन गया है ।”

परन्तु निकटसे निरीक्षण कर उनका उत्साह फीका पड़ गया । स्थान बहुत गन्दा, बेढंगा और बेमौक़े । गाँवसे अलग एक बगीचा, पास ही पानीका नाला, अनेक गन्दे डबरे जिनमें भैंसोंका झुण्ड लोट रहा है । घास-फूस, लकड़ियाँ-गोबर और सड़ी हुई पत्तियाँ उस स्थानको एकदम

असुन्दर बना रही हैं। सब देखकर लगता है जैसे कोई आदमी यहाँ नहीं आता। हाँ, चबूतरेपर चढ़नेके लिए किसी ओर सीढ़ी भी नहीं। एक ओर किसी जोमइल जानवरके रगड़नेसे कुछ ईंटें भरककर गिर भी गयी हैं। स्थान पूरा मुनसान। गन्दगीके बीच यह गांधी-चबूतरा मानो अभिशप्त मजार है।

सेवकजी चबूतरेपर बैठ गये। गहरी उदासी चेहरेपर झलक आयी। उन्होंने पानी पीनेकी इच्छा प्रगट की। एक आदमी गया और एक बाल्टी शरबत घोल लाया। 'नहीं, नहीं' करते भी दोनों आदमी भरपूर रस पी गये।

सेवकजीने पूछा, "क्यों भाई, यह गांधी-चबूतरा यहाँ कैसे बन गया?"

जितने आदमी थे एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे। एक मिनट तक खामोशी छायी रही। अन्तमे एक आदमी आगे आया और बोला,

"गाँव बड़ा है। जैसे झोंक आ गयी वैसे हो गया।"

"कितनी आबादी है?"

"यही आठ-दस हजारकी है।"

"इतने आदमियोंमे कोई समझदार नहीं है?"

"यही तो कठिनाई है। यहाँ सभी समझदार हैं। कोई किसीकी बात माननेवाला नहीं। कोई मालिक नहीं।"

"क्यों सभापतिजी है न?"

"हैं सभापति जरूर परन्तु वे कहेंगे आम तो आधा गाँव कहेगा इमिली। वे दखिनटोलके हैं।"

"तो यहाँ दोनों टोलमें मेल नहीं है?"

"मेल होता तो यहाँ कैसे बन जाता। दोनों दलोंमे खींचा-तानी शुरू हुई। दोनों अपनी-अपनी ओर बनाना चाहते थे। कई दिन झगड़ा हुआ। लाठी निकली। नतीजा हुआ कि इस दोनों टोलकी शराकत ज़मीनमें गांधी-चबूतरा फेंक दिया गया।"

“यहाँ चबूतरेपर सभा होती है कि नहीं ?”

“सभा-वभा कुछ नहीं महाराज, यही कहो कि चबूतरा बन गया । रामलीलाकी बेहरी (चन्दा) जमा थी । गाँवमें एक आदमी मर गया । लीला बन्द हो गयी । हुआ कि गाँधी-चबूतरा बन जाये नहीं तो रुपया गप्प हो जायेगा ।”

“क्या कहा ?” एक आदमीने आते-आते टोका, “तुम्हारे बापका रुपया था ? लाई लगा रहे हो ? पंचायत इस्पट्टर लाट साहब नहीं हैं कि घोरकर पी जायेंगे ।”

“देखो चउधुरी जबान सँभालकर बोलो । ये पंचायत इन्स्पेक्टर साहब नहीं हैं, राहगीर हैं । पूछते थे, बता रहा था । क्या खराब कहा कि गरम हो रहे हो ?” उस पहले आदमीने कहा ।

“तुम हमारा गरम होना देखोगे ? मुँहमें लाठी ठेल दूँगा । क्या समझते हो ?”

“हमारे हाथमें क्या दही जमायी गयी है ?”

“तो क्या कर लोगे ?”

“तुम क्या कर लोगे ?”

“क्या कर लूँगा ? ले आओ जो लाठी, बहुत मतवाला हो गया है ।” वह चिल्लाया ।

गाँवसे हल्ला सुनकर ग्रामीण दौड़े । लाठियाँ खड़खड़ाने लगीं । दोनों दलसे हाँव-हाँव, गाली-गलौज, उछल-कूद और गोत्रोच्चार होने लगा ।

सेवकजीको काठ मार गया । अब धीरेसे सरक जाना ही उचित था । सेवकजीने कहा, “अजब हाल है भाई ! भगवान् रक्षा करें नुकीले सींगवाले मनियाते बैलोंसे ! ये ऐसे ही रहें तो सारा विकास उखाड़ फेंकेंगे ।”

दुरजनपुरसे निकले तो दिन थोड़ा था । अब स्टेशन चलनेका विचार था । गाड़ी जल्दी ही आनेवाली थी । हम लोग तेजीसे चले परन्तु गाड़ी छूट गयी । बड़ा खेद हुआ । सेवकजीने कहा, “भगवान् जो करता है

अच्छा और लाभदायक ही रहता है। अब सवाल है रात बितानेका।”

“कोई बात नहीं। पास ही एक गाँव है। यहाँ शिक्षितोंकी संख्या क्षेत्र-भरमें अधिक है। यहीं रात बितायी जाये और यहाँका गांधी-चबूतरा भी देखा जाये। कल सवेरे ९ बजेकी गाड़ी आप पकड़ लेंगे और मैं मदरसेपर चला जाऊँगा।”

बेनीपुर गाँव। गलियोंमें खड़जा लग गया है। अधिक मकान पक्के हैं। हाई स्कूल, पोस्ट ऑफिस, बीजगोदाम, थाना और अनेक सार्वजनिक संस्थाएँ हैं। गाँवमें एक भारी नेता है। कहते हैं, बेताजके बादशाह हैं। साफ़-सुथरे लोग हैं। सभापतिने हम लोगोंकी बड़ी खातिरदारी की।

सवेरा होनेपर जलपानके बाद बेनीपुरका गाँधी-चबूतरा देखने चले।

हाई स्कूलके पश्चिम ओर एक पाकड़का भारी पेड़। पेड़के नीचे जमीनकी सतहसे कुछ ऊँचा एक टीला। टीलेके आसपास आगपर कई कराहोंमें खोलता दूध। आसपास बिखरी फूल-मालाएँ। पास ही एक कच्छा मारे विचित्र मुद्रामें अघेड़ आदमी। पास ही औरतोंका विशाल समुदाय और एक ओर पुरुष-वर्ग। पूरी शान्ति। औरतें कुछ गा रही हैं।

सभापतिजीने पाकड़के पेड़के नीचेका टीला दिखाया और बोले, “यही गाँधी-चबूतरा है।”

“तो क्या आज गांधीजीकी पूजा हो रही है?” सेवकजीने प्रसन्न होकर पूछा।

“नहीं, यह तो कालीमाईकी पूजा हो रही है।”

“कालीमाई कहाँ हैं?”

“वह हैं।” पासके एक सुन्दर बने देव-स्थानकी ओर सभापतिजीने संकेत किया।

“इतना सुन्दर चबूतरा! पंचायतने बनवाया?”

“नहीं, जनताने।”

“यह पूजाका प्रबन्ध कैसे हुआ है?”

“अपने-आप ! जनताने किया है ।”

“अपने-आप ? जनता-द्वारा ? आश्चर्य !”

“जो ! हर साल झण्डा बदल जाता है । खटोला नया हो जाता है । कालीजीके चबूतरेकी मरम्मत हो जाती है ।”

“और गाँधी-चबूतरेका क्या होता है ?”

“कुछ नहीं, कोई दिलचस्पी नहीं लेता । वह तो सरकारी आर्डर था गाँधी-चबूतरा बन गया । फिर धीरे-धीरे देख ही रहे हैं, क्या हो गया है ।”

सेवकजी जब ट्रेनपर सवार हुए तो मैंने अपनी डायरी बढ़ा दी और निवेदन किया, “हमारी डायरीपर भी कुछ लिखकर हस्ताक्षर कर दें ।”

उन्होंने लिखा :

“इस देशकी साधारण जनता गाँधीजीसे अधिक कालीमाईसे प्रभावित है ।

—प्रेमशंकर सेवक ।”



प्रेत-लीला

कल रातकी बात है। खा-पीकर निश्चिन्त हुए तो विनोदने कहा, “आजके युगमें भूत-प्रेतपर विश्वास करनेकी बात बहुत बेढंगी है, परन्तु जिस प्रकारकी घटना पण्डितजी बता रहे हैं, उसपर सोचना होगा। ज़रूर कोई बात है। क्यों पण्डितजी ?”

पण्डितजीने कहा, “हाँ राजन् ! देखिए यह पैरकी पिण्डलीपर चिकोटीका गहरा दाग। मैं एकदम होशमें था। पहले तो ऐसा लगा कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। परन्तु बैठकर हाथ-मुँह सहलाया। चिकोटी काट लिया और कुछ स्फुट ध्वनिमें दोहराया कि मैं बिलकुल होशमें अपनी इन दोनों आँखोंसे यह दृश्य देख रहा हूँ।”

“अच्छा, पूरी घटना एक बार फिर कह जाइए।” मैंने कहा। पण्डितजीने कहना प्रारम्भ किया,

“पिछली रात मैं ठीक इसी जगह सोया हुआ था। लगभग आधी रातको मेरी नींद खुली। उत्तर-पश्चिमके कोनेमें जो वह लगभग डेढ़ मील दूर बगीचा है, उसीमें मुझे पचोस-तीस बत्तियाँ दिखायी पड़ीं। हलके नीले रंगका मनोहर और लुभावना प्रकाश था। कोई बत्ती स्थिर नहीं थी। झुक.....झुक.....झुक.....झुक.....कर रही थीं। मालूम होता था कि सारे बगीचे-भरमें घूम रही हैं। अचानक तेज़ीसे सब एक स्थानपर एकत्र जैसे हो गयीं और घेरेमें आकर गायब हो गयीं। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। बादमें हनुमानचालीसाका पाठ करता हुआ घण्टों तक बैठा रहा, परन्तु वह अद्भुत दृश्य पुनः आँखके सामने नहीं आया।”

विनोदने कहा, “मित्रो ! पण्डितजीकी बातपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं। अब विचारणीय है कि वास्तवमें क्या बात है ? वह

कैसी बत्तियाँ थीं ? आमकी फ़सल बीते कई महोने हो गये । अतः यह भी नहीं कहा जा सकता कि टॉर्च लेकर आमवाले बगीचेमें घूम-घूमकर आम बीन रहे हैं ! आजकल तो बगीचेमें ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए रातको कोई वहाँ जायेगा ! बरातका मौसम भी नहीं है । कोई गाँव भी वहाँ नहीं है । बड़ा भारी अचरज है ।”

“अजी, जनाब,” मुन्शीजीने कहा, “ये सब स्थान तो बहुत बदनाम हैं । बड़े-बड़े भारी प्रेत यहाँ रहते हैं । आप ज़ोग यह तो मानेंगे ही कि प्रेत एक योनि है । जैसे मनुष्य परस्पर आमोद-प्रमोद करते हैं वैसे ही वे भी जश्न करते हैं । कभी-कभी संयोगवश आदमीको दृष्टि उनके जलसेपर पड़ जाती है । वही सब रहे होंगे ।”

“सब मूर्खताकी बातें हैं,” पाण्डेने कहा, “गाँवोंके आसपास या खेतोंमें हड्डियाँ पड़ी होती हैं । उनमें-से एक प्रकारकी गैस निकलती है । उसे ही लोग भूत-प्रेत कहते हैं ।”

“यदि आपकी बात सत्य हो,” नारायणने चारपाईपर बैठते हुए कहा, “तो भी यहाँ नहीं लागू होगी, क्योंकि वहाँपर जहाँकी यह घटना है एक भी हड्डी कहीं नहीं है । मैं तो प्रायः उसी रास्तेसे गाँवपर जाता हूँ । एक-एक इञ्च जमीनसे परिचित हूँ । दूसरे वहाँ ब्रह्म बाबाका स्थान है । समूचे बगीचेको लोग साफ़ रखते हैं ।”

“अरे यारो ! बात यह है,” मुन्शीजीने कहा, “ब्रह्म बाबापर भूतोंने लुकाठ लेकर धावा बोल दिया और क्षण-भर जमकर युद्ध हुआ है ।” और खूब जोरसे हँस पड़े ।

पण्डितजी दुःखपूर्वक बोले, “देखिए एक तो रातका वक्त है । दूसरे आप लोग भूतकी बात कर रहे हैं । इतने जोरसे हँसनेपर हमारा कलेजा दलकने लगता है । सच बताता हूँ । रात-भर नींद नहीं आयी और अब भी जैसे वह घटना आँखोंमें नाच रही है ।”

“व्यर्थ भय है ।” पाण्डेने कहा, “ज़रूर वे कोई डाकू रहे हैं । या तो

सब कहीं जा रहे थे या लूटके मालका उस एकान्त स्थानमें बँटवारा कर रहे थे ।”

पण्डितजीने टोका, “.....लेकिन वहाँ बत्तियोंका प्रकाश रहा कितने क्षण तक ? मैंने साफ़ देखा कि कोई बत्ती स्थिर नहीं है । आठ-दस सेकेण्डमें ही बँटवारा कैसे हो जायेगा ? अगर कहीं जा रहे थे तो रास्ता देखनेके लिए एक बत्ती काफ़ी होती । बीसों बत्ती जलाकर सारे बगीचेमें दीपावली करनेकी क्या तुक थी ?”

“अरे भाई, मैंने तो पहले ही कह दिया ।” मुन्शीजीने जोर देकर कहा, “ज़रूर वे प्रेत थे । सुनिए, ठीक इसी ढंगकी एक घटना, जो एकदम सत्य है, आप लोगोंको सुनाता हूँ । साथ-साथ आप लोग कान पकड़ लें कि रातमें इस प्रकारकी बत्तियाँ जब आप देखें तो भगवान्‌का नाम लें । वहाँ जाने या उनके बारेमें कुछ जाननेका नाम न लीजिए । ऐसेमें प्राणोंपर खतरा आ जाता है । अच्छा, तो सुनिए—

“कनवा गाँवमें एक प्रसिद्ध ज़मींदार थे । उनकी धाक हाकिम-हुक्काम सभी मानते थे । एक दिन वे घरपर सोये हुए थे कि चौकीदार हाथमें लाल-टेन लिये और कन्धेपर बल्लम सँभाले हुए उनके सामने पहुँचा । अदबके साथ जगाकर उसने सलामी दी और बोला, ‘सरकार ! कलक्टर साहबने आपको सलाम कहा है । गाँवके उत्तर ओर जो डीह है उसीपर खेमा पड़ा है ।’

“ज़मींदार साहब आश्चर्यमें पड़ गये । बोले, ‘आधी रातको क्यों बुलाया है ? यह तो मिलनेका कोई वक्त नहीं है ? फिर कलक्टर साहब आते हैं तब वे डाक-बँगलेपर रहते हैं । वहाँ सुनसानमें क्यों पड़ाव पड़ा है ? हमें तो बिल्कुल खबर ही नहीं थी । जाओ, कह देना कि कल आयेंगे ।’

“चौकीदारने बड़ी नम्रतासे कहा, ‘तो साहबसे जाकर क्या कह दूँगा ? बाबूजी ! आपके दर्शनके लिए साहबने बड़ी अर्ज़ की है । हम लोग जल्दीमें

आये । शामको तो अभी पहुँचे हैं । खेमा लगाते दस बज गये । गाँवोंमें लोग जल्दी खाकर सो जाते हैं, इसीसे आधी रात मालूम होती है । डाक-बैंगलेपर कोई और साहब आये हैं । सरकार, बड़ी मेहरबानी होगी यदि आप तशरीफ़ ले चलें । कल सवेरे ही साहबको कई गाँवोंका दौरा करना है । अब आपकी जैसी मर्जी !'

“जमींदार साहब भारी असमंजसमें पड़ गये । अन्तमें उसके साथ चल पड़े । गाँवके बाहर होते ही एक भारी तम्बू और उसमें जलते अनेक पेट्रोमेक्स दिखायी पड़े । पहुँचनेपर सचमुच ही सुपरिचित कलक्टर साहबने हँसकर जमींदार साहबसे हाथ मिलाया और बगलमें बैठनेके लिए एक कुरसी दी । कुशल-समाचारके बाद कलक्टर साहबने कहा कि आपके ज़िम्मे जो मालगुजारी बाक़ी है उसे आप कृपया इसी समय चुका दें बड़ी ज़रूरत है ।

“थोड़ी देर इधर-उधरकी दो-चार बातें और करके जमींदार साहब चौकीदारको लेकर घरकी ओर चले । थोड़ी दूर जानेपर उन्होंने सोचा कि यहाँ साहबके यहाँ कागज़ देखकर यह जान लेना चाहिए कि कितना रुपया हमारे ज़िम्मे है । इसे जाननेके लिए वे पीछे घूमे परन्तु यह क्या ? उनके पैर तलेकी ज़मीन खिसकने लगी । न वह चौकीदार, न वह खेमा और न वह कलक्टरका पड़ाव ! केवल मुनसान डीह और उसपर जोरका हरहराता हुआ पीपलका पेड़ था । तभी उन्हें याद आया कि यहाँपर बड़े-बड़े भूत रहते हैं और मारे भयके बेहोश होकर गिर पड़े । किसी प्रकार होश हुआ तो घर आये । दूसरे दिन भीषण ज्वरमें उन्हें अकबक करते हुए पाया गया और दो दिन बाद मर गये ।”

“इस प्रकारकी घटनाओंसे इनकार नहीं किया जा सकता ।” नारायणने कहा, “मैं भी आप लोगोंको प्रेत-लीलाका एक अजब किस्सा सुनाता हूँ । बात अभी हालकी है । मेरा नौकर गाड़ीपर चावल लदवाकर आ रहा था । रात हो गयी । जब वह महुआबारीसे आगे बढ़ा तो दिखायी

पड़ा कि मैदानमें तम्बू लगा है। महफ़िल जमा है। नाच हो रहा है। बत्तियोंके प्रकाशसे दिन हो गया है। गानेवालेका गला बहुत पक्का है। नौकरने गाड़ीवानसे कहा कि भाई रोको थोड़ी देरके लिए गाड़ी ज़रा गाना सुन लिया जाये। गाड़ीवान समझदार था उसने कहा कि चुप-चाप राम-राम करते चले चलो। भादोमें कहीं बरात आती है? बात समझमें आयी तबतक सारी रौनक हवा हो गयी। इतनेमें दो काली-काली शक्लोंने आकर गाड़ी छेक दी। भड़ककर बैल भाग चले। गाड़ीवान डीह बाबाको गुहराने लगा। किसी प्रकार जान बची। हमारा नौकर महीनों बीमार था। मेरा ख्याल है कि ज़रूर ही ऐसी कोई बात रही है। आप क्या सोचते हैं मास्टरजी?”

“मैं तो भाई साहब, इसमें कतई विश्वास नहीं करता।” मैंने कहा, “यह सब या तो कोरा भ्रम है या ग़प है या नासमझी है या कमज़ोरी है। भूत-वग़ैरह कुछ नहीं। भय ही भूत है।”

“तब क्या मैं असत्य कहता हूँ? और यदि आपका कहना सत्य है तो इसका क्या रहस्य है? बताइए न?” पण्डितजीने कहा।

मैंने कहा, “मैं आपकी घटनाका रहस्य तो नहीं बता सकता पर एक घटना बताऊँगा।”

“आप क्या बतायेंगे?” नारायणने कहा, “मेरे सामने तो भूत साक्षात् आकर खड़ा हो गया। पूरा सात फ़ुटका लम्बा जवान! नंग-घड़ंग। प्रातःके भ्रममें दो बजे रातको ही चल दिया था। खैरियत थी कि गीताकी पुस्तक मेरे पास थी। तबसे उस रास्तेसे जब जाता हूँ, वहाँ पहुँचनेपर रोंगटे खड़े हो जाते हैं! आप कहते हैं भूत-वूत कुछ नहीं! तब यह क्या है?”

“यही तो बता रहा हूँ।” मैंने कहा, “आपके सामने तो सात फ़ुटका जवान खड़ा हो गया। मेरे सामने तो पहले सियार बनकर आया, फिर गदहा हो गया, फिर कुत्ता हो गया, फिर हवा हो गया! आप

सुनिए तो !

“स्टेशनसे आ रहा था । अँधेरा हो गया । जेठका कृष्ण पक्ष था । तालमें आया तो सुनसानमें भय लगने लगा । सतर्क होकर चलने लगा । अचानक रास्तेपर ठीक बीचोबीच एक जानवर आकर बैठ गया । वह सियार-जैसा लगा । कुछ आगे बढ़ा तो मालूम हुआ कि गदहेका बच्चा है । मेरी चाल बहुत धीमी हो गयी । अब वह सूअर-सा दिखायी पड़ने लगा । मैं बड़े संकटमें पड़ गया । भूतसे पहूला मोर्चा था । पूरी शक्ति समेटकर धड़कते दिलसे आगे बढ़ रहा था क्योंकि सुन रहा था कि पीछे भागनेपर भूत और जोरदार हमला करते हैं । फ़ासला अब १०० गज़का रह गया । मैंने ललकारकर हाँक लगायी । वह टससे-मस नहीं हुआ । मैं रुक गया । जीवन-भर भूतका विरोध किया अब सारी चतुराई निकल जायेगी । तभी याद आया कि मेरे बाबाके बारेमें लोग कहते हैं कि दो बार भूतसे कुश्ती लड़ चुके थे । एक बार तो काफ़ी घायल हो गये थे । आज हमें भी उनकी भूत-युद्धकी परम्पराको निभाना था । पूरा हनुमानचालीसा पढ़ गया । न जाने कहाँकी शक्ति आ गयी । एक खूब भारी ढेला खेतसे उखाड़ लिया और दोनों हाथसे ऊपर उठा लिया । आगे बढ़ा । मुश्किलसे दस गज़की दूरी रही । जी कड़ाकर पूरी ताक़तसे ललकारकर वह ढेला उसपर दे मारा । वह ढेर हो गया । पास जाकर देखा तो वह भी मिट्टीका एक ढेला था । किसी शरारती चरवाहेने खेतसे उखाड़कर बीच रास्तेपर रख दिया था । यदि मैं दूसरी ओरसे कतराकर भाग खड़ा हुआ होता तो ज़िन्दगी-भर नमक-मिर्च मिलाकर उस कहानीको प्रेत-लीला कहता फिरता ।”

“मनबोध भाईने सुनायी तो बड़ी मज़ेदार घटना ।” विनोदने कहा ।

नारायणने टोका, “मगर इसीसे यह नहीं कहा जा सकता कि भूत-प्रेतकी बातें ग़लत हैं । औरोंकी बात छोड़ दीजिए तो भी यह पण्डितजी-वाली घटना है । एकदम आँखों-देखी बात है ।”

“मैं नहीं मान सकता साहब !” पाण्डेने कहा, “अगर कोई हमें दिखा दे तब मैं मानूंगा ।”

“मैं आप लोगोंको दिखा सकता हूँ ।” एक कोनेसे हबीब शाह निकल आये और बोले, “खुदा झूठ न बोलवाये । अभी-अभी दिखा सकता हूँ । उसी जगह दिखा सकता हूँ जहाँ पण्डितजीने देखा है ।”

“क्या कह रहे हो भाई ?” हमने कहा ।

“सच कह रहा हूँ ।” हबीबने कहा ।

“तो क्या यह विद्या भी जानते हो ?”

“जरूर ! मगर मशहूर होना नहीं चाहता ।”

“दस रुपया इनाम ।” पाण्डेने कहा ।

“शिव ! शिव ! जो हुआ सो हुआ । जाने दो भाई यह सब झमेला । भूत-प्रेतसे खेलवाड़ नहीं किया जाता ।”

“नहीं, जरूर देखा जाये ।” विनोदने कहा ।

“कोई खतरेकी बात नहीं पण्डितजी !” हबीबने कहा, “आधे घण्टेके अन्दर वे जीव आ जायेंगे । आप लोग खामोशीके साथ उत्तर-पश्चिमकी दिशाकी ओर देखते रहें । ठीक जैसा वर्णन पण्डितजीने किया है वैसा ही आप लोग देखेंगे । बादमें अगर आप लोग चाहेंगे तो इस घासके मैदानमें कलकटर साहबका खेमा लग जायेगा, या बरातकी महफ़िल लग जायेगी ।”

“क्या मजाक कर रहे हो ?” विनोदने कहा ।

“कतई नहीं । साढ़े नौ बज रहे हैं । दस तक आप प्रतीक्षा करें । कुछ और देर हो सकती है परन्तु बात ग़लत नहीं हो सकती । आप देखते रहें ।”

हम लोगोंने अँधेरेमें आँखें गड़ा दीं । भारी उत्सुकता थी । क्या सचमुच उस सुनसान बगीचेमें अचानक दीपावली हो जायेगी ? क्या सचमुच भूत नाचेंगे ?

“देखिए,” हबीबने कहा । और हम लोगोंने देखा कि सचमुच लुकलुक

करती हुई अनगिनत बत्तियाँ उस दिशासे क्षण-मात्रके लिए दौड़ गयीं । साथ ही पूर्ण सावधान होनेके कारण कुछ ध्वनियाँ भी सुनायी पड़ीं और वास्तवमें ये ध्वनियाँ ही महत्त्वपूर्ण थीं । हम लोगोंने भूतके मशाल देखे ।

अब लिखनेके लिए सिर्फ़ एक बात रह गयी । वह यह कि उस साँय-साँय करती निस्तब्ध रात्रिमें हम सभी लोग खूब जोरका ठहाका लगाकर हँस पड़े । इसलिए नहीं कि भूत चढ़ बैठा बल्कि यह जानकर कि यह तो दस बजेवाली ट्रेन गयी है । उसीकी बत्तियाँ रहीं बगीचेके कोनेपर मैदान पड़ता है और तीन-चार मील दूर लाइनपर जाती ट्रेनकी बत्ती अचानक झलक जाती है । पण्डितजीने वास्तवमें डेढ़ बजेवाली पैसेंजर ट्रेनकी बत्ती कल देखी ।



चूहे, अँग्रेज़ों और घूस

बलियामें चूहोंकी बाढ़ और उनके उपद्रवको रोकनेके लिए एक वैज्ञानिक महात्मा स्विज़रलैण्डके बर्न शहरसे चले। वे यहाँ कल बुधवारको सन्ध्या-समय आ गये। आज उनका चमत्कार देखकर सभी दंग रह गये। बात यह है कि कुछ दिन पहले भारतके समाचार-पत्रोंमें छपा कि चूहे यहाँ किसानोंकी जानके गाहक हो गये हैं। सूखा, बाढ़, अतिवृष्टि, पत्थर और पालासे भी अधिक क्षति इन चूहों-द्वारा होती है। खेती और खेतिहरोंके माल-दौलतके ज़बरदस्त डाकू अकूत भक्षण करके भी सन्तुष्ट नहीं होते। सुरक्षा और चौकसीकी दुर्भेद्य दीवारें इनके पैने तिकड़मी दाँतोंके सामने पानी हो जाती हैं। पहले छिपकर इनका व्यापार चलता था अब दिन-दहाड़े सत्यानाशी परेड करते दिखायी पड़ते हैं। इनके मारे नाकमें दम है और किसान हाथपर-हाथ रखे आँसू बहा रहे हैं। यों चूहोंकी समस्या तो भारत-भरमें समान रूपसे है परन्तु बलिया में इधर इनका उग्र उपद्रव दिखायी पड़ रहा है।

इस समाचारसे प्रभावित होकर महात्माजीने भारत आनेका निश्चय किया। भारत-भ्रमणकी प्रबल इच्छा थी। यह बात गुड्डे बर्न विश्वविद्यालयमें पढ़नेवाले एक मित्रके द्वारा ज्ञात हो गयी। बड़ी तत्परतासे मैंने यह व्यवस्था करा ली कि बलिया जानेके पूर्व एक दिनके लिए महात्माजी हमारा आतिथ्य स्वीकार करें। वास्तवमें मैं अपने यहाँके चूहोंसे परेशान था और एक विदेशी महात्माका दुर्लभ सान्निध्य सौभाग्यकी बात थी। स्वागत-सत्कार और प्रचारकी सख्त मनाही थी। तो भी किसान भाई जान ही गये कि कोई ईसाई सन्त विलायतसे आ रहे हैं और वे बिना मारे या ज़हरीली गोली बिखेरे चूहोंको भगा देंगे।

इस बातपर लोगोंको भारी आश्चर्य हुआ कि महात्माजी हिन्दी बोल और समझ लेते हैं। चूहोंके उपद्रवसे सम्बन्धित ग्रामीणोंका बयान मनोयोगपूर्वक उन्होंने श्रवण किया।

रामअधार पाण्डेयने कहा, “सरकार ! जिस प्रकार आकाशमें सूरज सत्य है उसी प्रकार हमारे देशमें चूहोंका उत्पात सत्य है। ये खेत खाते हैं, खलिहान खाते हैं, घरमें बखार खाते हैं और यहाँतक कि घरका-घर भी खाकर खोखला कर देते हैं। ये खेतोंकी हरियालीको किसानोंके चेहरोंपर नहीं चढ़ने देते। कहते हैं कि ये गणेशजीकी सवारी हैं पर हमारी समझमें जिस प्रकार ये अँग्रेजी राजमें महामारीके वाहन थे उसी प्रकार अपने राजमें अकाल, दरिद्रता, गरीबी और बेहालीके वाहन हो गये हैं। चूहोंकी यह बाढ़ तो न कभी देखी, न सुनी और न पढ़ी हो गयी है महानुभाव !”

ईश्वर महतो बोले, “स्वामीजी ! ये कहाँ रहते हैं और कहाँ नहीं तथा कहाँ हैं और कहाँ नहीं, इस बारेमें कुछ नहीं कहा जा सकता। ये छप्पर फाड़कर कूद आते हैं। पाँव-तलेकी ज़मीन फोड़कर निकल आते हैं। आकाशमें भी बिल बनाकर रहते हैं। पातालके तो ये राजा ही ठहरे और इस भूलोकपर तो मानो इन्होंने हमला ही कर दिया है। इनका सबल संघ है। इनकी प्रबल शक्ति है। हम मामूली मनई तो इनके सामने एकदम लाचार हैं।”

“मैं क्या बताऊँ महाराज !” घुरहूने कहा, “रात सोया हुआ था। बड़ी रात तक छप्परके बाँसोंपर चूहोंकी दौड़ और खड़बड़से नींद नहीं आयी। अब ज़मीन छोड़कर ऊपर छप्परमें ही निवास बनाया है उन्होंने। न जाने वहाँ क्या रखा है ? मालूम होता है घरका सारा अन्न सफ़ाचट कर मौज करनेके लिए छप्परमें वैसे ही रहने लगे हैं जिस प्रकार लोग कभी-कभी नैनीताल, मसूरी आदिको चले जाते हैं। तो, महाराज, ज्यों ही नींद लगी कि एक चूहा दाहिने पैरपर गिरा और काटकर भाग चला।

तबीयत झन-झना गयी। मगर चारा ही क्या था। मन मारकर पड़ रहा। मुझे ऐसा लगा कि अगर यही दशा रही तो इस जर्जर शरीरकी भी खैरियत नहीं। थोड़ी देरमें नींद आयी तो सपनेमें क्या देखता हूँ कि कई मोटे-मोटे चूहोंने हमें पकड़कर टांग लिया है। कुछ अपनी पूँछोंके हण्टरसे सटासट मार भी रहे हैं। चूहे ले जाकर एक गढ़में फेंक देते हैं और मेरी दाहिनी टांग कहीं धँस जाती है। नींद खुली तो चारपाईको एक ओर झुकी अवस्थामें पाया और यह देखकर भारी आश्चर्य हुआ कि सिरहानेके एक पायेके नीचे चूहे महाराजने ऐसी बिल बना दी है कि पाया उसमें धँस गया है।”

कुलदोपसिंहने अपने बयानमें बताया, “इनका रोना कहाँतक रोयें। खेतका वह हाल—फ़सल जमते ही मानो कटिया करके ढाह देते हैं बोज बोते ही हराईमेंसे बीनकर नष्ट कर डालते हैं! घरका यह हाल! एक बोरा तीसी बिलमें ढो ले गये। बिल भी ऐसा कि सारे ‘घरों’ में जालकी तरह फैला। कपड़ोंको काट डाला, वस्तुओंको खराब कर दिया, संचित कर रखी चीज़ोंपर हाथ फेर दिया। कहाँतक कहें? उन्होंने कलेजा ही कुतर दिया महाराज।”

“और अगर मुझसे पूछते हैं” प्रमोदकुमारने कहा, “ये चूहे, मोटे-मोटे चूहे, गाँवके-गाँव खा गये। गोदामके-गोदाम खा गये। नोटोंकी अनगिन गड़्डियोंको पचा गये। मिलोंके वस्त्र-स्तूप उनके उदरमें वैसे ही समा गये जैसे अगस्त्यके पेटमें समुद्र। ये गाँवमें-से रक्त चूसते हैं, अन्न-धन खींचते हैं पर इनका क्रीड़ागार यहीँतक सीमित नहीं। ये कचहरियोंमें, दफ़्तरोंमें, रेलमें, थानेमें, स्कूलमें, पंचायतमें, सप्लाई दफ़्तरमें, विभिन्न परिषदोंमें, विधानसभामें, पार्लियामेण्टमें, क्लबमें, होटलमें, दूकानमें, सांस्कृतिक केन्द्रोंमें, सभामें, मेलेमें, बाज़ारमें और बड़े-बड़े स्वदेशीय प्रतिष्ठानोंमें उसी प्रकार व्याप्त हैं जिस प्रकार अदृश्य होकर भी इस संसारमें ईश्वर! महाराज, आप कोई प्रयत्न करें कि जान बचे। भारतका

स्वर्ग तो राहु-केतुसे ग्रसित हो गया है। आप आये हैं यूरोपके स्वर्गसे। आप हम लोगोंके लिए ईश्वर तुल्य हैं।”

कुछ देर मौन रहकर महात्माजीने कहा, “यह तो बहुत सरल बात है। अगर तुम पसन्द नहीं करते कि तुम्हारे खेत या घरमें ये चूहे रहें तो उन्हें रहनेका क्या अधिकार है? तुम उन्हें आज्ञा दे दो!”

“ऐं? क्या इसीसे ये चूहे मान जायेंगे? महाराज, यह कोई टोटका है, मन्त्र है, जन्त्र है या प्रयोग है?” एक ग्रामीणने कहा।

“यह सब कुछ है!” महात्माजीने कहा और यह तय पाया कि चूहोंको शान्त होने या भगानेकी आज्ञा लिखित रूपमें दी जाये। महात्माजीने मज्जमून बनाया। गाँवके सभापतिने लिखकर हस्ताक्षर किया और उसे सबसे अधिक मूसग्रस्त घुरहूके घरमें ले जाकर रख आया गया। विधिवत् पन्द्रह मिनट तक प्रतीक्षा की गयी। जब झुण्डके-झुण्ड चूहे निकलकर भागते नहीं दिखायी पड़े तो लोगोंने आकर महात्माजीको सूचना दी।

महात्माजी यह जानकर सोचमें डूब गये कि आज्ञा व्यर्थ गयी। गहरे चिन्तनके बाद एक चिटपर उन्होंने स्वयं आज्ञा लिखी और अभीष्ट स्थानपर रखवा दिया। अभी पाँच मिनट भी नहीं बीते कि घुरहूके घरकी तमाम औरतें, बच्चे और बड़े लोग रोते-चिल्लाते दौड़ते पहुँचे, “महाराज, गजब हो गया! चूहे एकदम क्रुद्ध हो गये। तमाम घरमें उछल रहे हैं। दौड़-दौड़ काट रहे हैं। सभी कपड़े जहन्नुममें चले गये। मिट्टीके बर्तन खड़खड़ाकर टूट रहे हैं। अनाजके बोरे खुल गये। ये मूस नहीं मानो बाघ हो गये। शान्त होनेकी कौन कहे, कुछ खेतोंमें-के चूहे भी घरकी ओर भागते चले आ रहे हैं! यह तो कभी सपनेमें भी न देखा और न सोचा गया था। चलिए रोकिए नहीं तो तमाम घर खण्डहर हो जाता है।”

अभी ये लोग कह ही रहे थे कि कुछ लोग और दौड़ते हुए आये। “महाराज, ये चूहे गलियोंकी ओर दौड़ते चले आ रहे हैं। पूँछ उठा-

उठाकर उछलते हैं। दाँत खोल-खोलकर ठनकते हैं। पता नहीं ये क्या कर डालेंगे !”

“ठहरो,” महात्माजीने कठोर आवाज़में कहा, “क्या तुम लोग आदमी हो ! इस प्रकार चूहोंसे भागते हो। छिः, मैं नहीं समझता कि स्वराज्य होनेके बारह वर्ष बाद भी भारतीयोंको इस प्रकार कीड़े-मकोड़ोंका-सा अधमरा जीवन क्यों बिताना चाहिए.....खेद, चूहे और इस जातिके अन्य शोषकोंने तुम लोगोंको इस क़दर निर्बल कर दिया कि स्यारोंके लिए सिंह होना तो दूरकी बात रही, तुम लोग चूहोंके लिए बितली भी नहीं बन पाये।”

महात्माजीने एक क्षण तक कुछ विचार किया और पुनः एक कागज़पर कुछ लिखा। कागज़को एक लिफ़ाफ़ेमें रखा। पुनः बड़ी सावधानीसे और छिपे रूपसे एक चीज़ अपनी जेबसे निकाली। इस वस्तुको भी उन्होंने लिफ़ाफ़ेमें रख दिया। लिफ़ाफ़ा बन्द किया और तेज़ीसे घुरहूके घरकी ओर चले। लिफ़ाफ़ा हाथमें बाहरसे दिखायी पड़ रहा था। उसमें न जाने क्या जादू था कि चूहे रास्ता छोड़ने लगे। हिरनकी तरह उछलते चूहे छिपकली के समान सिमटकर बिलोंकी ओर सरकने लगे। जबतक महात्माजी वह लिफ़ाफ़ा घुरहूके घरमें चूहेके एक मशहूर बिलमें रखकर आये तबतक सारा उपद्रव शान्त हो गया। सभी चूहे इस प्रकार अदृश्य हो गये जिस प्रकार खून हो जानेके बाद गाँवकी ग्रामीण जनता। लोगोंने चैनकी साँस ली। ज्ञात हुआ कि अधिकांश चूहे न तो घरमें गये और न खेतमें, बल्कि वे डीह, परती, बैसवारी, खोह, बाग, बंजर, भीटे और ऐसे ही स्थानोंपर चले गये जहाँ उनसे कोई नुक़सान नहीं होनेवाला था। यानी उनका उपद्रव शान्त होनेका यह चिह्न था।

दूसरे दिन योजनानुसार जब बलिया चलनेके विषयमें मैंने पूछा तो महात्माजीने एकदम इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, “मुझे गहरी निराशा हुई। अगर मैं यह जानता होता कि भारतमें अभी भी अंग्रेज़ी राज्य है

तो हरगिज़ यहाँ कदम नहीं रखता । मैं तो इसे स्वतन्त्र देश समझकर आया था । खैर, मैं आप लोगोंसे बहुत प्रभावित हुआ । अब मैं स्वदेश लौट जाऊँगा ।”

महात्माजीके स्वरमें कुछ ऐसी निश्चयात्मक ध्वनि थी कि पुनः कुछ कहते न बना, किन्तु कुछ बातें एकदम कुतूहलमें डुवाये हुई थीं । ईश्वर पाण्डेयने पूछा, “महात्माजी ! अगर कोई शलती हुई तो क्षमा कीजिएगा । एक बात नहीं समझमें आती कि पहली बार लिखकर आज्ञा दी गयी तो कुछ लाभ नहीं हुआ, दूसरी बार उपद्रव और बढ़ गया, और तीसरी बार एकदम शान्त हो गया—इसका क्या रहस्य है ?”

“बताता हूँ,” महात्माजीने कहा, “पहली बार तुम लोगोंने हिन्दीमें लिखकर रखा, चूहे समझ नहीं सके । दूसरी बार मैंने अँग्रेज़ीमें लिखकर रखा । इस बार समझ तो गये परन्तु पूर्व भ्रष्ट स्वभावके कारण ऊधम मचाने लगे, अतः तीसरी बार शान्त करनेके लिए अँग्रेज़ी भाषामें लिखनेके अतिरिक्त कुछ द्रव्य प्रदान भी करना पड़ा । समझे ? भारतके घूसखोर चूहे हिन्दी नहीं समझते ।”

महात्माजी चले गये तो घुरहूके मकानके भीतर बिलमें प्राप्त लिफाफे को उत्सुकतावश खोला गया । सचमुच उसमें घूसके रूपमें ५) का नोट रखा था और अँग्रेज़ीमें लिखा था, “ऐ मूस देवता, नम्र निवेदन है कि या तो शान्त हो जाओ या यह स्थान छोड़ दो !”



फिर बैतलवा डालपर

मनबोधका मस्तिष्क आज 'टैप रेकॉर्डर' का काम कर रहा है। उसमें रामभरोसे और मुन्नी बाबूके विभिन्न अवसरोंके वातालाप सुरक्षित हैं। रामभरोसे (ग्राम : अमारी, ज़िला : आजमगढ़) ने गत वर्ष अपनी लड़की की शादी मुन्नी बाबू (ग्राम : सिंगारपुर, ज़िला : बलिया) के लड़केसे की। रामभरोसेकी अवस्था ३७ वर्ष है और वह पीपरपुर प्राइमरी स्कूलमें मास्टर हैं तथा मुन्नी बाबूकी अवस्था लगभग ६५ वर्षकी है और वे एक रईसनुमा किसान हैं। अच्छा, अब वातालाप चालू हो रहा है।

[१]

(प्रसंग—रामभरोसे अपने मित्रोंके साथ मुन्नी बाबूके यहाँ लड़का देखने गया है। सारा परिवार स्वागतमें दौड़-धूप रहा है। कोई खड़खड़ किसी ओरसे खड़ाऊँ बटोरे चला आ रहा है। कोई चारपाई ठीक कर बिस्तरा लगा रहा है। कोई हुक्केमें ताज़ा पानी करके लड़केको चिलम चढ़ानेका आदेश दे रहा है। कोई कहींसे तकिया लिये चला आ रहा है। कोई पंखी लाकर रख रहा है—यद्यपि महीना जनवरीका है ! जो जहाँ है वह वहीं व्यस्त है, मानो कोई बहुत भारी तैयारी है। गाँवके एकाध रईस भी जुटने लगे हैं। बाबू, राजा, अमीर, धनी-मानी और रईसोंके बारेमें बातें होती हैं। आज काम-धन्धा तथा क्लेश-कठिनाईकी बात कोई नहीं कर रहा है। रुपयेका प्रसंग आता है, तो लाख दो-लाखसे नीचेकी बात नहीं होती। देश-दुनियाकी चर्चा पण्डित नेहरूकी आलोचनासे शुरू होती। अन्तमें शादीका प्रसंग छिड़ा और रामभरोसेने हाथ जोड़कर प्रस्ताव रखा।)

“बाबू साहब ! बड़ी दूरसे नाम सुनकर शरणमें आया हूँ। बस,

उठा लीजिए और एक हमारी अर्जी मंजूर कीजिए। बाप-दादेने ज़मींदारीके ज़मानेमें बड़ा नाम कमाया, परन्तु अब वह किस कामका है? कन्याकी शादीके लिए दर-दरकी ठोकर खा रहा हूँ। कोई सीधे मुँह बात नहीं कर रहा है। मोल-भावसे जी ऊब गया है। अब आपसे याचना है कि अपना लड़का हमें दे दीजिए।”

“क्या कहूँ? कुछ कहा नहीं जा रहा है। शादी करनेका तो क़तई विचार ही नहीं है। इधर तिलकहरूओंने नज़ाकतमें दम कर दिया है। एक जाता है तबतक एक आ जाता है। सबको तो टरकाता आया हूँ, परन्तु आपके आ जानेसे एकदम असमंजसमें पड़ गया हूँ। आपके पिताको कौन नहीं जानता? आपके बाबा हलधर बाबू तो एकदम राजा थे। अब जब आप ही आ गये तो क्या कहूँ? लड़का आपका ही है।”

“ओह, आजका दिन कितना सुन्दर है! उबार ही लिया मुन्नी बाबू आपने। अब मेरी इच्छा है कि शादीके वारेमें हर चीज़ तय हो जाये। मैं क्या कहूँ? मैं तो आपके चरणोंमें स्थान माँगने आया हूँ। आप अब हमें जैसे रखें। अब आप ही कुछ कह दें।”

“देखिए, यह बोझ हमारे ऊपर न डालिए। दूसरा कोई होता तो एकदम दो टूक बात करनेमें हमें तनिक भी हिचक नहीं होती। परन्तु जब आप ही आ गये तो अब मैं क्या कहूँ? कुछ कहा नहीं जा रहा है।”

“नहीं, कुछ कहिए। अथवा यही कह दीजिए कि मैं जो कुछ पत्र-पुष्प सेवामें अर्पित करूँगा, आपको स्वीकार होगा। इस समय आपकी कृपासे ही हमारा उद्धार होगा।”

“अच्छा, जब आपका इतना आग्रह है तो मुँह खोलना ही पड़ेगा। यद्यपि संकोचके मारे बोला नहीं जा रहा है तो भी व्यवहारमें बात साफ़ हुए बिना खटपटकी सम्भावना होती है। तो, जब हमें ही कहना है तो कह रहा हूँ। आप हमें आठ हजार रुपया नक़द दरवाज़ेपर दे दीजिए। शेष आपकी मरज़ीपर।”

“आठ हजार ? मेरा तो माथा धूमने लगा सरकार ! इतना धन तो मैं अपनी सारी चल-अचल सम्पत्ति बेचकर भी नहीं खर्च कर सकता !”

“तब क्यों व्यर्थ मुँह खुलवाया है ? इसीलिए तो मैं मुकर रहा था । इससे कममें मेरी और आपकी प्रतिष्ठा कैसे सुरक्षित रह सकती है ? अब आप ही बताइए कि क्या हो ?”

“मुराजी ढंगसे तय कर लीजिए ।”

“हाँ, यह भी शादीका नया ढंग है । मेरी और अपनी प्रतिष्ठाके अनुसार आप लड़कीको गहना बनवा देंगे और जो नयी रस्में हैं, मसलन वरको साइकिल, रेडियो, घड़ी और सूट आदि और समधीको घोड़ा और बैल आदि इनका भी आप विधिवत् उत्तम प्रबन्ध करेंगे ही । रह गयी बात बरातके खर्चकी, सो आप उचित समझें तो तय हो जाये ।”

“बाबू साहब ! वैवाहिक सम्बन्धके लिए हमारा-आपका प्रेम काफ़ी नहीं है जो बार-बार रुपयेका सवाल उठ रहा है ?”

“देखिए, मेरा खयाल है कि बिना रुपयेके प्रेम नहीं होता । कन्याकी शादीमें मन खोलकर खर्च करना चाहिए । आज हालत ऐसी है कि सब लोग मुफ्तमें ही शादी कर डालना चाहते हैं । बिना दबावके कोई कानी कौड़ी निकालनेको तैयार नहीं है ।”

[२]

(प्रसंग—तिलकके सिलसिलेमें रामभरोसे मुन्नी बाबूके यहाँ गया है । शादी तय हो चुकी है । ८ बजे रातको तिलकका मुहूर्त है । सात बज रहे हैं ।)

“बाबू साहब, तिलकका समय हो रहा है, तैयारी कराइए !”

“मगर कुछ बात-चीत पक्की हो ले तब न ?”

“क्या उस दिनकी बात कच्ची थी ?”

“मैं तो यही समझ रहा हूँ ।”

“क्यों ? क्या बात है ?”

“देखिए रामभरोसेजी ! शादी आपके यहाँ तय है । आपसे बढ़िया सम्बन्धी हमें कोई नहीं मिलेगा । दूसरोंकी अशरफ़ी, न आपका पान-फूल ! तो, बात-चीतके अनुसार अपनी कन्याको आप पाँच हजार रुपयेका गहना बनवा देंगे । अपने लड़केको आप साइकिल, घड़ी, रेडियो, मूट, कलम, गाय और आभूषण निर्धारित ढंगके देंगे । हम चाहते हैं कि बरात दो दिन रहे और आप चाहते हैं कि एक ही दिन रहे । इस प्रकार एक दिन रहनेसे आपका जो पाँच-सौ रुपया बच जायेगा उसका आधा आप देंगे । बरातके खर्चेके लिए जैसी कि रस्म है, एक हजार रुपया आप देंगे । अब यहाँ सवाल यह है कि हमको यानी लड़केके बापको क्या मिल रहा है ?”

“यह तो सरासर अन्याय है मुन्नी बाबू ! गहना दूँ, सारा सामान दूँ, एक रातका जुरमाना दूँ और बरातका सारा खर्चा देनेके बाद ऊपरसे यह नज़राना दूँ ? क्या जो दे रहा हूँ वह आपका नहीं है ? और अगर आपका मतलब दहेज़से है तो उसके लिए तो यहाँ अवसर है नहीं । ज़रा विचार कीजिए ! ऐसा न करें कि आपके यहाँ सम्बन्ध जोड़कर मैं भिखारी हो जाऊँ ! आपका लड़का है, आप भी कुछ खर्च कीजिए !”

“तो क्या समझते हैं कि आपके ही आसरे ठाट बाँध रहा हूँ ? अभी आप हमें क्या देखते हैं ? देखिएगा उस दिन जब मैं आपके यहाँ चलाँगा । यहाँपर तो आप हमें इस समय बस एकदम असम्य ही समझ रहे होंगे; परन्तु देखिएगा, आपके यहाँ चलकर मैं कैसी शराफ़त दिखाऊँगा । क्या मैं आपको बेइज़्जत होने दूँगा ? हरगिज़ नहीं । यह सारी ठकठेन तिलक चढ़नेसे पहले ही है । हाँ, तो आप कह रहे थे कि मैं दहेज़ दूँगा । ज़रूर आप देंगे । अपनी प्रतिष्ठा भी तो आपको देखनी है । सवाल यह है कि दहेज़ यानी बैल, भैंस, घोड़ा, हाथी जो भी आप देंगे वह वहाँ देंगे । उससे आपके दरवाज़ेकी शोभा बढ़ेगी । हमें यहाँ क्या मिल रहा है ? यह स्पष्ट हो जाना चाहिए ।”

“इस प्रकार हर मौकेपर रुपया और शर्तें बढ़ने लगे तब तो शादीके

अन्त तक हमारा डोह छूट जायेगा । दया कीजिए बाबू साहब !”

“देखिए, अभी आप लड़के हैं । शादी-व्याहमें घबराना नहीं चाहिए । मैं तो मुँह भी नहीं खोल रहा हूँ । सब आपके ही ऊपर है । कहिए ?”

“क्या कहूँ ? मेरी आँखोंके आगे अँधेरा छाने लगा है ।”

[३]

(प्रसंग—शादी ससमारोह सम्पन्न हो चुकी है । रामभरोसेने मुन्नी बाबूकी सभी शर्तें पूरी कर दी हैं । सब लोग प्रसन्न हैं, परन्तु उसके मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही हैं । चेहरा मूख गया है । एक ही दिनमें मानो वह बूढ़ा हो गया है । बरातकी अन्तिम विदाई हो रही है । अपने सगे-सम्बन्धियोंके साथ वह हाथ जोड़कर मुन्नी बाबूके आगे खड़ा है ।)

“रामभरोसेजी ! अबतक तो मैं चुप था, परन्तु अब मुँह खोलूँगा । यहाँ हमारा हक है । फिर कब यह मौका आयेगा ?”

“दया कीजिए सरकार ! आपका हक तो जीवन-भर है । अपनी पूरी शक्ति लगाकर, शक्तिके बाहर तक आपकी सेवा की है । आपको प्रसन्न करनेके लिए मैंने अपने बाल-बच्चोंके भविष्य तककी बाजी लगा दी है । अब सरकार कृपा कीजिए ।”

“क्या मजाक करते हो ? अभी तो कितनी रस्में यों ही रह गयीं । रात हमें भोजन नहीं कराया । मेरे छोटे लड़केको कुछ नहीं मिला । द्वारपूजासे लेकर अब तक हमें क्या दिया है ? तुम्हारा यह गाँव है कि कोई रईस-सरदार नहीं है । हमारा यहाँ आदर नहीं हुआ है । हमें यहाँसे बहुत रंज है । किसीने कहा है कि ‘सुरसाका मुँह है’ तो कोई कहता है कि रुपया लूट लिया । बताओ, हमने क्या लूटा है ? इसी तरह समझीकी खातिर होती है ?”

“क्षमा कीजिए सरकार ! मैंने तो सदा आपको सिर-आँखोंपर रखा है । भोजन कराने मैं स्वयं आया था । आप नहीं गये । आप नाराज़ होकर जायेंगे तो मेरे सारे प्रयत्नोंपर पानी फिर जायेगा और खेवा देकर

भी बह जाऊँगा ।”

“चलो, चलो ! दूसरोंको पट्टी पढ़ाना । मुझे क्रोध न दिलाओ । मैं तुम्हारे दिये सारे रुपये यहीं बिखेर दूँगा । कोई मुझसे कुछ न कहे ! मैं मान नहीं सकता । अब मैं चला । बाप रे बाप ! आज मुन्नीकी यह तोहीन कि मुँह भी न खोल सके ?”

[४]

(प्रसंग—शादीके चार मास बाद रामभरोसेके घर पुनः एक उत्सव हुआ । उसकी माँने श्रीमद्भागवत पुराणका श्रवण किया । अन्तिम दिन सभी नातेदार-रिश्तेदार जुटे । मुन्नी बाबू भी दलबलके साथ पहुँचे । उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ । सभी अतिथि विदा हुए । मुन्नी बाबू मय अपने सेवक, पुरोहित और मित्रके चार दिन डटे रहे । रामभरोसे सेवाका जुआ कन्धेपर रखे जी-जानसे जुटा रहा । पाँचवें दिन विदाका प्रसंग आया ।)

मुन्नी बाबूने कहा,

“हमें कुछ चिह्न चाहिए । खुशोका मौक़ा है ।”

“मैं आपको क्या देने लायक हूँ ! अभी तो शादीकी मारसे कई सालमें साँस लेने लायक हो पाऊँगा । यह तो बन्धुओंकी इच्छासे किसी प्रकार उत्सव पूरा हो गया ।”

“सब भगवान् पार लगाते हैं । शादीमें भी मैं ऐसे ही चला गया । अब इस बार बिना चिह्न लिये टससे-मस नहीं होऊँगा ।”

“जो देखते हैं वह ले लीजिए । सब आपका ही है । मगर कोई चीज़ ऐसी नहीं है जो दी जा सके । मेरे बैल किसी प्रकार कर्ज लेकर खरीदे गये हैं । सस्ते, मरियल और किसी तरह काम चलाते हैं । इन्हें देकर आपकी और अपनी दोनोंकी बदनामी कैसे कराऊँ ?”

“इन्हींको दीजिए । अपने रिश्तेदारके पास टूटे बैल हैं तो कहाँसे अच्छे आयेंगे । हाँ, इनकी कमी किसी प्रकार और पूरी कर दीजिए ।”

“ओफ़ ! अब तो शेषके लिए कलेजा ही काट लीजिए न ?”

“कलेजा नहीं। आप बैलके साथ अपनी गाय दे दीजिए !”

“हृद हो गयी। अब कुछ मत कहिए मुन्नी बाबू ! मैं पागल हो जाऊँगा। जहर खा लूँगा। मेरी दशापर बिना विचार किये ही आप माँग गये।”

“तो मैं चल रहा हूँ। अब रिश्तेदारी नहीं चलेगी।”

“चल रहा हूँ ? मैं तो आपको एक शरीफ़ आदमी समझ रहा था……।”

“खबरदार ! क्या मैं लुच्चा-लफ़ंगा हूँ। गाली दे रहे हो ? यही रिश्तेदारी है ?”

“जी नहीं, यह तो खुला व्यापार है। अब हमें कह लेने दीजिए। सचमुच मैं पागल हो गया हूँ। आपको अगर हमसे लेना ही था और आप शरीफ़ थे तब तो आप आये ही नहीं होते। आपको पता नहीं है कि चूस तो इस क्रूर लिये कि साँस लेना कठिन है।”

“तो क्या मैं अपनेसे आया ? क्या तुमने बुलाया नहीं था ?”

“ज़रूर बुलाया था। मगर इसलिए नहीं कि आकर आप समूल उन्मूलन कर जायें। मैं पूछता हूँ कि यही रिश्तेदारी है ? आप हमें सँभालने आये हैं ? आप हमारे शुभचिन्तक हैं ? चिड़ियाकी जान जाये और खानेवालेको स्वाद न आये ?”

“तो तुम्हें घमण्ड है कि बहुत-सी चीजें शादीमें दे दीं। चलो, मैं एक-एक चीज़ निकालकर दस आदमियोंके सामने पेश करूँगा। क्या समझते हो ?”

“मैं क्या घमण्ड करूँ ? मैं तो खाक बनकर आपको शरणमें गया ही था। हाँ, खेद है कि जिस व्यक्तिको सोना समझा वह हीरा तो कहाँ सिद्ध होता, पीतल भी नहीं निकला। आपका यह ऐसा दुःखद और क्रूर नाटक रहा कि प्रेमभावको अब कहाँ शरण मिलेगी ? बाबू साहब, गुद-गुदाया उतना ही जाता है जितनेसे हँसी आये ! यह गला दबाकर लेना क्या उचित है ? माना कि आप बड़े हैं परन्तु हमारे लिए तो तब

बड़े हैं जब आप हमारे पुर-जन-परिजनोंकी आँखोंपर श्रद्धाके साथ चढ़ें। उचित तो था कि मैं देता तब भी आप नहीं लेते। मेरा दुःख बूझते। अपने यहाँ वह नंगा नाच, यहाँपर यह पोप-पाखण्ड !”

“बस करो। चुप रहो। क्या यही समझीका आदर है? हमें डाँटकर नसीहत देते हो?”

“जो नहीं, मैं तो रो रहा हूँ। रोऊँ भी नहीं?”

“देखो, अगर मैं रुष्ट हो जाऊँगा तो, ब्रह्माके आये भी नहीं मान सकता।”

“प्राण हाज़िर हैं, अगर आप रुष्ट न हों।”

“प्राण नहीं, देना है तो बिह्ल दीजिए, अन्यथा भरपूर पा गया आज !”

“हाय !”

अब ‘टिप रेकॉर्डर’ बन्द हो गया। रामभरोसेने मुन्नी बाबूको एक बैल, एक गाय और धोतीके साथ ५१) नक़द दिया। मुन्नी बाबू लेकिन तब भी विमन बने रहे और अपने गाँव सिंगारपुरमें जाकर उन्होंने घोषित कर दिया कि दरवाज़ेपर-से रामभरोसे-द्वारा धक्के देकर खदेड़ दिये जानेके कारण वे इस प्रकार नाराज़ होकर चले आये हैं कि अब मनावन मामूली काम नहीं है।



‘बम’का सहारा

“मेरे लिए एक बम बना दीजिए ।”

आज हाई स्कूलके एक छात्रने मेरे पास आकर कहा । मेरी समझ चक्कर काटने लगी ।

“ऐं, तुम कम्युनिस्ट तो नहीं हो गये ? बम क्या करोगे ? भागो, भाग जाओ यहाँसे ।”

हँसने लगा वह ।

“मास्टर साहब ! मेरा मतलब है कि एक ऐसी चीज आप तैयार कर दें कि मैं परीक्षामें पास हो जाऊँ !”

“तो क्या तुमने हमें जन्तर-मन्तरवाला पाखण्डी समझ रखा है ? बम और गोलासे नहीं, पढ़नेसे आदमी परीक्षामें सफल होता है ।”

“हमारा मतलब आपने समझा नहीं । पढ़नेके बारेमें ही कह रहा हूँ । जन्तर-मन्तर नहीं चाहता ।”

“तब तुम्हीं गुरु सही । बताओ ।”

“देखिए, कवियों और लेखकोंकी भाषा-शैलीके बारेमें प्रश्न होता है न ?”

“हाँ, होता है । तब ?”

“वही लिखा दें ।” उसने भारी आतुरता प्रकट की ।

“लिखा क्या दें ? लिखा-लिखाया है । बार-बार बताया गया होगा । किताबोंमें मौजूद है । नोटकी कॉपियोंपर भी विराजमान होगा । याद क्यों नहीं करते ?”

“यही तो आफ़त है साहब ! दर्जनों मशहूर लेखक हैं । कोड़ियों प्रसिद्ध कवि हैं ? किसका-किसका याद करें ? जान साँसतमें है !”

लड़केने कहा ।

“तो क्या मुझे परचा आउट हो गया है जो बता दूँ कि यही आयेगा ?”
मैंने कहा ।

“जी नहीं । ऐसा लिखा दें कि वह प्रत्येक कवि या लेखकके लिए लिखा जा सके ।”

“यह कैसे हो सकता है ? हर लेखककी पृथक् शैली है । हर कविके भिन्न-भिन्न भाव हैं । सबका अपना-अपना, गुण है । तुम्हारा कहना मैं समझ न सका । किसने तुम्हें बताया है ?”

“मेरे एक मित्रने । उसने ऐसे ही पास कर लिया । उसके एक मास्टर ने लिखवाया था । अब उसे पूरा याद नहीं है और वह कागज जिसपर लिखा था, कहीं खो गया ।”

“तो भी, कुछ तो याद होगा ?”

“जी, वह ऐसे कि.....आपकी भाषा आकर्षक है । आपकी शैली हृदयको छूती है । आपने अपने भावों और विचारोंको सफलतापूर्वक प्रकट किया है ।.....इत्यादि । इसी तरह और भी । दो पृष्ठ-भर तैयार करा दें । फिर तो कुछ इधर-उधर जोड़-जाड़कर ठीक ही कर लूँगा । किसी तरह इस वर्ष पास हो जाता !”

“तो क्या कई वर्षसे परीक्षा दे रहे हो ?”

“जी सन् १९५८ में परीक्षा दी थी । गत वर्ष परीक्षासे रोक दिया गया । इस वर्ष फॉर्म भर दिया है ।”

“रोक क्यों दिये गये ?”

“मेरा बम ही कॉपीमें चला गया ।”

“बम ? कैसा बम ?”

“इतिहासके परचेका बम था । तमाम सन्-संवत् और तिथियाँ एक छोटेसे कागजपर नोट करके ले गया था । कॉपीमें छिपाकर लिखनेके बाद उसे निकालना भूल गया और वह ऐसे ही उत्तर-पुस्तिकामें चला गया ।

नतीजा यह हुआ कि परीक्षाफल तो गोल हो ही गया एक वर्षके लिए रोक भी दिया गया ।”

“अच्छा, तो वैसा ही ‘बम’ फिर प्रयोग करना चाहते हो ? बड़ा मोटा कलेजा है तुम्हारा !”

“जी, इस बार लिखकर ले नहीं जाऊँगा । याद कर लूँगा ।”

×

×

×

अब मेरे सामने अनेक सवाल हैं । जिस प्रकार बम-वर्षा करके शत्रुपर विजय प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ‘बम’के सहारे छात्र परीक्षामें विजय-लाभ के अभिलाषी हैं । इस ‘बम’के भिन्न-भिन्न रूप हैं । नोट्स हैं, सूत्र हैं, कुंजियाँ हैं, मशहूर सवाल हैं, सम्भावित प्रश्न हैं, नकल करना है, चोरी करना है, नम्बर बढ़वाना है, रटाई-घोंटाई हैं, और परचा आउट करना है आदि-आदि । रह गयी बेचारी शिक्षा, तो परीक्षा और किसी प्रकार प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके दो पाटोंके बीचमें यह तो मानो पिसान हो गयी ! स्कूलके व्यवस्थापक, चाहे वह सरकार हो चाहे व्यक्ति-विशेष, हानि-लाभके फेरमें हैं । स्कूलके अध्यापकको अपने वेतनसे मतलब है । विद्यार्थीको किसी प्रकार परीक्षा पास करनी है क्योंकि इसीसे नौकरी मिलती है । विद्यार्थी पढ़ता है केवल पास होनेके लिए । इसीलिए पढ़ाईसे अधिक वह परीक्षामें जोर लगाता है । बम तैयार करता है । तिकड़म भिड़ाता है । अगर प्रतिभाशाली है तो विषयोंके नीरस ज्ञानकी गठरी हो गया और मन्द-बुद्धि है तो सफलताके दुर्गमें, परीक्षाकी दुर्भेद्य प्राचीरोंमें सेंध लगानेकी कलाका कलाकार ! मुझे वह घटना कभी नहीं भूलती जब निरीक्षणके सिलसिलेमें एक दयनीय परीक्षार्थी-तस्कर सामने आया । प्रश्न था अकबरपर । किसी वहाने बाहर जाकर इतिहासकी पुस्तकसे अकबरवाला पाठ फाड़ लाया और लिखना शुरू किया, ‘बालको ! पिछले अध्यायमें तुम्हें बताया जा चुका है कि हुमायूँ.....’ बेचारेको क्या पता कि परीक्षक ‘बालको’ नहीं है और वह उत्तर लिख रहा है न कि इतिहासकी किताब ! वह तो सनकमें है ।

सिरपर परीक्षाका भूत सवार है। पकड़ जानेपर गिड़गिड़ाता है, 'जिन्दगी का सवाल है।' वह इतना तो जानता है कि परीक्षा पास करना जिन्दगी का सवाल है, पर उसके दिलमें न जाने क्यों यही नहीं धँसता कि इस सवालके लिए उसे शिक्षामें श्रम करना चाहिए। दोष भी उसका क्या है? वह वैसा है नहीं बल्कि बना दिया गया है। गत वर्षकी एक घटना है —

पुलपर बैठकर मैं एक व्यक्तिके आनेकी राह देख रहा था। लगभग सवेरेके आठ बज रहे थे। जाड़ेकी गुलाबी धूप कॉलेजकी ओर जानेवाली उम सड़कपर फैल गयी थी। मैं कुछ सोच रहा था कि तेज सेण्टका सहभा आक्रमण दुर्निवार सिद्ध हुआ। झक्क.....झक्क.....झक्क.....। आँखें उठायी तो अवाक् रह गया : वे तीन-चार लड़के थे। हाथमें उत्तर-पुस्तकें और एक-दो पुस्तकें। कुछ खाली हाथ। जूता, धोती, कमीज सब दुरुस्त। चमाचम। बातोंमें मशगूल मागनेसे निकल गये। कहाँ जायेगे अभी? कॉलेजके समयमें तो लगभग दो-ढाई घण्टेकी देर है और दूरी महज एक-डेढ़ मील है।.....फिर यह सेण्टकी तीव्र गन्ध! क्यों लगा रखी है यह? मुझे लगा कि यह कोई महत्वाकांक्षी छात्र है। मदको आकर्षित करना चाहता है। विद्याकी अनिपुणताकी कमी सेण्ट लगाकर पूर्ण कर रहा है। पढ़नेके समय रास्तोंमें है। कहीं धूपमें बैठकर गप लड़ायेगा। मित्र भी साथ है। अध्यापकोंकी आलोचना होगी। छात्रोंकी चर्चाएँ होगी। सारे संसार की मूर्खताओंपर जमकर हँसी होगी। बीचमें किसी ओरसे यदि आ जायेगी पढ़ाई-लिखाईकी बात तो बोल उठेंगे, "हटाओ जी, बौन मरने जाये अभीसे! जो पढ़तव्यम् तो मरतव्यम्, दाँत कटाकट कि कर्तव्यम्। परीक्षा आयेगी तो देखा जायेगा। कोई-न-कोई गोटी बैठेगी ही। लग गया तो तीर, नहीं तो तुक्का!"

मैंने देखा कि वे चार ही नहीं गाँवकी ओरसे झुण्डके-झुण्ड छात्र चले आ रहे हैं। पीछेके पुलपर कुछकी बैठक जम भी गयी थी। गाँवके छात्र! जिनके पास समयकी कीमत नहीं! जिनके पास घड़ी नहीं! एक क्षणमें

ज्यों ही सूरज कुछ ऊपर उठा सामनेमे छात्रोंका दल गुजरने लगा । मुझे याद आया कि इस गाँवका एक छात्र मेरी पहचानका है । गत वर्ष भाषण-प्रतियोगितामें उसका कमाल देखा था । आनेवाले छात्रोंमे उसका चेहरा दृढ़ने लगा । वास्तवमे उम दिन बहुत आनन्द आया । बार-बार मनमे आता कि भारतका यह नया रक्त काश कि विद्या-वृद्धिमे प्रखर और उद्वुद्ध होता ! काश कि ये वैसे ही होते जैसे देवनेपर लग रहे हैं । काश कि इनके निर्माणपर बांधो और कल-कारणानोंकी भाँति भी ध्यान दिया जाता !

लड़के प्रायः चले गये । अब एक-दो पीछे रह गये थे । मैंने गाचा कि शायद आज वह छात्र स्कूल नहीं जा रहा है । तबतक पीछेवाले पास आ गये । मैंने देखा कि वह भाषणवाला छात्र उन्हींमे था और नंगे पाँव किमी पुस्तकपर आँख गड़ाये चला आ रहा है ।

एक समाधान जैसे मिल् गया । एक वह अगमय जानेवाला सेण्टकी मुरभिमे डूबा और एक यह उम समयका मनुष्ययोग कर गवने पीछे जानेवाला पुस्तकोंके पन्नोंमे डूबा !

छात्र चले गये । मेरे माथी, जिनकी प्रतीक्षामे मैं था, नहीं आये । बैठे-बैठे ऊब गया तो आगे बढ़ा । मोड़पर जहाँ एक और पुल था तथा जहाँ वह मेण्टवाला छात्र और उसके माथी बैठे थे पहुँचकर भारी कौतूहल हुआ । अबकी उसके पास एक कुत्ता बैठा था जिसे वह सहला रहा था ।

वह एक अप्रत्याशित क्षण था जब सभीने एक स्वरसे प्रणाम किया । मुझे स्मरण आ रहा है कि वह कुछ ऐसी विचित्र और आकर्षक परिस्थिति थी कि मैं अपनेको भूल गया । उनके साथ बैठकर मैं भी अपने पूर्व छात्र-जीवनमे वापस आ गया । लड़कोंने बताया कि वे मेरी टोपी, सूरत और चाल देखकर समझ गये कि मैं कहीका मास्टर हूँ ।

एक ने कहा, “आप लोगोंको कॉपी जाँचते समय दया नहीं गाती ? दो-चार नम्बरोंके लिए ही बेचारे लड़कोंका जीवन चौपट हो जाता है ।”

“इमीलिए तो,” मैंने कहा, “अध्यापक लोगोका पेट नहीं भरता । यह

बालकोंको फ़ेल करनेके पापका दण्ड है कि वे आज चपरासियोंसे भी गये बीते हैं। बालकोंको फ़ेल नहीं करना चाहिए।”

“आप बड़े दयावन्त हैं।....अरे, आपके पैरोंमें तो बहुत दुःखदायी बिवाइयाँ फटी हुई हैं। ठहरिए, आज शिकार मिलता है तो इसकी भी दवा होगी।” एक लड़केने मेरे पैरोंको लक्ष्य कर कहा।

“मगर, पढ़ाईके वक़्त शिकार खेल रहे हो? इस प्रकार फ़ाइनल परीक्षामें कैसे सफलता मिल सकेगी?” मैंने कहा।

लड़के ठहाका मारकर हँस पड़े। सेण्ट लगाये हुए छात्रने कहा—

“अब फ़ाइनल परीक्षाकी क्या परवाह? अपने कॉलेजमें केन्द्र हो गया। कुछ तिकड़मका बल, कुछ भुजाका बल, कुछ भाग्यका बल और सातवें फाटकके लिए जमकर बमबाजी होगी।”

“लेकिन यह भी स्मरण रखो कि परीक्षामे बमका सहारा सदा हानिकारक और खतरनाक होता है।”

“वह देखो।”

एक लड़केने हाथसे पूरब ओर जहाँ खेतोंके बीच एक छोटा-सा नाला था, इशारा किया। जबतक एक सियारकी सूरत मेरी आँखोंके सामने हुई, तबतक कुत्तेको इशारेसे ठोककर विचित्र प्रकारकी हाँक लगाते हुए सभी उधर झपट पड़े। आगे बढ़कर एक मेरी ओर घूमकर चिल्लाया।

“दौड़िए, दौड़िए मास्टर साहब! सियारका ताजा खून बेवाईकी अचूक दवा है। जल्दी....।”

अजब झटपटकी उत्तेजना थी। मैं बिना कुछ भी विचारे लड़कोंके आवाहनपर दौड़नेके लिए उद्यत हो झुका ही था कि दूरसे किसीने पुकारा—

“मनबोध!”

देखा, मेरे दोस्त हैं जिनकी प्रतीक्षा थी।



रातकी बात

बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जो लिखने लायक नहीं होती हैं, फिर भी लिखे बिना जीको चैन नहीं मिलता है। वह रातकी बात भी ऐसी ही है। अपनी गरीबीको भला कौन नहीं छिपाता है ? वास्तवमें चाहिए भी इसे छिपाना। यह ऐसी ही वस्तु है। हम सोचते हैं कि हमारा दुःख-दर्द तथा हमारी बेबसी देखकर दुनियाका दिल पसीज उठेगा और उधर कुछ दूसरी ही रंगत दिखायी पड़ती है। आमतौरसे दुःखीका दुखड़ा ठिठोली बन जाता है। कौन है दुःख बाँटनेवाला ? यहाँ तो सब जलती झोंपड़ीपर हाथ सेंकनेवाले हैं। उसीसे गम खाकर आँसू पी जानेका विधान है। इसीसे कविवर रहीमने अपने मनकी बिथाको सदा मनमें ही गोकर रखनेकी सलाह दी है। इतना जानते हुए भी मैं इस प्रकार अपना परदा उधाड़कर क्यों अपनी गरीबीका ढिंढोरा पीटने जा रहा हूँ ? यह एक बड़ा टेढ़ा सवाल है। इस सवालका जवाब लिखकर समय बरबाद नहीं करना चाहता। मूल बात तूफ़ान-सी उठ रही है। हाँ, इतना स्पष्ट कर देना जरूरी है कि किसीकी दया अथवा सहानुभूति मैं नहीं चाहता। लिखनेका उद्देश्य भी यह नहीं है। इसे यों समझ रहा हूँ कि न जाने कहाँसे, कैसे उस विकट परेशानीमें मेरे हृदयके भीतर विषादके स्थानपर आनन्द आ गया। सच तो यह है कि यह अभावकी विवशता नहीं, अपितु वह क्षण-भरका आनन्द है जो रातसे ही हृदयमें मेहमान बना बैठा है, पेट फाड़-फाड़कर बाहर निकलना चाहता है।

इस कथाको यहाँसे शुरू करूँ कि मेरे इस कमरेमें चारों ओर जली-अधजली बीड़ियोंके टुकड़े जो ज़मीनपर बिखरे पड़े हैं, वे इस बातके प्रमाण हैं कि कोई असाधारण मानव इस कमरेमें रात-भर रहा है। बात

सही है। अभी-अभी जलपानके बाद उन्होंने विदा ली है। मैं इन कलमुँहे टुकड़ोंको बूहारकर फेंक देना चाहता हूँ परन्तु न जाने क्यों आलस कर रहा हूँ। शायद इसका कारण यह है कि पूरे पाँच आने पैसे कट गये हैं। चार आनेकी बीड़ी और एक आनेकी सलाई। स्वाद मेरे मेहमानके साथ गया। धुआँ आकाशमें उड़ गया। पैसा बनियेके घर गया और उप-संहारके रूपमें ये भग्न शौक-शलभ कमरेकी शोभा बढ़ा रहे हैं। मैं अपने मेहमानका परिचय नहीं बताना चाहता, क्योंकि डर इस बातका है कि कहीं उन्हें देखनेके लिए दुनिया टूट न पड़े। सचमुच घण्टे-भरमें जो पाँच-छह बीड़ी पी डालता है उसका जीवित रहना एक आश्चर्यकी बात है। आते-हो-आते उन्होंने दो बातोंका हल्ला किया। एक तो यह कि उन्हें काफ़ी जाड़ा सता रहा है, भोजन करने घर नहीं जायेंगे, यहीं मंगा देना होगा और ओढ़नेकी व्यवस्था भी गम्भीर होनी चाहिए। दूसरे, यह कि कमसे-कम पचास बीड़ी रात-भरके लिए चाहिए। दूसरी आज्ञा तो साधारण थी और पहलीका पूर्वार्द्ध भी सरल था, परन्तु उत्तरार्द्ध प्रश्न बनकर खड़ा हो गया। ओढ़ना तो एक ही था! एक कम्बल था सो गत वर्ष फट गया और इस वर्ष ऐसा हुआ कि चार-पाँच महीनेका वेतन मिला ही नहीं। बार-बार सामने सवाल आता है कि मास्टर होकर क्या आगन्तु-कोंकी सेवाके लिए एक अधिक लिहाज़ बनवाकर नहीं रख सकता हूँ? परन्तु यह सवाल सवाल ही रह जाता है। न जाने किस जन्मका कौन-सा पाप उदित हुआ कि शिक्षक हो गया। सारी ज़िन्दगी सवाल हो गयी। सारे भाव सपने हो गये और अभाव ही सत्य हो गये। उलटी गंगा ऐसी बही कि शिक्षकको ही सारी दुनिया शिक्षा देने लगी। सरकार पट्टी पढ़ा रही है। नेता लोग पहाड़ा पढ़ाते हैं और सरकारी-गैरसरकारी अधिकारी बुझावल बुझाते हैं। कहते हैं, देशके भावी कर्णधारोंके आप निर्माता हैं। जो, बात तो आप सोलह आना सत्य कहते हैं परन्तु आपकी नोयतपर हमें भारी शक है।.....तो मैं उस क्षण अपनी इस नग्न विव-

शतामें मर्माहत हो उठा । लेकिन चारा ही क्या था ? बोला,

“खातिर जमा रखें । चारपाईके सिरहाने पड़ी यह रजाई आपके जाड़े-रूपी कुहरेको फाड़ डालनेके लिए सूरजकी किरण सिद्ध होगी । इसमें सन्देह नहीं ।”

“और आप क्या ओढ़ेंगे ?” रजाईको सिरहानेसे लेकर लेटते हुए अपने पैरोंपर फेंककर बोले ।

सवालका जवाब कुछ नहीं था । फिर भी सवाल सवाल ही है । जवाब चाहिए ही । मैं चट बोल उठा,

“मेरी चिन्ता न करें । मैं आजकल कोल्हुआड़े चला जाता हूँ । दो-तीन बीघा ईख बो दी थी । महीनोंसे रस निकालने और गुड़ बनानेका कार्यक्रम चल रहा है । मैं रातको वहीं सोता हूँ । मेरा बिस्तरा वगैरह वहीं है । यह रजाई अधिक है । आप ही लोगोंकी सेवाके लिए है ।”

मुझे ताज्जुब है कि इतना सफ़ेद झूठ कैसे बोल गया । एक बात भी सही नहीं थी । रत्ती-भर भी वास्तविकता नहीं । गाँवमें और लोगोंने ईख बोयी है, परन्तु अपने तई तो एक धूर भी नहीं ! फिर कहाँ कोल्हुआड़का शयन ? हाँ, सुनते आये हैं कि रातमें वहाँ बड़ा आनन्द रहता है । जलता हुआ चूल्हा, निकलती हुई आगकी लपट, खौलता हुआ गुड़, उठती हुई सुगन्धकी लहरें, सरस गीत, लुभावनी कहानियाँ और बिना रजाई-ओढ़नेके ईखकी सूखी पत्तियोंमें घुसकर सो रहना । क्या पता कि यह आकर्षण ही मनके कोनेमें कहीं छिपा पड़ा था और अचानक अनायास-अविचारित रूपसे चट मुँहसे निकल गया । इसपर भी एक बार एक साधारण चादरके सहारे कड़ाकेके जाड़ेकी यह रात बितानेकी कल्पनासे रोम-रोम सिहर उठा । सोचा, अब ओखलीमें सिर पड़ा, तो चोटोंका क्या डर ? देखा जायेगा, जो सामने आयेगा ।

मेहमानको भोजन कराया । सलाई और बीड़ियोंका बण्डल सिरहाने रख दिया । आधे घण्टे तक बैठकर कुशल-समाचार तथा और बातें

हुई। इस बीच बीड़ियोंके तेज जहरीले धुँऐसे जब दम घुटने लगा, तो इजाजतके लिए उठ खड़ा हुआ। वह अच्छा ही हुआ कि वहाँ नहीं रहना था अन्यथा उस कर्कश-बदबूदार धूम्रराशिसे मकड़े, कीड़े, छिपकलियाँ और अन्य पतियोंके साथ मेरा प्राण भी नव-दो-ग्यारह हो जाता।

कोल्हूआड़पर पहुँच गया। चारों ही ओरसे बाजरेकी टट्टी बाँधकर वहाँ आड़ कर दी गयी थी। कोल्हू चल नहीं रहा था। जुआ जमीनपर पड़ा था। बैलोंके चलनेसे गोल घेरेमे चिकना रास्ता बन गया था। खुरके निशान अभी मौजूद थे, जो जलते चूल्हेकी लाल लपटोंके प्रकाशमे माफ़ दिखायी पड़ जाते थे। ऊपर आमके पेड़की घनी छाया। चारों ओर अन्धकार। सनसन चलता पछिवाँ पवन। जाड़ेका शासन, परन्तु यहाँ कुछ और ही बात है। जैसे काशीपुरीमें पदार्पण करते ही पाप-ताप साथ छोड़कर हट जाते हैं, वैसे ही इस घेरेमें आते ही जाड़ेका ध्यान एकदम जाना रहा। काले-काले चूल्हेके अगल-बगलसे जब लपटें निकलती हैं, तो अन्धकारकी काली चादरपर मानो सोनेका फूल काढ़ दिया जाता है। आग वास्तवमें कितनी प्यारी होती है। लपटोंके साथ जब काली-काली राख उड़ती है, तो वह इस प्रकार भभकती है कि लपटोंसे भी ऊपर निकल जाती है तथा रोशनीमें उसका ऊपर उठना और गिरना दोनों ही प्यारा लगता है। चूल्हेके मुँहके पास एक आदमी बैठा हुआ था। पास ही ईखकी मूखी पत्तियों और खोइयोंकी ढेरी थी। वह बराबर झोंकता चला जा रहा था। कड़ाहेमें रस अब साधारण हलचलकी अवस्थामें था। आज बड़वानलका दृश्य भी सामने आनेवाला था। दो कुत्ते एक ओर सोये थे। एक कुछ घुड़घुड़ाया, पर फिर स्वयं चुप हो गया। मैं समझ नहीं पा रहा था कि यहाँपर कहाँ बैठते हैं। चूल्हा झोंकनेवाला अपने काममे ऐसा मस्त था कि दीन-दुनियाकी कोई खबर ही उसे नहीं थी। एक हाथसे ईंधन डालता और दूसरे हाथकी ईखसे उसे भीतर ठेल देता था। भक्.....भक्.....लपट उठती और फिर ऐसे ही

चलता रहता । किसी और आदमीकी सूरत वहाँ नहीं दिखायी पड़ी । बड़ी दिक्कतमें पड़ा । अब यहाँ क्यों बैठूँ ? और यहाँसे अब कहाँ चलूँ ? अब वहाँ भीतर जाकर चुपचाप लौट आना भी बेतुका था । पूछा, “अरे बन्टूआ, अकेले हो ?” तभी मेरे पीछे पत्ती खड़खड़ा उठी । मैं चौंककर पीछेकी ओर मुड़ा, तो मुनायी पड़ा, “कौन ? मास्टर ? आओ भाई बैठो ।” आवाज तो सुनी, पर शकल नहीं दिखायी पड़ी । क्षण-भरके लिए विस्मित हो उठा, फिर पत्ती खड़खड़ायी । उधर रोशनी तेज हुई । अब देखा कि पत्तियोंके अम्बारमें छिपे सुकदेव भाई लम्बायमान हुए हैं । अब वे उठ बैठे । मैं भी बगलमें धँस गया । पत्तियोंका सरगम मुखर हो उठा । एक अध्याय खत्म हुआ और मैं कुछ आश्वस्त हुआ । धन्य हैं वे तिनके जो सचमुच ही डूबते गरीबोंके लिए सहारे हैं !

संयोगकी बात ! कहानी कहनेवाला बीमार था, वहाना व्यर्थ गया, परन्तु हमें तो रात वहीं बितानी थी । घण्टों बतकही हुई । रसमें पका आलू और आंवला खानेको मिला । गरम-गरम । फिर स्वाद था कि मन फड़क उठा । अपना भाग लेनेके लिए पत्तियोंमें वैसे ही ढके-ढुके कई जने निकल आये । मुर्ती बनने लगी, पत्तियोंके जलते लुकाड़से एकने खौलते हुए रसको देखा । अब थोड़ी देरमें ताव आ जानेवाला था । फिर चर्चाएँ शुरू हुई— गाँवकी, घरकी, आदमियोंकी और तमाम दुनियाकी । वे सजीव उपन्यास थे, मनोरम कविताएँ थीं और परम रमणीय कहानियाँ थी । आँखें झपने लगीं तो लेट गया । सुकदेव भाईने निर्देश किया, “जरा ऊपर खिसक-कर ।” और वैसे ही सोये-सोये जो ऊपर खिसक गया तो ईखकी पत्तियोंने ऊपरसे ढक लिया । नाकमें कुछ गर्दा-सा सरक रहा था । सिर कुछ ऊपर करनेके लिए उठाया तो पत्तियाँ खड़खड़ा उठीं । नींद उचट गयी । चादरसे शरीर अच्छी तरह ढँक लिया । पीठमें एक कड़ी पत्ती गड़ रही थी । उसे हटाकर अलग किया । चारों ओरसे हिला-डुलाकर शरीरको आरामकी स्थितिमें किया तो विचारोंका एक प्रवाह चल पड़ा । अजीब

विचार थे ! सोच रहा था, पण्डित जवाहरलाल नेहरू इस समय क्या करते होंगे ? कैसे सोये होंगे ? इन विचारोंसे मुझे अनिर्वचनीय आनन्द आ रहा था । मुझे पता नहीं कि इस आनन्दका स्रोत कहाँ था, परन्तु जैसे-जैसे मैं उन विचारोंमें उलझता जाता वैसे ही आनन्दकी मात्रा बढ़ती जाती । यहाँतक कि मन्द-मन्द हासकी मधुर धारामें मैं डूबने लगा । यह सोचकर कि यदि उन्हें इसी प्रकार पत्तीके ढेरीके भीतर मेरी तरह घुसाकर सुला दिया जाये तो कैसा लगेगा, मैं हँस पड़ा । संयोगकी बात थी गुड़को चूल्हेपर-से उतारनेमें व्यस्त उन लोगोंने ध्यान नहीं दिया । इसके बाद मेरे मनमें विचार आया कि उन्हें क्या पता होगा कि हमारे देशकी साधारण जनता ही नहीं, शिक्षक भी जाड़ा काटनेके लिए सियार-खरगोशकी भाँति पत्तियोंमें शरण लिये हुए हैं ? इस विचारने कुछ सुस्त कर दिया । आनन्द किन्तु तब भी था और यह प्रश्न कुछ इस तरहकी तन्द्रिल श्रान्ति लिये मस्तिष्कमें चक्कर काटने लगा कि थोड़ी देरमें गहरी नींदमें मैं मग्न हो गया । सोनेमें पैरकी ओर कभी-कभी जो मुलायम तकिये की तरह कोई चीज ज्ञात हो रही थी, सबेरे उठनेपर मालूम हुआ कि वह एक कुत्ता था ।



निशानी अँगूठा : ज़िन्दाबाद

लड़के कूद-कूदकर गा रहे हैं,

“पढ़े-लिखे इन्सानको—

बोट देना धोखा है !”

“क्यों भाई यह क्या है ?”

“यह हमारे पंचायती चुनावका नारा है ।”

“नहीं, ग़लत बात है ।”

“वास्तवमें यह एक पाठ है । पहला पाठ है । बड़े लोग पढ़कर पास हो गये । अब लड़के भी पढ़ रहे हैं ।”

उम्मीदवार बड़े तावसे कहता है—

“भाइयो, सरकारने थोड़ी ग़लती कर दी । हमारा चुनाव-चिह्न छाता न होकर अँगूठेका निशान होना चाहिए । खैर, कोई बात नहीं । आप हमको बोट दीजिए । पंचायतके चुनाव-चिह्नकी क्या बात है, मैं सरकारकी बघमुहिया मुहरको बदलवाकर अँगूठेका निशान करवा दूँगा । बोलो—

“निशानी अँगूठा……।”

“ज़िन्दाबाद !”

तुमुल-ध्वनिसे आकाश गूँज उठा ।

“भाइयो, लोग कहते हैं कि आपने तो ‘क’ सरकारकी नाक भी नहीं देखी है, कैसे राज चलाइएगा । अब आप चारों ओर आँख उठाकर पढ़े-लिखे लोगोंका राज देख लीजिए । राम-राजकी आड़में ठीक ‘रावणराज’ का नक्शा तैयार है । जो जितना ही अधिक पढ़ा-लिखा है, इस राज और राजनीतिका चलता-पुरजा बनकर वह उतना ही छलछन्द फैलाता है । कहते हो कि जनताका राज ? तो जनताका राज होने क्यों नहीं देते ? जनताका

क्या अर्थ है ? जनता माने बिना पढ़े-लिखे गँवार । भाइयो, जबतक देशमें पढ़े-लिखे लोगोका राज होगा जनता गुलामीकी चक्कीमें पिसती रहेगी । जनताकी भलाईके लिए जनताका राज होने दो । निरक्षरोंकी सरकार बनने दो । निशानी अँगूठेको आसमानमें लहराने दो । इसका श्रीगणेश इस सभापतिके चुनावसे होना चाहिए, बोलो—

“पढ़े-लिखे इनसानको—”

“वोट देना धोखा है !”

फिर तुमुल-ध्वनिसे आकाश गूँज उठा ।

“भाइयो, मूर्खोंको हमारे देशमें अनादरकी दृष्टिसे देखा जाता है, परन्तु आपको मालूम होना चाहिए कि अगर ये मूर्ख—निशानी अँगूठावाले—न होते तो बकुलाकी पाँख-जैसे पोशाकवालोंका कहीं ठिकाना न होता । फर्क सिर्फ इतना ही है कि मूर्खोंके पास तमाम दुनिया देखनेका चश्मा नहीं है और दौड़-दौड़कर धन बटोरनेवाली मोटर नहीं है । यही कारण है कि वे अच्छे हैं । आपने सुना होगा कि तुलसीदासने भी मूर्खोंकी प्रशंसा की है—

“सबसे भले वे मूढ़ जिन्हें न व्यापे जगत-गति ।”

श्रोताओंने हर्षोल्लाससे आवाज बुलन्द की—

“बोलो भाई, देऊ रामकी—”

“जै !” जय-जयकारसे पेड़के पत्ते हरहरा उठे ।

“छाप हमारा कहाँ पड़ेगा ?”

“छातावाले खानेमें ।”

देऊराम ! निशानी अँगूठावाले !

कम्युनिस्ट पार्टीका झण्डा आया । दरवाजेपर एक बड़ेसे बाँसमें टाँग दिया गया ।

“क्यों देऊरामजी, आप तो कांग्रेसी हैं ?”

“इससे क्या ? इस वोटमें यही लाल झण्डा रहेगा । नहीं देखते हो खिलाफ पार्टीवाले इसीको लेकर घमते हैं और छोटी जातिवालोंको बटकाते

हैं। वे भी तो काँग्रेसी ही हैं।”

“आपको पता है, आपके विरोधी पुराने सभापतिने प्रति वोटर पाँच रुपया खर्च करके ५० जाली नाम वोटर-लिस्टमें बढ़वा लिये हैं।”

“पता है। बढ़ने दो। वोट कागजसे नहीं, लाठीसे लड़ा जाता है। देखेंगे कि हार रहे हैं तो जमकर लाठी चलेगी।”

पूरी तैयारी ! मानो बारात आ रही है।

एक मन गुड़, दो बोरा अगहनियाका दाना, पाँच-सौ पत्तल, चार मन आलू, तीन बोरा आटा, एक मन चीनी, दो गाड़ी उपले, सात बोझ लाठी, दो बोझ भाला, एक गाड़ी पुवाल (रातमें बिछानेके लिए)।

गाँवमें हल्ला हो गया—

“पाँच-सौ लाठीवाले आ गये ! एक-सौ भालेवाले आ गये ! गाँव लुट जायेगा ! लोग वरबाद हो जायेंगे !”

“बचाओ, बचाओ ! देऊरामको वोट दो !”

“हाय भैया ! अभी तो वोट हुआ नहीं, हम लुट गये। रातमें तमाम गहना, कपड़ा और रुपया चोरी चला गया।”

“किसको वोट देनेके लिए कहा था ?”

“तिवारीजी पुरोहित हैं—उन्हींको।”

“अब घरमें क्या बचा है ?”

“बस लोटा-थाली और थोड़ा अन्न।”

“अब इसको भी बचाना हो तो देऊरामको वोट दो।”

“देऊरामकी जै !”

“निशानी अँगूठा जिन्दाबाद !”

“पढ़े-लिखे इनसानको, वोट देना धोखा है !”

“क्या कहा ? दो बीघेकी फसलकी रातोंरात पाँख लग गयी ? अभी खैरियत है। बल खूँटेपर हैं, शरीर टाँगोंपर है और झोपड़ियाँ खम्भेपर हैं ! समझे ?”

“देऊ काका ! दखिन टोलके चमार तो तिवारीजीको ही बोट देंगे ।
उन्हींकी जमीनमे बसते हैं । उनकी परजा हैं ।”

“अच्छा, कोई हर्ज नहीं । पचास लाठीवालोंको मुहल्ला घेरकर खड़ा
कर दो । बच्चू निकलने न पावें । बस, चुपचाप पड़े रहें । निकलें तो मार-
कर धूर कर दो ।”

तिवारीजी, पुराने सभापति श्री बाबूलाल तिवारी मिडिल पास ।

“अरे, रे……रे……रे……रे……तिवारीजी ! यह आप क्या कर रहे हैं ?
हमको नरक हो जायेगा । ब्राह्मण होकर हमारे पैरपर पड़ रहे हैं ! राम,
राम ! कहिए क्या आज्ञा है ?”

“बस, अब इज्जत तुम्हारे हाथमें है ।”

“रोइए मत । धीरज धरिए । हाँ, कान इधर कीजिए । धीरे-धीरे
कहना है । कोई सुन न ले । वोट मैं आपको ही दूँगा मगर बाहर-बाहर
उसीका नाम जपूँगा ।”

“विश्वास नहीं होता जजमान । सभी इसी प्रकार कह रहे हैं । अब
तो नाव मझधारमे पड़ी है चाहो तो बचा लो……और हे भाई मनराखन,
सुनो……सुनो……तुम किसको दे रहे हो ?”

“पण्डितजी, हम तो देऊरामको वचन दे चुके हैं……अरे……रे……रे……
हैं……हैं……हैं……यह क्या कर रहे हैं पण्डितजी, आप कुलपूज्य हैं ! इस
तरह सर पैरपर पटककर आप हमारा धरम मत छुड़ाइए……।”

“वोट उन्हींको देना, पर मेरी एक बात मान लो ।”

“कहिए ।”

“कहो कि पक्का, तब कहेंगे ।”

“उनके कमलपर छापकर हमारे छातापर भी एक छाप छाप देना ।
एक वोट उनको तो एक हमको भी ।”

“अच्छा, किन्तु यह बात किसीसे कहिएगा मत ।”

“अरे जजमान, ऐसा भी होगा ? मुँहमें धान डाल दो लावा फूट रहा

है। रात-भर नींद नहीं आती। सारी इज़्जत दाँवपर चढ़ गयी है। बाप-दादेकी मरजादपर पानी फिरने जा रहा है। हम सभापति होनेके फेरमें नहीं हैं। हमें तो बस इज़्जत-भर बचानी है। हार जानेपर गाँवमें कैसे मुँह दिखाऊँगा। इस सरकारका बुरा हो। पंचायत तो मौत हो गयी, बल्कि सरकार ज़हर देकर मार डालती तो अच्छा होता। गला फँस गया है।”

“तुम किसको वोट दे रहे हो घूरा बाबू ?”

“अरे देऊ तुम्हें छोड़कर और किसको दूँगा। छातावाले छापामें।”
लेकिन हे भाई सुनो, कलवाला मेरा वोट बख्श दो। आजवाला तुम्हारा और कलवाला तिवारीजीका।”

“देखो मालिक, देऊरामको पहाड़ा मत बुझाओ। चुपकेसे ओट देना है तो आप हमको दोगे और मेम्बरीमें प्रकरूपसे हाथ उठाना है तो आप तिवारीकी ओर रहोगे। हमें यह सौदा पसन्द नहीं। आजवाला वोट हमको मत देना और आप कल प्रकरूपसे हमारी ओर रहना। बोलो, मंजूर है ?”

“.....।”

“बोलो, बोलते क्यों नहीं ? अच्छी तरह सोच लो।”

“अच्छा, मंजूर है। लो, दोनों वोट तुम्हींको।”

“तब देखो, एक काम करो। आज गाँव छोड़कर चले जाओ। आज-वाला वोट तुम्हारा मान लेंगे और कल हमारी तरफ़ हाथ उठाना।”

ह...ह...ह...ह...उड़ती चिड़ियाको हल्दी लगानेवाला कौन ?
देऊराम ! वोटका ठीक नक्शा समझनेवाले कौन ? देऊराम।

प्राइमरी स्कूलपर गुप्त मतदान है। अद्भुत मेला है ! हँसी-खुशीका नाम नहीं। क्रोध, घृणा, अविश्वास, शत्रुता, प्रतिशोध, सन्देह और भयके सतरंगी भाव जन-जनके चेहरेपर छाये हैं। कहते हैं, अब गाँव बरबाद हो जायेगा। यह बैरका बलवान बीज फल-फूलकर गाँवको तहस-नहस कर

डालेगा । सरकार कितनी अन्धी है । इतने पढ़े-लिखे होकर नेताओंकी खोपड़ीमें नहीं धँसता कि यह प्रजातन्त्रकी परिपाटी मूर्खोंके लिए बन्दरके हाथमें तलवार है । सच है, पढ़े-लिखे इनसानको.....”

मजेदार है मेम्बरोंका चुनाव ।

आर्मफ़ोर्स राइफल भाँजती तैनात है । थाना उतर आया है । मय नायबोंके तहसीलदार साहबके मुँहपर हवाइयाँ उड़ रही है । पुलिस कप्तानको चैन नहीं । गाँव-गाँव चीनका मोर्चा हो गया है । पुलिस गलियोंमें गश्त लगा रही है । लाल साफ़ा बाँधे चौकीदार अत्यन्त व्यस्त है । लोग इधर-उधर आ-जा रहे हैं । कोई आज धीरे-धीरे नहीं चल रहा है । सारा काम बन्द है । झुण्डके-झुण्ड लोग इधर-उधर साँय-फुस कर रहे हैं । कोई किसीको झटकेसे बुलाता है और दूर ले जाकर कानोंमें कुछ कहता है । आँखें चढ़ी हुई हैं और सबकी भोहोंपर बल आया हुआ है । चेहरेका रंग उड़ा हुआ है । दूसरे दलका कोई किसी ओर जाता हुआ दीख पड़ता है तो कान खड़े हो जाते हैं । बोल-चाल बन्द । आँखें यदि मिली तो मन गुर्रा उठा, मानो कच्चा चबानेके लिए तैयार है । छोटे-छोटे लड़कों तकके पैर पैतरेपर ही आज उठ रहे हैं । बारह बजते दल तैयार । घरोंमें ताले लगा दिये गये हैं । नर-नारी सब रण-क्षेत्रमें मय सेना-सहायकोंके साथ । देखनेवाले टूट पड़ते हैं । दारोगा पिस्तौल तानकर खड़े-डता है । एक ओर रूस और दूसरी ओर अमेरिका ! जिन कुलवधुओंने कभी द्वारकी देहली पार नहीं की वे मैदानमें कतार लगाये कबकी बैठी हैं । धन्य !

और यह क्या हुआ भाई ?

सरलरामको चार आदमी चारपाईपर टांगे अस्पताल ले चले । थोड़ी देर पहले एक ओरसे देऊरामके आदमी पहुँचे और दूसरी ओरसे तिवारी जीके । दोनों अपनी-अपनी ओर ले जानेके लिए एक-एक बाँह पकड़कर खींचने लगे और दोनों बाँह कन्धसे सरक गयी हैं । दोनोंने तब उसे छोड़ा

जब दाँत लग गये ।

एक....दो....तीन....अब वोट शुरू ।

“क्या कहा ? किसके मेम्बर हार रहे हैं ?”

“अच्छा !”

“कौन बदमाश औरतोंपर ढेला मार रहा है ?”

“बोलो बजरंग बलीकी जै !”

धक्कमधक्की—हाय-हल्ला—भाग-दौड़—चादर सँभालती हुई औरतें
भागी—एकपर-एक गज गयीं—लंकादहन शुरू—धाय....धाय....बाहर
खेतमें लाठीवाले भिड़ ही तो गये—हड़....हड़....हड़....तड़ाक्....तड़ाक्....
तड़....तड़....! मारो....मारो....मारो....मा.... !

पंचायती राज जिन्दाबाद !

निशानी अंगूठा जिन्दाबाद !!



